D.El.Ed.

DIPLOMA IN
ELEMENTARY EDUCATION

प्रारंभिक शिक्षा में पत्रोपाधि

(डी.एल.एड.)

सामाजिक, सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में संज्ञान एवं अधिगम

द्वितीय वर्ष

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
छत्तीसगढ़, रायपुर

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][**संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य**] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2][**राष्ट्र की एकता और अखंडता**] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

प्रारंभिक शिक्षा में पत्रोपाधि (डी.एल.एड.)

Diploma in Elementary Education (D.El.Ed.)

सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में संज्ञान एवं अधिगम

द्वितीय वर्ष

प्रकाशन वर्ष–2021

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छत्तीसगढ़, रायपुर

प्रकाशन वर्ष–2021

सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में संज्ञान एवं अधिगम

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

डी. राहुल वेंकट I.A.S.

संचालक

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

पाठ्य सामग्री समन्वयक

डेकेश्वर प्रसाद वर्मा

विषय संयोजक

पुष्पा किस्पोट्टा

विशेष सहयोग

हेमंत कुमार साव, संतोष कुमार तंबोली

पाठ्य सामग्री संकलन एवं लेखन

पी. के. अधिकारी, पुष्पा किस्पोट्टा,

यू.एस. मिश्रा, प्रकाश प्रधान

आवरण एवं लेआउट

सुधीर कुमार वैष्णव, हिमांशु वर्मा

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर उन सभी लेखकों/प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है जिनकी रचनाएँ/आलेख इस पुस्तक में समाहित है।

प्राक्कथन

विद्यालय में अध्ययनरत बच्चे भविष्य में राष्ट्र का स्वरूप व दिशा निर्धारण करते हैं तथा विद्यालय शिक्षक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में किसी अन्य विकासात्मक प्रसास की तरह समाज की बदलती आवश्यकताओं और मांगों को पूरा करने के लिए निरन्तर प्रयासरत रहते हैं।

''शिक्षा बिना बोझ के'' यशपाल समिति की रिपोर्ट (1993) के अनुसार शिक्षकों की तैयारी के अपर्याप्त अवसर से स्कूल में अध्ययन–अध्यापन की गुणवत्ता प्रभावित होती है तथा कोठारी आयोग (64–66) से भी स्पष्ट है कि शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षकों को बतौर पेशेवर तैयार करना अत्यंत जरूरी है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में भी शिक्षकों की बदलती भूमिका को रेखांकित किया गया है। आज एक शिक्षक के लिए जरूरी है कि वह बच्चों को जाने, समझे, कक्षा में उनके व्यवहार को समझे, उनके सीखने के लिए उपयुक्त माहौल तैयार करें, उनके लिए उपयुक्त सामग्री व गतिविधियों का चुनाव करे, बच्चों की जिज्ञासा को बनाए रखें उन्हें अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करें उनके अनुभवों का सम्मान करें। तात्पर्य यह कि आज की जटिल परिस्थितियों में शिक्षकों की भूमिका कहीं अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण व महत्वपूर्ण हो गई है।

इसी परिप्रेक्ष्य में शिक्षक–शिक्षा को और कारगर बनाने की आवश्यकता है। शिक्षक–शिक्षा में आमूल–चूल परिर्वतन की आवश्यकता बताते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में शिक्षकों की भूमिका के संबंध में कहा गया है ''सीखने–सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बनें जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में, उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता तक जानने में, उनमें अपेक्षित सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों व चरित्र के विकास में तथा जिम्मेदार नागरिकों की भूमिका निभाने में समर्थ बनाएँ।''

प्रश्न यह है कि शिक्षक को तैयार कैसे किया जाए? बेहतर होगा कि विद्यालय में आने के पूर्व ही उसकी बेहतर तैयारी हो, इसके लिए उसे विद्यालय के अनुभव दिए जाएँ। इसीलिए शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम व विषयवस्तु को पुनः देखने की जरूरत महसूस हुई, और डी.एल. एड. के पाठ्यक्रम में बदलाव किया गया है।

पाठ्यसामग्री का लक्ष्य शिक्षा की समझ, विषयों की समझ, बच्चों के सीखने के तरीके की समझ, समाज व शिक्षा का संबंध जैसे पहलुओं पर केन्द्रित है। पाठयक्रम में शिक्षण के तरीकों पर जोर देने के स्थान पर विषय की समझ को महत्व दिया गया है। साथ ही शिक्षा के दार्शनिक पहलू को समझने, पाठ्यचर्या के आधारों को पहचानने और बच्चों की पृष्ठभूमि में विविधता व उनके सीखने के तरीकों को समझने की शुरुआत की गई है।

चयनित पाठ्यसामग्री में कुछ लेखक/प्रकाशकों की पाठ्य सामग्री प्रशिक्षार्थियों के हित को ध्यान में रखकर उनके मूल स्परूप को लिया गया है। कहीं–कहीं स्वरूप में परिवर्तन भी किया गया है, कुछ सामग्री अंग्रेजी की पुस्तकों से ली गई है। हमारा प्रयास यह है कि प्रबुद्ध लेखकों की लेखनी का लाभ हमारे भावी शिक्षकों को मिल सके। इग्नू और एन.सी.ई. आर.टी. सहित लेखकों/प्रकाशकों की पाठ्यसामग्री किसी भी रूप में उपयोग की गई है, हम उनके ह्रदय से आभारी हैं। हम विद्या भवन सोसायटी उदयपुर, दिगंतर जयपुर, एकलव्य भोपाल, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू, आई.सी.आई.सी.आई. फाउण्डेशन पुणे, आई.आई. टी. कानपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर के आभारी हैं जिनकी टीम ने एस.सी.ई.आर. टी. और डाइट/बी.टी.आई.के संकाय सदस्यों के साथ मिलकर पठन–सामग्री को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

अंत में पाठ्यसामग्री तैयार करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सहयोगियों का हम पुनः आभार व्यक्त करते हैं। पाठ्यक्रम तैयार करने पाठ्य सामग्री के संकलन व लेखन कार्य से जुड़े लेखन समूह सदस्यों को भी हम धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके परिश्रम से पाठ्य सामग्री को यह स्वरूप दिया जा सका। पाठ्य–सामग्री के संबंध में शिक्षक –प्रशिक्षकों, प्रशिक्षार्थियों के साथ–साथ अन्य प्रबुद्धजनों, शिक्षाविदों के भी सुझावों व आलोचनाओं की हमें अधीरता से प्रतीक्षा रहेगी जिससे भविष्य में इसे और बेहतर स्वरूप दिया जा सके।

रायपुर
वर्ष 2021

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,
छत्तीसगढ़,रायपुर

विषय–सूची

इकाई	अध्याय	पेज न.
इकाई–1	शिक्षा और ज्ञान : विविध परिप्रेक्ष्यों की समझ –	01-20
	1.0 प्रस्तावना	
	1.1 उद्देश्य	
	1.2 शिक्षा की अवधारणात्मक समझ	
	1.3 शिक्षा और समाज	
	1.4 शिक्षा के आधारों की समझ	
	1.5 शिक्षा के उद्देश्यों एवं मूल्यों की समझ	
	1.6 विद्यालय में शिक्षा की प्रकृति	
	1.7 ज्ञान की अवधारणात्मक समझ	
	1.8 समेकन तथा सीखने–सिखाने में सहयोगी ई–संसाधन	
	1.9 सारांश	
	1.10 अभ्यास के प्रश्न	
इकाई–2	बचपन और सामाजीकरण –	21-39
	2.0 प्रस्तावना	
	2.1 उद्देश्य	
	2.2 बच्चे तथा बचपन की समझ	
	2.3 समाजीकरण की समझ	
	2.4 सारांश	
	2.5 अभ्यास के प्रश्न	
इकाई–3	शिक्षा, विद्यालय तथा समाज : अन्तर संबंधी पड़ताल –	40-53
	3.0 प्रस्तावना	
	3.1 अधिगम उद्देश्य	
	3.2 विविधता, असमानता तथा वंचना – अंतर संबंधी पड़ताल	

विषय–सूची

इकाई	अध्याय	पेज न.
	3.3 शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन में संबंध	
	3.4 सारांश	
	3.5 अभ्यास के प्रश्न	
इकाई–**4**	विद्यालय के शुरूआती समय के दौरान अधिगम एवं शिक्षण –	**54-78**
	4.0 प्रस्तावना	
	4.1 अधिगम उद्देश्य	
	4.2 अधिगम प्रक्रिया	
	4.3 बच्चा कैसे सीखता है।	
	4.4 शिक्षण की प्रक्रिया	
	4.5 सारांश	
	4.6 अभ्यास के प्रश्न	
इकाई–**5**	शिक्षण और अधिगम की विधियाँ –	**79-98**
	5.0 प्रस्तावना	
	5.1 अधिगम उद्देश्य	
	5.2 शिक्षण और अधिगम की प्रभावकारी विधियाँ	
	5.3 अनुदेशात्मक विधियाँ	
	5.4 विद्यार्थी–केंद्रित विधियाँ	
	5.5 प्रगति की जाँच के लिए आदर्श उत्तर	
	5.6 सारांश	
	5.7 अभ्यास के प्रश्न	
इकाई–**6**	**शिक्षार्थी और अधिगम–केंद्रित उपागम –**	**99-120**
	6.0 प्रस्तावना	
	6.1 अधिगम उद्देश्य	
	6.2 अधिगम उपागम	

विषय–सूची

इकाई	अध्याय	पेज न.
	6.3 क्रियाकलाप आधारित उपागम	
	6.4 योग्यता आधारित उपागम	
	6.5 संरचनात्मक उपागम	
	6.6 सारांश	
	6.7 अभ्याश के प्रश्न	
इकाई–7	अधिगम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का प्रबंधन –	**121-142**
	7.0 प्रस्तावना	
	7.1 अधिगम उद्देश्य	
	7.2 अधिगम परिस्थितियों का प्रबंधन	
	7.3 अधिगम और शिक्षण के लिए समय और स्थान का प्रबंधन	
	7.4 प्रोत्साहन व अनुशासन के लिए प्रबंधन	
	7.5 प्रबंधक के रूप में अध्यापक की भूमिका	
	7.6 प्रगति की जाँच के लिए आदर्श उत्तर	
	7.7 सारांश	
	7.9 अभ्यास के प्रश्न	
इकाई–8	सुविधावंचित शिक्षार्थियों हेतु संदर्भित अधिगम प्रक्रियाएं –	**143-162**
	8.0 प्रस्तावना	
	8.1 अधिगम उद्देश्य	
	8.2 अधिगम के सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ	
	8.3 सुविधावंचित बच्चों की शिक्षा	
	8.4 सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में जन–जाति के बच्चों की शिक्षा	
	8.5 प्रगति की जाँच के लिए आदर्श उत्तर	
	8.6 सारांश	
	8.7 अभ्यास के प्रश्न	

विषय–सूची

इकाई	अध्याय	पेज न.
इकाई–9	निर्धारण तथा मूल्यांकन के आधार –	163-185
	9.0 प्रस्तावना 9.1 अधिगम उद्देश्य 9.2 शिक्षार्थियों की प्रगति का आकलन 9.3 आकलन की प्रक्रिया 9.4 अधिगम एवं आकलन 9.5 सारांश 9.6 अभ्यास के प्रश्न	
इकाई–10	रविन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द, महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द –	186-208
	10.0 प्रस्तावना 10.1 अधिगम उद्देश्य 10.0 रवीन्द्रनाथ टैगोर का शैक्षिक दर्शन 10.1 रवीन्द्रनाथ टैगोर – प्रकृति और सामाजिक संदर्भ से दूर न हो शिक्षा 10.2 महर्षि अरविंद का शैक्षिक दर्शन 10.3 मोहन दास करमचन्द गांधी (2 अक्टूबर 1869–30 जनवरी 1948) 10.4 स्वामी विवेकानंद शिक्षा दर्शन 10.5 सारांश 10.6 अभ्यास के प्रश्न संदर्भ सूची	

इकाई – 1

शिक्षा और ज्ञान : विविध परिप्रेक्ष्यों की समझ

(Education and Knowledge: Understanding of Diverse Perspectives)

1.0 प्रस्तावना (Introduction)

ज्ञान जीवन का आधार है जिसे प्राप्त करने की प्रक्रिया ही वास्तव में शिक्षा है। व्यक्ति जहाँ एक ओर अपने शारीरिक पक्ष के देखभाल के लिए भोजन पर निर्भर करता है, वहीं दूसरी ओर वह अपनी तरह के दूसरे व्यक्तियों के साथ गतिशील संबंधों की एक प्रणाली विकसित करता है। यह उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के रूप में पहचानी जाती है। वास्तव में मानव का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास शिक्षा द्वारा संभव हो पाता है। शिक्षा के द्वारा ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का विकास होता है फलस्वरूप व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन का पुनर्निर्माण होता है। इस तरह शिक्षा जीवन की मुख्य क्रिया है। यह समाज, समुदाय, परिवेश, परिस्थिति अथवा व्यक्ति विशेष के संदर्भ में परिवर्तनशील भी है। यही कारण है कि जब शिक्षा के अर्थ, उद्देश्य या प्रकृति पर चर्चा होती है तब शिक्षा से संबंधित बहुत सारे विमर्श एक दूसरे के समानांतर खड़े हो जाते है। साथ ही विद्यालय में शिक्षायी प्रक्रियाओं को विभिन्न मान्यताओं एवं दृष्टिकोणों से निरंतर रूबरू होना होता है जिनके पीछे भी कई ज्ञानमीमांसीय आधार होते हैं। इसमें प्रश्नों एवं उनके उत्तर को उनके बुनियादी मान्यताओं व विचारों के संदर्भ में समझा जाता है। इस तरह क्या सीखा या क्या सिखाया जाये? इत्यादि के बुनियाद में ज्ञान के मुद्दे अन्तर्निहित होते हैं और इन्हें ज्ञान मीमांसीय दृष्टिकोण से समझना अति महत्वपूर्ण है जो स्वयं में गतिशील है। दूसरे अर्थों में शिक्षा से संबंधित विमर्श या सरोकार बहुत हद तक इसके अर्थ एवं उद्देश्यों की वर्तमान जीवन में प्रासंगिकता तथा नये अर्थ की आवश्यकता से प्रभावित होते हैं। एक शिक्षक को उनके परिप्रेक्ष्य में अपनी शिक्षायी प्रक्रिया को विकसित करने हेतु शिक्षा के विभिन्न ज्ञानमीमांसीय एवं दार्शनिक पक्षों को अपने विद्यालयी प्रक्रियाओं में यथोचित रूप से शामिल करना होता है।

1.1 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के माध्यम से आप :

- शिक्षा के विभिन्न दृष्टिकोणों एवं आधारों से परिचित होकर उनका विश्लेषण कर सकेंगे।
- शिक्षा के उद्देश्यों, मूल्यों तथा प्रकृति के संबंध में विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों की मान्यताओं एवं तत्वों की शिक्षाशास्त्रीय विवेचना कर पाएंगे तथा उसके आलोक में शिक्षायी रणनीति तैयार कर सकेंगे।
- ज्ञान को प्राप्त करने के विभिन्न साधनों व माध्यमों की सामान्य समझ विकसित कर सकेंगे तथा विद्यालय में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के संदर्भ में उनका विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 शिक्षा की अवधारणात्मक समझ (Conceptual understanding of education)

हमारे दैनिक जीवन के हर कार्य को करने के लिए किसी न किसी प्रकार के शिक्षा और ज्ञान की आवश्यकता होती है। अतः हमारे जीवन में इनका इस्तेमाल हर रोज होता है। यह हो सकता है कि उनके स्वरूपों को हम नहीं पहचानते हों, क्योंकि उनका प्रयोग हम अलग–अलग नहीं करते हैं। इस इकाई को प्रभावी तौर से समझने के संदर्भ में आपके उन अनुभवों का विशेष महत्व है।

शिक्षा शब्द का बहुत ही सीधा–सादा और सरल अर्थ है– सीखना–सिखाना। परंतु अपने लक्ष्यों, सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं, कार्यों, अपेक्षाओं, प्रभावों और वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्य में यह एक बहुत ही व्यापक और साथ ही, जटिल प्रक्रिया है। इसे एक उद्‌देश्यपूर्ण प्रक्रिया माना जाता है, परन्तु इसके उद्‌देश्यों का स्वरूप इतना उलझा हुआ और अस्पष्ट रहता है कि अंततः यह एक उद्‌देश्यहीन प्रक्रिया बन कर रह जाती है। जहां इससे एक ओर इतिहास की धरोहर को संभाले रखने की अपेक्षा की जाती है, वहीं दूसरी ओर, माना जाता है कि यह वर्तमान का पथ आलोकित करे परन्तु इसकी दृष्टि किसी अज्ञात पथ की ओर हो, यानि इसका स्वरूप भविष्यद्रष्टा हो। इसी प्रकार जहां एक ओर इसे व्यक्ति के विकास के सशक्त माध्यम के रूप में देखा जाता है, वहीं सामाजिक विकास का साधन भी यही माना जाता है। एक ओर इसे अपने आस पास की भौगोलिक परिस्थितियों से जोड़ने का प्रयास किया जाता है, तो दूसरी ओर, अंतर्राष्ट्रीय समझ, सहयोग व शांति की जिम्मेदारी भी इसी के कंधे पर रहता है।

वस्तुतः शिक्षा के क्षेत्र की दिशाएं व धाराएं इतनी व्यापक एवं बहु आयामी हैं कि इन्हें किसी एक दिशा व धारा में बांधना अथवा परिभाषित करना कठिन है। प्रत्येक समाज अपनी अपेक्षाओं, अपने लक्ष्यों अथवा जीवन–दर्शन के अनुसार इसे परिभाषित करता है। इसकी प्रकार मानव की प्रकृति, क्षमताओं अथवा योग्यताओं के स्वरूप अथवा उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं के अनुकूल भी इसे परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है।

कोई शिक्षा को अन्यंत व्यापक दृष्टि से देखता है, तो कोई अत्यंत संकुचित दृष्टिकोण से। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति जीवन के उद्‌देश्यों को अपने दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है। उसका जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण अपने अनुभवों पर निर्भर करता है। शिक्षा जीवन के इन उद्‌देश्यों को प्राप्त करने का साधन माना जाता है। मनुष्य जन्म से अंत तक कुछ न कुछ सीखता ही नहीं सिखाता भी रहता है। वह क्षण प्रतिक्षण नए–नए अनुभव प्राप्त करता व करवाता रहता है जिससे उसका दिन–प्रतिदिन का व्यवहार भी प्रभावित होता रहता है। उसका यह सीखना व सिखाना विभिन्न समूहों, उत्सवों, पत्र–पत्रिकाओं, दूरदर्शन आदि से अनौपचारिक रूप में होता है।

इस प्रकार सीखना–सिखाना अनौपचारिक सीखना–सिखाना कहलाता है तथा यही शिक्षा का व्यापक अथवा विस्तृत अर्थ है। जब बच्चा औपचारिक कक्षाओं में निश्चित समय में निश्चित पाठ्‌यक्रम को पढ़कर अनेक परीक्षाओं को उत्तीर्ण करके सीखता है, तब उसे औपचारिक शिक्षा कहते हैं। इसे शिक्षा का संकुचित अर्थ माना जाता है।

यहां यह भी स्पष्ट है कि शिक्षा, समाज में चलने वाली समाज के लिए व समाज के द्वारा ही निर्धारित होने वाली प्रक्रिया है। और, समाज परिवर्तनशील एवं गतिशील है। अतः शिक्षा भी एक गतिशील व परिवर्तनशील प्रक्रिया मानी जाती है। यही कारण है कि शिक्षा को किसी अंतिम रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। तथापि कुछ सामान्य प्रवृतियों के आधार पर इसे परिभाषित किया गया है। ये परिभाषाएं वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, आदि दृष्टियों से भिन्न–भिन्न संदर्भों में की गई है। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सामान्य तौर पर शिक्षा की व्याख्या अथवा स्पष्टता अपने–अपने अनुभवों पर आधारित विभिन्न चिंतनधाराओं, विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य में की जाती रही है। एक ही समय में अलग–अलग विचारधाराओं के कारण शिक्षा के स्वरूप को निश्चितरूप से एक बंधे–बंधाए ढांचे में नहीं बांधा जा सकता। यही कारण है कि विभिन्न विचारकों के अनुसार शिक्षा को किसी एक निश्चित परिभाषा में नहीं ढाला जा सकता अपितु अलग–अलग प्रकार से, इसकी व्याख्या भी अलग–अलग परिप्रेक्ष्यों में अनेक प्रकार से की गई है। कहीं इसे शब्दार्थ की दृष्टि से, तो कहीं इसे लक्ष्यों, कार्यों, प्रक्रियाओं, अथवा सीमाओं की दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस सबके बाद भी इतना सा लगभग निश्चित है कि यह एक उद्‌देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। यद्यपि इसका कोई अंतिम रूप निर्धारित नहीं किया जा सकता तथापि प्रत्येक समाज अपनी भावी पीढ़ी व समाज के विकास के परिप्रेक्ष्य में इसका रूप निर्धारित करते रहने का प्रयास निरन्तर करते रहता है।

1.3 शिक्षा और समाज (Education and society)

शिक्षा और समाज में गहरा संबंध है। एक ओर शिक्षा परम्परा की धरोहर को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाती है और इस तरह से संस्कृति की निरन्तरता बनाए रखने में सहायक होती है। दूसरी ओर पारिस्थितिक परिवर्तन उसे अनुकूलन का साधन बनाने की प्रेरणा देते हैं। अपने इस पक्ष में शिक्षा परिवर्तन का माध्यम बनती है। यह परिवर्तन की दिशा निर्धारित कर उसके वैकल्पिक प्रतिरूप प्रस्तुत करती है, प्राविधिक साधन जुटाती है और नवाचारों के लिए भाव–भूमि निर्मित करती है। शिक्षा के ये दोनों प्रकार्य महत्वपूर्ण है, क्योंकि परम्परा की उपेक्षा यदि धुरीहीन बनाती है तो परिवर्तन की अस्वीकृति या मंदगति सांस्कृतिक पक्षाघात प्रमाणित हो सकती है। वैकल्पिक भविष्य की परिकल्पनाओं को साकार करने के लिए इन दोनों प्रकार्यों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

1.3.1 शिक्षा के प्रकार्य

शिक्षा का पहला प्रकार्य है कि वह व्यक्तियों और उसके समूहों में अधिकतम जागरूकता उत्पन्न करे, ज्ञान का प्रसार करें तथा ऐसे कौशल सिखाए जिससे वे अपना वैयक्तिक या सामूहिक जीवन यापन करने योग्य बन सकें और उसमें गुणात्मक सुधार ला सकें।

दूसरा प्रकार्य है सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन में भाग लेने और उसमें अपना योगदान करने के अवसर सभी वर्गों और श्रेणियों के नागरिकों को सुलभ कराना। तीसरा प्रकार्य यह है कि सभी संस्कृतियों को इसकी स्वतंत्रता हो और अवसर दिए जाएं कि वे अपनी विरासत को समृद्ध बना सकें, उसकी अभिवृद्धि कर सकें, परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे सजातीयता के संकीर्ण और दुर्भेद्य खाँचों में फंसकर रह जाएँ। मानव की नियति के सामान्य और सार्वभौम स्वरूप को देखते हुए विभिन्न संस्कृतियों और समाजों के बीच सद्भाव के सेतु बनाए जाने चाहिए ताकि उनके बीच सहअस्तित्व और सहयोग के सार्थक प्रतिमान स्थापित किए जा सके और उन्हे सुदृढ़ बनाया जा सके। इन सब कार्यों में शिक्षा की भूमिका प्रधान है।

चौथा, मानव जाति के जीवन और प्रगति संबंधी आवश्यकताएँ शैक्षिक प्रयासों में सबसे आगे करना होगा। समसामयिक संदर्भ में जीवन का अर्थ है समस्याओं का पूर्वानुमान और उनका समाधान करने की सामर्थ्य। प्रगति का अर्थ है जीवन की गुणवत्ता को समृद्ध बनाना। जीवित रहने की उत्कृष्ट अभिलाषा – हालांकि इससे निकट समस्याएं भी उत्पन्न होती है – परिवर्तन के लिए सबसे बड़ी प्रेरणा हो सकती है। जीवन की गुणवत्ता का प्रश्न इस सदी का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न बनकर सामने आ रहा है, किन्तु लगता है बंधी–ढ़की जीवन पद्धति और सुसंस्थापित, स्वार्थ, सौद्देश्य विचार और उस दिशा में किए गए कार्य के मार्ग में बाधक बने हुए है।

शिक्षा प्रणाली समाज का ही एक अंग होती है और उसकी एक महत्वपूर्ण सामाजिक भूमिका होती है। ज्ञानार्जन और स्वतंत्र अन्वेषण के आदर्श यद्यपि प्रशंसनीय है, उनमें सार्थकता और सोद्देश्यता तभी आती है जब वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के व्यापक लक्ष्य की ओर उन्मुख हों। उन्हें इस दिशा में प्रेरित करना शिक्षा का दायित्व है।

क्रियाकलाप (Activity) :

शिक्षा की अवधारणा के बारे में निम्नलिखित कथनों को पढ़े और यह विश्लेषण करें कि उनका फोकस शिक्षा के किस परिप्रेक्ष्य पर है :

1. 'मनुष्य की भीतरी पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है' – विवेकानन्द
2. 'शिक्षा बच्चे के शरीर, मन एवं आत्मा में विद्यमान श्रेष्ठ तत्वों का पूर्ण विकास है'–महात्मा गांधी
3. 'शिक्षा नए समाज को बनाने की एक प्रक्रिया है'–संत विनोबा भावे
4. 'शिक्षा मनुष्य के मष्तिष्क के संपूर्ण विकास का नाम है'–डॉ. जाकिर हुसैन

5. 'शिक्षा व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति को खोलने की कुंजी है'–के.जी.सैयदीन
6. 'शिक्षा मनुष्य के नैतिक विकास का साधन है'–डॉ. राधाकृष्णन
7. 'शिक्षा व्यक्ति के समन्वित विकास की प्रक्रिया है'–जे.कृष्णमूर्ति
8. 'शिक्षा सत्य को खोजने का मार्ग है'–सुकरात
9. 'शिक्षा व्यक्ति की उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रखकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके–जान ड्यूई
10. 'शिक्षा व्यक्ति को दूरदर्शी, साहसी, बुद्धिमान बनाने का साधन है'– विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948–49
11. 'शिक्षा बच्चों को व्यावहारिक जीवन जीने की कला सीखने की प्रक्रिया है'–माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952–53
12. 'शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है। शिक्षा राष्ट्रीय संपन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है'–राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964–66

उपरोक्त चर्चाओं एवं क्रियाकलाप के आधार पर हम शिक्षा की अवधारणा के बारे में सार रूप से यह कह सकते हैं कि –

- शिक्षा एक प्रक्रिया है।
- यह प्रक्रिया उद्देश्यपूर्ण है।
- मूलरूप से ये उद्देश्य परिवर्तन तथा विकास संबंधी है।
- यह परिवर्तन तथा विकास वैयक्तित अथवा समाज संबंधी हो सकता हैं।
- यह प्रक्रिया सुनियोजित अर्थात औपचारिक अथवा सहज अर्थात अनौपचारिक रूप से चलने वाली हो सकती है।

क्रियाकलाप **(Activity)** :

अपने आस–पास के समुदाय के लोगों से चर्चा करें कि उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ क्या है? खासकर उपेक्षित समुदाय के लोगों से बातचीत करके यह जानने का प्रयास करें कि वे किस प्रकार की शिक्षा को बेहतर मानते है? अंत में यह विश्लेषित करें कि समाज में शिक्षा के बारे में क्या–क्या अवधारणाएं हैं।

1.4 शिक्षा के आधारों की समझ **(Understanding the Foundation of Education)**

शिक्षा की अवधारणा को समझने के साथ–साथ यह समझना भी जरूरी है कि वे कौन से तत्व हैं जो इसे आधार प्रदान करते हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है – वे कौन–कौन से विषय हैं जिनसे शिक्षा नामक प्रक्रिया अपने विभिन्न अंगों जैसे शिक्षा के उद्देश्य, बुनियादी ज्ञान, शिक्षण विधियाँ, पाठ्य सहगामी क्रियाएं, आदि के लिए सहायता लेती हैं अर्थात वे कौन–कौन से विषय हैं जिनके माध्यम से शिक्षा क्या है?, शिक्षा कैसी होनी चाहिए? शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं?, अथवा कैसे होने चाहिए?, शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण कैसे किया जाता है?, आदि प्रश्नों को संबोधित किया जाता है।

हालांकि, शिक्षा एक ऐसा ज्ञानानुशासन है जिससे कोई भी विषय अछूता नहीं है। लेकिन, यदि हम इसके आधारों की बात करें तो कुछ प्रमुख विषय अवश्य उभर कर आते हैं जिसके आधार पर ' शिक्षा' अपनी सैद्धांतिक जमीन तैयार करती है। इनमें चार प्रमुख विषय हैं – मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र और इतिहास। इनकी संक्षिप्त चर्चा आगे की जा रही है ताकि आप शिक्षा में इनकी भूमिका से परिचित हो सकें।

1.4.1 शिक्षा के आधार के रूप में मनोविज्ञान (Psychology as a foundation of education)

जरा विचार कीजिए कि अगर कोई शिक्षक पढ़ाते समय अपने विद्यार्थी की रूचियों, योग्यताओं, समस्याओं, मानसिक स्तर अथवा उसके अन्य पक्षों का ध्यान नहीं रखता या नहीं जानता तो क्या सीखने–सिखाने की क्रिया पूरी तरह सफल हो सकती है? शायद नहीं।

इसलिए शिक्षक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह अपने विद्यार्थी की रूचियों, योग्यताओं, मानसिक स्तर आदि को भली–भांति समझे। जब तक वह बच्चे के विकास के अनेकानेक पहलुओं को भली–भांति नहीं समझेगा, वह अपने पढ़ाने की प्रक्रिया में पूरी तरह से सफल नहीं हो सकेगा। बच्चे की ये रूचियां, क्षमताएं, मानसिक स्तर, आदि बच्चे के मनोवैज्ञानिक पक्ष हैं। अतः कहा जाता है कि शिक्षा के उद्देश्य तय करते समय, शिक्षण विधियों को अपनाते/चुनते समय, और पाठ्यक्रम की सामग्री बनाते समय शिक्षक को बच्चे के मनोवैज्ञानिक पक्षों का ध्यान रखना पड़ता है। इस तरह शिक्षा और मनोविज्ञान में गहरा संबंध है। वास्तव में आज की शिक्षा को बालकेन्द्रित शिक्षा माना जाता है। इसका यही भाव है कि शिक्षा की प्रक्रिया लागू करते समय बच्चे के मनोवैज्ञानिक पक्षों को केन्द्र में रखना चाहिए अर्थात उनकी रूचियों, योग्यताओं, समस्याओं आदि का ध्यान रखना चाहिए।

एक प्रसिद्ध कथन है – '' एक संपूर्ण बच्चा विद्यालय आता है'। इसका समान्य अर्थ यही है कि जब बच्चे पढ़ने के लिए विद्यालय आते हैं तो वे अपने साथ–साथ अपनी रूचियों, क्षमताओं, समस्याओं, मानसिक स्तर को साथ लाते हैं। हर बच्चा अपने इन मनोवैज्ञानिक पक्षों में दूसरे से भिन्न होता है। हर बच्चे के अनुभव दूसरे बच्चों के अनुभवों से अलग होते है। अतः शिक्षा का सामान्य कार्य हैं, बच्चे का बहुमुखी विकास करना या उसकी मूल प्रवृत्तियों, आवश्यकताओं, आदि में संशोधन करना। यानि बच्चे में जो योग्यताएं हैं, उसकी जो रूचियां, आदि–आदि उन्हीं का विकास अथवा संशोधन करना। इस तरह शिक्षा बच्चे के मनोवैज्ञानिक पक्षों का ही विकास व संशोधन है। इसीलिए शिक्षा में मनोविज्ञान ज्ञानानुशासन से वैसे सिद्धांतो एवं विषयवस्तुओं को अपनाया गया है जिनके आधार पर बच्चों के व्यक्तित्व एवं उनके सीखने–सिखाने की प्रक्रिया की सैद्धांतिक समझ बन सके। आप इस डिप्लोमा इन एलिमेंट्री एजुकेशन की पाठ्यचर्या का विश्लेषण करेंगे तो इसके विभिन्न विषयपत्रों में आपको मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की चर्चा मिलेगी, उदाहरण के तौर पर बाल विकास और सीखना, भाषा और शिक्षा, आदि।

क्रियाकलाप (Activity) :

अपने डी.एल.एड. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम तथा विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों के उन विषयवस्तुओं की पहचान करें जो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पहलू से जुड़े हुए हैं। उनकी सूची बनाएं और अध्ययन कक्षा कक्ष में केन्द्र पर चर्चा करें।

1.4.2 शिक्षा के आधार के रूप में समाजशास्त्र (Sociology as a foundation of education)

इसमें दो राय नहीं है कि किसी भी समाज की सरंचना, उसकी जरूरतें, उसमें उपलब्ध अलग–अलग तरह के स्रोत ही उस समाज की शिक्षा की नीति की आधारभूमि तय करते हैं। कहा भी जाता है, शिक्षा का रूप वैसा ही होता है जैसा हमारा समाज है और जैसा समाज हम बनाना चाहते हैं। असल में शिक्षा प्रक्रिया के तीनों ही प्रमुख अंग–विद्यार्थी, शिक्षक तथा पाठ्यक्रम सभी समाज के ही अंग हैं। शिक्षा के उद्देश्य समाज की जरूरतों के अनुसार तय किए जाते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया के विभिन्न अंग निरंतर ही समाज के स्वरूप से प्रभावित होते रहते हैं। शिक्षण की सामग्री का निर्माण तथा शिक्षण पद्धतियां समाज के स्वरूप पर ही निर्भर करती है। शिक्षा के स्वरूप में आने वाले परिवर्तन भी समाज की बदलती जरूरतों पर निर्भर हैं। शिक्षा की प्रक्रिया जहां एक ओर

वर्तमान की स्थितियों से तथा भावी स्वरूप से प्रभावित होती हैं या बदलती हैं वहीं उस समाज की संस्कृति से नियंत्रित भी होती है। यही कारण है कि शिक्षा की प्रक्रिया को एक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है।

असल में सामाजिक परिस्थितियों को छोड़कर शिक्षा की कल्पना भी दूभर होती है। क्योंकि शिक्षा प्रक्रिया में प्रयोग में लाई जाने वाली सारी सामग्री समाज से ही आती है। यदि थोड़ा और गहराई से सोचा जाए तो स्पष्ट होगा कि शिक्षा एक प्रकार से समाज से ही निर्देशित होती है। हर समाज अपने रूप को तो बदलने अथवा इसी रूप में रखने के लिए शिक्षा की योजनाएं बनाता है व उसके लक्ष्यों को तय करता है। जैसे सन 1964–66 में भारत सरकार ने समाज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा को रूप देने के लिए समाज की अनेक अवस्थाओं और आवश्यकताओं का बहुत बारीकियों के साथ परीक्षण करके उन्होंने उस समय भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित किया था। इसमें तीन प्रमुख बातें थीं –

राष्ट्र की एकता, राष्ट्र के विकास के लिए अधिक से अधिक उत्पादन ताकि समाज की जरूरतें पूरी की जा सकें, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण ताकि लोगों में तर्कशक्ति पनप सके। इसी तरह राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की समीक्षा हेतु 1990 में गठित आचार्य राममूर्ति समिति ने अपने प्रतिवेदन का नाम ''प्रबुद्ध और मानवीय समाज की ओर'' रखा। इस नाम से भी इस बात की ओर इशारा मिलता है कि शिक्षा का लक्ष्य सूझबूझ वाले इंसानियत को जानने व समझने वाले लोगों को बनाना है।

शिक्षा और समाज के अंर्तसम्बन्धों को समझने में समाजशास्त्रीय सिद्धांतों और विषयवस्तुओं से खासी मदद मिलती है। समाज में बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया हो, या फिर असमानता, वंचना, सामाजिक न्याय, समावेशी समाज, आदि शिक्षा में इन सब की सैद्धांतिक समझ का आधार हमें समाजशास्त्र से मिलता है। यदि कहा जाय तो शिक्षा के सामाजिक सांस्कृतिक आयामों को समझने में समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों की विशेष जरूरत होती है।

क्रियाकलाप :

अपने डी.एल.एड. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम तथा विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों के उन विषयवस्तुओं की पहचान करें जो शिक्षा के समाजशास्त्रीय पहलू से जुड़े हुए है। उनकी सूची बनाएं और अध्ययन कक्षा कक्ष में चर्चा करें।

1.4.3 शिक्षा का दार्शनिक आधार (Philosophical foundation of education)

दर्शनशास्त्र का प्रमुख कार्य शिक्षाशास्त्र को एक बौद्धिक आधार देना है। कोई भी शिक्षा व्यवस्था तब तक पूर्ण या प्रभावशाली नहीं हो सकती जब तक वह सुव्यवस्थित दार्शनिक चिंतन पर आधारित न हो। यह शिक्षा को एक 'तार्किक–चिंतन' का आधार प्रदान करना है। इस दृष्टि से शिक्षा संबंधी विभिन्न आयामों को एक सैद्धांतिक आधार प्रदान करना दर्शनशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य है। यह भी माना जाता है कि 'शिक्षा दर्शन' शिक्षा संबंधी 'आत्म चेतना' से प्रेरित 'आलोचनात्मक मीमांसा' है। इसके अंतर्गत शिक्षा संबंधी विभिन्न धारणाओं, संकल्पनाओं अथवा चिंतनों के निहितार्थों की जांच–पड़ताल, विमर्श या खोज की जाती है। सामान्य अनुभवों अथवा विशेष रूप से अपनाई गई दार्शनिक तकनीकों से प्राप्त शिक्षा संबंधी सूचनाओं, जानकारियों या ज्ञान को अधिक स्पष्टता प्राप्त होने लगती है। कारण स्पष्ट ही है कि शिक्षा के उद्देश्यों का संबंध व्यक्ति के जीवन लक्ष्यों से गहरे रूप से जुड़ा रहता है। बुनियादी तौर पर 'जीवन लक्ष्य' जीवन दर्शन का ही रूप है।

शिक्षा के दार्शनिक तत्वों के बिना शिक्षा की प्रकृति को समझना मुश्किल है। यह भी माना जाता है कि इसका मूल उद्देश्य 'शिक्षा व्यवस्था' को एक ऐसा ठोस आधार देना है जिसके द्वारा मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं की पहचान करके उन समस्याओं को दूर किया जा सके। इस रूप में दर्शन शिक्षा संबंधी विभिन्न गतिविधियों के आधार के रूप में कार्य करता है। अतः इसके अंतर्गत विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं, विचारों अथवा

सिद्धांतों के जो शिक्षा–संबंधी निहितार्थ होते हैं, उनकी चर्चा रहती है। दर्शन शिक्षा के निम्न प्रकार के प्रश्नों के जवाबों को खोजने में सहायता करता है –

- शिक्षा की प्रकृति क्या है अथवा कैसी होनी चाहिए?
- शिक्षा की सामग्री क्या होनी चाहिए?
- ज्ञान क्या है? ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाता है?
- ज्ञान की प्रामाणिकता कैसे परखी जाए?
- मूल्य क्या होते हैं? उनकी शिक्षा कैसे दी जानी चाहिए?

ऐसे प्रश्नों के स्पष्टीकरण के लिए दर्शनशास्त्र शिक्षा को आधारभूत सामाग्री देता है ताकि इन प्रकार के प्रश्नों का उत्तर पाया जा सकें। अतः शिक्षा को दर्शनशास्त्र की विभिन्न विचारधाराओं के अंतर्गत उनके तत्व–मीमांसा, ज्ञान–मीमांसा तथा मूल्य–मीमांसा संबंधी मान्यताओं पर निर्भर रहना होता है। लेकिन, शिक्षा में दर्शन के प्रयोग का प्रश्न एक एकांगी प्रश्न नहीं है। यह अन्य अनेक सम्बद्ध विषयों के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा भी करता है। चूंकि शिक्षा एक सामाजिक विषय है, परिणामतः इसकी प्रकृति अन्तःशास्त्रीय है।

क्रियाकलाप (Activity) :

अपने डी.एल.एड. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम तथा विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों के उन विषयवस्तुओं की पहचान करें जो शिक्षा के दार्शनिक पहलू से जुड़े हुए हैं। उनकी सूची बनाएं और अध्ययन कक्षा कक्ष में चर्चा करें।

1.4.4 शिक्षा के आधार के रूप में इतिहास (History as a foundation of education)

यह स्पष्ट है कि शिक्षा को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है, जिसकी जड़े इतिहास से सिंचित होती रहती है। इसलिए शिक्षा स्वयं में एक 'ऐतिहासिक' विषय है। इसके इतिहास के विश्लेषण से ही हम जान पाते हैं कि विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक–सांस्कृतिक परिघटनाओं के कारण शिक्षा का स्वरूप किस प्रकार निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। आज जिसे शिक्षा माना जाता है, उसमें कई सदियों के दौरान चली आ रही शैक्षिक चिंतन एवं गतिविधियों के प्रभावों का समावेश है। अतः वर्तमान में शिक्षा के दौरान चली आ रही शैक्षिक चिंतन एवं गतिविधियों के प्रभावों का समावेश है। अतः वर्तमान में शिक्षा की स्थिति को समझने के लिए इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों को जानना जरूरी है। उदाहरण के तौर पर, यदि शैक्षिक नीतियों का ही विषय लें तो इनमें राजनैतिक–सामाजिक परिस्थितियों के कारण निरन्तर परिवर्तन आते रहे हैं, इसकी सैद्धांतिक समझ के लिए शिक्षा के इतिहास का आधार जरूरी है। लेकिन, इतना महत्वपूर्ण होते हुए भी, विश्लेषण करने पर हम पाते है कि शिक्षक–शिक्षा की पाठ्यचर्या में शिक्षा के ऐतिहासिक आधारों का समावेश बहुत ही सीमित दृष्टिकोण से होता रहा है।

इस डी.एल.एड. पाठ्यक्रम में यह प्रयास किया गया है कि शिक्षा के ऐतिहासिक आधार को व्यापक एवं जीवन्त रूप से सम्बोधित किया जाए। आपके इसके विभिन्न विषयों में शैक्षिक इतिहास की समझ को पाएंगे, जैसे–विद्यालय और शिक्षा नीति, शिक्षा का साहित्य, आदि।

क्रियाकलाप (Activity) :

अपने डी.एल.एड. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम के उन विषयवस्तुओं की पहचान करें जो शिक्षा के ऐतिहासिक पहलू से जुड़े हुए हैं। उनकी सूची बनाएं और अध्ययन केन्द्र पर चर्चा करें।

1.5 शिक्षा के उद्देश्यों एवं मूल्यों की समझ (Understanding the objectives and values of education)

जब हम किसी से यह पूछते हैं अथवा स्वयं विचार करने बैठते हैं कि 'शिक्षा का उद्देश्य क्या है' तब हमारे समक्ष कई प्रश्न उभर कर आते हैं, जैसे–समाज के किस कार्य को इससे अछूता छोड़ा जाय, क्या हम शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित कर सकते हैं, शिक्षा के उद्देश्य क्या समाज के उद्देश्यों से भिन्न है, इत्यादि। शिक्षा के उद्देश्यों से संबंधित यही सवाल इसे एक विमर्श का विषय बनाते हैं। भारतीय संदर्भ में इन प्रश्नों पर विमर्श के लिए हम भारत के संविधान की प्रस्तावना में उल्लेखित स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, समानता और न्याय के मूल्यों को लेकर भी लोगों की समझ अलग–अलग हो सकती है। अतः इस संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करना भी अति जटिल है।

शिक्षा के उद्देश्यों को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है – व्यक्तिपरक व समाज की संरचना के स्तर पर अर्थात् लोगों की शिक्षा कही जाने वाली प्रक्रिया से अपेक्षा हो सकती है कि उससे एक खास प्रकार के व्यक्तित्व का निर्माण होगा। वहीं, यह उम्मीद भी हो सकती है कि एक प्रकार की शिक्षा व्यवस्था से एक खास तरह के सामाज को बनाने में सहायता मिलेगी। यहां शिक्षा व्यवस्था से तात्पर्य सिर्फ विद्यालय मात्र नही है बल्कि समाज की सभी संस्थाएं हैं जो व्यक्ति के संपर्क में आती है। अक्सर हम स्कूली व्यवस्था को जरूरत से ज्यादा प्रभावशाली मान लेते हैं। अगर हम यह भी माने कि स्कूलों में सभी शिक्षक और पूरा माहौल एक विशेष दर्शन से पूरी तरह संचालित है, तो भी हमें याद रखना चाहिए कि व्यक्तित्व पर असर डालने वाले और भी कई महत्वपूर्ण कारक है। साथ ही हमें यह भी समझना होगा कि 'क्या स्कूल और शिक्षा पयार्यवाची है?' जब कोई यह कहता है कि आज स्कूलों में वैसा वातावरण नहीं है या शिक्षक–विद्यार्थी संबंध वैसे नहीं है जैसे पहले थे, तो वह एक स्तर पर यही आलोचना कर रहा है कि स्कूलों में जो हो रहा है उसे वह शिक्षा नहीं मानना चाहता। 'शिक्षा' शब्द एक सराहनीय प्रक्रिया के लिए प्रयोग होता है। इसलिये हमारे पास 'कुशिक्षा' या 'खराब शिक्षा' जैसे शब्द भी हैं। शिक्षा जैसी प्रक्रिया के बारे में सिर्फ शिक्षा विचारक ही नहीं बल्कि आम इंसान भी एक राय रखता है। उसका प्रमुख कारण तो यही है कि वो भी उसमें भागीदार है और उससे प्रभावित भी है। शिक्षा कैसे सबकी चिंता का विषय है यह इससे स्पष्ट होता है कि अक्सर किसी प्रशिक्षित शिक्षक के पढ़ाने को लेकर उसके विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकों की राय अलग–अलग हो सकती है। हो सकता है कि एक शिक्षिका रोज अपनी कक्षा को बाहर खेलने ले जाती हो पर विद्यार्थियों के अभिभावकों की अपेक्षा के हिसाब से यह एक निरर्थक गतिविधि हो। अतः शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रति भी कोई एक आदर्श समझ नहीं हो सकती। इनको समझने के भी विभिन्न दार्शनिक आधार हो सकते हैं।

चिंतन के बिन्दु :

आप विचार करें कि क्या नीचे दिए बिन्दु शिक्षा के उद्देश्य हो सकते हैं। आप इनसे कहां तक सहमत हैं। आप इसमें और कौन–कौन से उद्देश्यों को जोड़ना चाहेंगे।

- शिक्षा का उद्देश्य प्रेरणा देना और सीखने के अवसरों में वृद्धि करना, जिससे बच्चों में ज्ञानार्जन की कला का विकास हो सकें।
- बच्चों में सतत नवीन ज्ञान हासिल करने की भावना को प्रश्रय देना, जिससे वे परिस्थितियों से सामंजस्य बना सकें।
- बच्चों में ज्ञान के अतिरिक्त विभिन्न कुशलताओं एवं वांछित मूल्यों का विकास करना।
- बच्चों में स्व–चिन्तन तथा जिम्मेदारीपूर्ण आचरण का विकास।

- उनमें सौन्दर्यबोध विकसित करना, जिससे ये अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति सम्मान का भाव रख सकें।
- सत्यनिष्ठा, ईमानदारी तथा आत्मविश्वास का विकास।
- सामाजिक मूल्यों का संवर्धन।
- लोकतांत्रिक मूल्यों का समावेशन, जिससे एक समतामूलक समाज की स्थापना हो सके।
- सत्यनिष्ठा, ईमानदारी तथा आत्मविश्वास का विकास।
- सामाजिक मूल्यों का संवर्धन।
- लोकतांत्रिक मूल्यों का समावेशन, जिससे एक समतामूलक समाज की स्थापना हो सके।
- अपने और दूसरों के धर्म के प्रति समरसता के भाव का विकास।
- अपने राज्य एवं देश के विविधता की समझ और उनके प्रति आदर का भाव।
- परम्पराओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर आवश्यकतानुसार अपने जीवन शैली में स्थान देना।
- समाज में व्याप्त समस्याओं का साहस और धैर्य के साथ सामना करना न कि उनसे हार मान लेना।
- स्वयं एवं प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाना, एवं पर्यावरण के प्रति संवदेनशील बनाना जिससे उसके संरक्षण की व्यवस्था की जा सके।
- समाज में सामंजस्य बनाना, जिससे एक शांतिपूर्ण एवं अहिंसात्मक समाज का निर्माण किया जा सके।

एक लम्बे समय तक माना जाता रहा है कि शिक्षा छात्रों एवं शिक्षकों के बीच के अंतःक्रिया की दो ध्रुवीय प्रणाली है, जिसका एक ध्रुव सीखने वाला छात्र तथा दूसरा ध्रुव सिखाने वाला शिक्षक होता है। मानव जीवन के प्रारंम्भिक काल में जब जीवन अपेक्षाकृत सरल था तो समन्यतः शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया ही रही होगी। आज भी हम गांवों में सहज तथा समान्य समूह में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया एवं बातचीत में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को सम्पन्न होते देख सकते है। परन्तु मानव जीवन के जटिलतर स्तर पर ज्ञान, मूल्य एवं अनुभवों से सीखने–सिखाने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत विशिष्ट हो जाती हैं। उसके लिए नये एवं औपचारिक संस्थाओं की आवश्यकता होती है जिसमें न केवल सीखने तथा सिखाने वाले के अधिकार या भूमिका पूर्व में ही तय होती है, बल्कि क्या सिखाया जाय कैसे सिखाया जाय तथा कहाँ सिखाया जाय यह भी पहले ही तय हो जाता है। कई बार नियम तथा विषयवस्तु तय करने वाले सीखने–सिखाने वालों से भिन्न होते हैं। इस तरह यह प्रक्रिया तीन–ध्रुवीय हो जाती है जिसके पहला ध्रुव छात्र, दूसरे ध्रुव पर शिक्षक तथा तीसरे पर समाज होता है। इन अर्थों को एक साथ रखकर शिक्षा के अर्थ को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि शिक्षा वह प्रक्रिया है जिससे बच्चों का अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी दोनों योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास होता है।

चर्चा के बिन्दु (Points of discussion)

- आपके अनुसार क्या शिक्षा महज एक सीखने सिखाने की प्रक्रिया हैं?
- क्या शिक्षा को ध्रुवीय गतिविधि के रूप में मानना चाहिए अर्थात इसको अंतःक्रियात्मक गतिविधि के रूप में बढ़ावा दिया जाना चाहिए?
- क्या शिक्षा के लिए किसी अन्य व्यक्ति का होना अति आवश्यक है?
- क्या शिक्षा सिर्फ विद्यालय तक ही सीमित हैं?

बहुत से शिक्षाशास्त्रियों का मानना है कि शिक्षा केवल विद्यालय शिक्षण तथा प्रशिक्षण तक ही सीमित न होकर बच्चों में जीवन के सम्पूर्ण अनुभवों से संबंधित होती है। चाहे ये अनुभव विद्यालय के अन्दर हो या विद्यालय के बाहर। शिक्षा मात्र साक्षरता या केवल 3® reading, writing, & recoding नहीं हैं बल्कि सम्पूर्ण क्रियाओं एवं गतिविधियों तथा समस्त स्थानिक–कालिक परिसर में गतिशील होती हैं अर्थात् विद्यालय के अतिरिक्त शिक्षा घर, समुदाय तथा समाज द्वारा प्रदत्त विकास के अवसरों तक भी पसरी होती है। एक प्रकार से शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया का ही एक दूसरा नाम है। यह कभी सामाजीकरण की एक विशिष्ट प्रक्रिया या कभी सामाजीकरण के समानांतर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में समझी जाती है।

क्रियाकलाप :

उपरोक्त चर्चा को आधार मानते हुए विचार करें कि क्या नीचे दी गयी गतिविधियां शिक्षा हैं? इस संदर्भ में अपने आस–पास के लोगों से चर्चा करें तथा उनके विचारों को सूचीबद्ध करें:

नदी में तैरना	मछली पकड़ना	खेत में कार्य करना
बड़े बुजुर्गों के अनुभव	केवल कहानी की किताबें पढ़ना	बागों में तितली को पकड़ना
वर्षा में बचाव का उपाय खोजना	हस्त कौशल के माध्यम से छोटी–छोटी वस्तुओं का निर्माण	मिट्टी के छोटे–छोटे खिलौनो का निर्माण

1.6 विद्यालय में शिक्षा की प्रकृति (Nature of education in school)

विद्यालय सीखने–सिखाने की औपचारिक प्रक्रिया का स्थल है। समय के साथ–साथ औपचारिक संस्थाओं में भी विविधता आई है। औपचारिक संस्थाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता सीखने–सिखाने वाले की स्थानिक एवं कालिक निकटता है। ये दोनों एक निर्धारित स्थान एवं समय में एक दूसरे से अन्तः क्रिया करते है। इसमें छात्र एवं शिक्षक भौतिक एवं वास्तविक रूप में एक–दूसरे के आमने सामने होते है। ये प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे से अन्तः क्रिया करते है। परन्तु शिक्षा की बढ़ती मांग तथा संस्थाओं के स्थानिक सीमाओं को लांघ कर शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा ने औपचारिक शिक्षा के ताने बाने में परिवर्तन ला दिया। पत्राचार या खुले विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय की नई व्यवस्थ्झा उभर कर आई जिसमें छात्रों एवं शिक्षकों के बीच प्रत्यक्ष एवं नियमित अंतःक्रिया की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया। उदाहरण के लिए, केरल का एक विद्यार्थी बिना मेघालय गये वहां के विश्वविद्यालय से कोई भी कोर्स कर सकता है। जिसमें शिक्षक एवं छात्र अप्रत्यक्ष रूप से अध्ययन सामग्री के माध्यम से अंतःक्रिया करते है। इस व्यवस्था को गैर औपचारिक शिक्षा कहते है। इसके अतिरिक्त जन संचार क्रांति ने भी गैर औपचारिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाया है। काल्पनिक कक्षा (Virtual Classes) तथा ई–लर्निंग या ई–एजुकेशन जैसे शब्द गैर औपचारिक शिक्षा के नए उभरते हुए अध्याय हैं।

क्रियाकलाप :

नीचे शिक्षा के विभिन्न स्रोत दिए गए है। बतायें कि ये शिक्षा की किस प्रक्रिया से जुड़े हैं और पता करें कि उस प्रक्रिया की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं।

- आँगन बाड़ी केन्द्र
- परिवार एवं समाज
- ई–लर्निंग या ई–एजुकेशन
- संस्थागत विद्यालय

शिक्षा के उद्‌देश्यों में आए बदलाव ने शैक्षणिक प्रणाली में ज्ञान प्राप्ति के तरीकों एवं इसमें अध्यापक की भूमिका को नए सिरे से तराशने और समझने की जरूरतों पर बल दिया है। आज हम इस अवधारणा पर बल दे रहे हैं कि शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए। परन्तु आज भी शिक्षक पूरी शिक्षण प्रक्रिया पर हावी रहता है। ज्ञान की प्रक्रिया उन्हीं से शुरू होती और ये ही उसको नियंत्रित करते है। कक्षागत शिक्षण प्रक्रिया में उसी का वर्चस्व है। प्राचीन काल में यह वर्चस्व और शक्तिशाली था। वह चाहे तो कुछ लोगों को शिक्षा दे सकता था और चाहे तो कुछ लोगों को वंचित रख सकता था। परन्तु आधुनिक लोकतांत्रिक देशों में इस प्रक्रिया को प्रश्रय देना देश और राज्य के हित में समुचित नहीं समझा जाता ।

आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में लगभग सभी शिक्षाविद् एक बाल केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था की वकालत करते है जहां ज्ञान को प्राप्त करने में विद्यार्थी को पूरी स्वतंत्रता दी जाय तथा शिक्षक एक सहायक के तौर पर उनकी मदद करे। अगर मूल रूप से देखें तो रूसों का प्रकृतिवाद हो या पेस्टोलॉजी का अन्वेषणवाद, फ्रोबेल का किंडरगार्डन पद्धति हो या मारिया मान्टेसरी का मान्टेसरी पद्धति, सबों ने बच्चों को केन्द्र मानते हुए अध्यापकों की सापेक्षिक भूमिका निर्धारित करने का प्रयास किया है। भारतीय संदर्भ की बात करें तो गीजूभाई बधेका, गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, कृष्णमूर्ति जैसे अनेक शिक्षाशास्त्रीयों ने अपने–अपने तरीकों से ऐसे ज्ञान के निर्माण पर बल दिया है जिसका सृजन बच्चे स्वयं करें। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इन समस्त प्रक्रियाओं का सूत्रधार अध्यापक है जो समय, परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। इस चर्चा से एक बात उभर कर सामने आती है कि शिक्षाशास्त्री चाहे प्रकृतिवादी हो या आदर्शवादी, यथार्थवादी हो या प्रयोगवादी या फिर निर्माणवादी दृष्टिकोण के पक्षधर हों, इस बात को स्वीकार करते है कि शिक्षा का उद्‌देश्य ज्ञान अर्जन करना है। हाँ, यह सही है कि विधियाँ अलग–अलग हो सकती हैं जो, ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या कर सकती हैं या सम्पूर्ण रूप से एक बच्चें के विकास में सहायक हो सकती है।

शिक्षा की स्कूली प्रक्रिया को हम तीन हिस्सों में बांटकर देख सकते है। एक विषयगत ज्ञान–समझ (गणित, भौतिकी, इतिहास, भाषा आदि), दूसरा कला–काम का क्षेत्र (तमाम तरह के हुनर चाहे मुख्यतः उपयोगी हों या सुंदर) और तीसरा मूल्यों का। तीनों ही हिस्सों के प्रति हमारा व्यवहार क्या होगा यह हमारी नजर में शिक्षा के उद्‌देश्य से निर्धारित होगा। यहां यह बात रेखांकित करना आवश्यक है कि आपका दर्शन (सरल शब्दों में, अच्छे समाज व व्यक्ति के बारे में ख्याल) ऐसा भी हो सकता है कि आप माने कि एक वर्ग के बच्चों के लिए तो कला की शिक्षा जरूरी है और दूसरे के लिए यह बेकार की चीज या एक तरह के बच्चों को साहसी होना चाहिए और दूसरी तरह के बच्चों को आज्ञाकारी। अपने मन और व्यवहार की पड़ताल करके हम जान सकते हैं कि जिन्हें हम शिक्षा के उद्‌देश्य कहते हैं क्या वो सबके लिए समान है या अलग–अलग पृष्ठभूमियों के बच्चों के लिए अलग–अलग हैं।

क्रियाकलाप

- आपके विद्यालय में विभिन्न वर्ग, समुदाय, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चे आते है। उनके अभिभावक से जानने का प्रयास करें कि उनकी नजरों में विद्यालय में किस प्रकार की शिक्षा होनी चाहिए। विद्यालय में शिक्षा की प्रक्रिया एक हैं फिर विद्यालय से जुड़े भिन्न समुदायों की शिक्षा को लेकर आकांक्षा, अपेक्षा एवं व्याख्या अलग क्यों हैं? अपने अध्ययन केन्द्रों पर चर्चा करें एवं उभरे बिन्दुओं का अभिलेखीकरण करें।

1.7 ज्ञान की अवधारणात्मक समझ (Conceptual understanding of knowledge)

हम ज्ञान किसे कहें, यह एक बड़ा सवाल है, क्योंकि इसका कोई एक मानक परिभाषा नहीं बनायी जा सकती है। हर व्यक्ति के लिए ज्ञान के अलग–अलग मतलब होते हैं। तो विद्यालय में बच्चों एवं शिक्षक या

शिक्षिका के लिए ज्ञान क्या हैं और वैसा क्यों है? हमारे लिए इसे जानना जरूरी है। लेकिन, इसके लिए हमें सबसे पहले स्वयं ज्ञान की अवधारणा से परिचित होना होगा। आइए इससे संबंधित विभिन्न आयामों का विश्लेषण करते है।

1.7.1 ज्ञान की अवधारणा से संबंधित दार्शनिक परिप्रेक्ष्यों की समझ

(Understanding of philosophical perspectives in relation to concepts of knowledge)

दर्शनशास्त्र को ज्ञान के अध्ययन का शास्त्र कह दिया जाए तो संभवतः कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ज्ञान के अध्ययन के चार प्रमुख आयाम हैं :

- ज्ञान है क्या?
- ज्ञान के साधन क्या हैं?
- 'जानने वाले' अर्थात 'ज्ञाता' और ज्ञान के बीच क्या संबंध हैं?
- ज्ञान की सत्यता अथवा असत्यता कैसी परखी जाए?

ज्ञान के इन आयामों का अध्ययन 'ज्ञानमीमांसा' कहलाती है। यह दर्शनशास्त्र की एक प्रमुख शाखा है। इस संदर्भ में यह भी माना गया है कि शिक्षा और ज्ञान का संबंध 'अटूट संबंध' है। इस संबंध के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि –

''शिक्षा के लिए ज्ञान की समस्या, जिसकी ज्ञान–मीमांसा विवेचना करती है, उसी प्रकार महत्व की है, जैसी वास्तविकता की। सामान्य शब्दों में कहा जाए तो यह ज्ञान–मीमांसा ही है जो शिक्षक को यह आश्वासन देती है कि वह जो कुछ अपने विद्यार्थियों को दे रहा है, वह सत्य है। क्या कुछ ऐसे सिद्धांत है जिन पर उस समय विश्वास किया जा सकता है जब वह मानवीय सम्पतियों में से सबसे अधिक मूल्यावान वस्तु अर्थात ज्ञान के विकास के कार्य में संलग्न हो? या क्या उसे 'अन्तर्ज्ञान अपने संवेदनों, किसी अमोघ ग्रंथ में श्रद्धा, अपने बड़ों की राय या किसी अन्य ऐसे ज्ञान के आधार पर जो सुविधा से मिल जाए विश्वास करना चाहिए।

प्रायः हम इस बात से परिचित हो चुके हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया, बुनियादी तौर पर ज्ञान के आदान–प्रदान पर आश्रित एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है। यहां यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि दैनिक जीवन में 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। परन्तु सामान्य तौर पर इसे 'जानने' की प्रक्रिया में अभिव्यक्त किया जाता है। यह 'जानना', सूचना अथवा परिचय आदि अन्य अर्थों का सूचक हो सकता है –

''मेरे विद्यालय की शिक्षिका रीना को प्रोजेक्टर चलाना आता है।'' इस वाक्य में ज्ञान का प्रयोग **योग्यता** के अर्थ में किया गया है।

''मैं अपनी कक्षा के सभी बच्चों को जानती हूँ।'' इस वाक्य में जानने का अर्थ **परिचय** के संदर्भ में किया गया है।

''हम सब जानते हैं कि हमारे विद्यालय में कल खेलकूद प्रतियोगिता है।'' इस वाक्य में जानने का प्रयोग सूचना के अर्थ में किया गया है।

ज्ञान के इन रूपों को 'सामान्य ज्ञान' के रूप में स्वीकार किया गया है। तथापि इनमें से 'सूचनात्मक ज्ञान को मानवीय ज्ञान के मूल के रूप में देखते हुए माना गया है कि ज्ञान मीमांस अध्ययन की दृष्टि से यही ज्ञान महत्वपूर्ण हैं यद्यपि कुछ दार्शनिक इस प्रकार के सूचनात्मक ज्ञान की सत्ता को स्वीकार नहीं करते, और न ही

इसे 'व्यवहार व सिद्धांत' के लिए आवश्यक मानते हैं। तथापि विचारकों की स्पष्ट मान्यता है कि ज्ञान का सूचनात्मक अर्थ ही मानवीय ज्ञान का मूल है और सिद्धांतों की रचना और व्यावहारिक खोज–दोनों के लिए आवश्यक है।

तथापि सामाजिक समूहों के बीच आपस में अंतःक्रिया, अनुभवों, विचारों–विमर्शों द्वारा देखने, समझने, सोचने, विचारने, आदि से प्राप्त यह 'ज्ञान' प्रमाणित–अप्रमाणित विश्वासों पर टिका रहता है। वस्तुतः भ्रम, संशय आदि की स्थितियों का भी इसके स्वरूप व विकास में बहुत योगदान होता है। जैसे हम बहुत कुछ अतीत से सहज रूप में प्राप्त, परम्परा रीति–रिवाजों का हिस्सा होता है तथा मुहावरों, लोकोक्तियों के रूप में उपलब्ध रहता है। इसकी सत्यता का आधार केवल विश्वास रहता है। अतः माना जाता है कि परम्परा आदि से प्राप्त अथवा स्वयं कि अपरीक्षित अनुभवों, विश्वासों आदि से संबंध ज्ञान को तब तक ज्ञान नहीं माना जा सकता जब तक इसे निश्चित, यथार्थ तथा असंदिग्ध सिद्ध न कर दिया जाए। भारतीय परम्परा में इस प्रकार के ज्ञान को 'प्रमा' कहा जाता है जिसका अभिप्राय है – प्रमाणित ज्ञान। ज्ञान मीमांसीय दृष्टि से ज्ञान से अभिप्राय है – भ्रमरहित, निश्चित, प्रमाणित ज्ञान अर्थात् प्रमा।

भारतीय परम्परा के अनुसार 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है :

1. जानने के 'साधन' के रूप में : जिससे जाना जाता है (ज्ञायते अनेन इति ज्ञानं : जाना जाता है इससे, इस प्रकार यह ज्ञान हैं)
2. जानने की क्रिया के 'फल' के रूप में : जो जाना जा चुका है, वह ज्ञान है (ज्ञातम् इति ज्ञानम् : जाना जा चुका है जो वह ज्ञान है)

पाश्चात्य दाशर्निक परंपरा में भी ज्ञान संबंधी समस्या दर्शनशास्त्र की एक प्रमुख समस्या ही नहीं अपितु एक बुनियादी समस्या है। ज्ञानमीमांसा को दर्शनशास्त्र की प्रमुख शाखा माना गया है तथा इस संदर्भ में ज्ञान संबंधी अनेक प्रश्न, विभिन्न समस्या एवं ज्ञान संबंधी अनेक प्रश्न, विभिन्न समस्याएं व शंकाएं उठायी जाती रही हैं तथा इसके परिणामस्वरूप चिंतन की नई धाराओं का प्रस्फुटन होता रहा है। दो प्रमुख धाराओं – बुद्धिवादी व अनुभववादी की चर्चा करते हुए दयाकृष्ण कहते हैं –

''पश्चिम में बुद्धिवादी परम्परा ग्रीक दार्शनिक प्लेटो और उससे पहले पाईथागोरस से शुरू होकर जर्मन दार्शनिक हीगल में अपनी चरम सीमा पर पहुंचती है। इसके विपरीत इन्द्रिय–संवेद्य ज्ञान बुद्धि से स्वतंत्र है और केवल बुद्धि द्वारा अग्राह्य है। इसकी परम्परा साधारणतः इंग्लैण्ड के दार्शनिक बेकन तथा लॉक से मानी जाती है। इसका चरम रूप लॉक के उस वाक्य में समझा जाता है जो सारे ज्ञान का उद्‌भव इंद्रियानुभव में मानता है। इसकी चरम अवस्था इस मत में पहुंचती है कि शुद्ध बुद्धि द्वारा ग्राह्य ज्ञान जैसी कोई चीज़ नहीं है।''

(ज्ञान–मीमांसा : दयाकृष्ण, 1973)

मूल समस्या 'ज्ञान के सत्यापन अथवा प्रमाणीकरण की है कि आखिर कैसे निश्चित हुआ जाए कि 'प्राप्त किया गया ज्ञान' निश्चित, भ्रमरहित व यथार्थ है। साथ ही प्रमाणित करने वाले साधनों की प्रामाणिकता का प्रश्न भी महत्वपूर्ण प्रश्न है। पाश्चात्य परम्परा में अनुभववादी विचारधारा में इन्द्रियों के अनुभवों अर्थात प्रत्यक्ष पर आधारित ज्ञान को 'वैज्ञानिक ज्ञान के रूप में माना गया है। इस ज्ञान को सूचनात्मक ज्ञान के रूप में जाना गया है। पाश्चात्य चिंतनधारा में इस शाखा के प्रमुख प्रतिपादक 'जॉन लॉक' के अनुसार कोई भी 'काल्पनिक अथवा व्यावहारिक' सिद्धांत पहले से विद्यमान नहीं होता, अपितु उन्हे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। विभिन्न वस्तुओं के 'प्रत्यय' अथवा 'संकल्पनाएं' जन्मजात न होकर इन्द्रियों द्वारा अर्जित होती हैं। लॉक का मानना है कि मनुष्य का मन एक कोरी स्लेट होती है। इसमें पहले से कोई विचार विद्यमान नहीं होता, बल्कि अनुभव ही सम्पूर्ण ज्ञान

का आधार है। जॉन लॉक की ज्ञान–प्राप्ति की प्रक्रिया के दो मार्ग हैं – 1. संवेदना के द्वारा तथा 2. चिन्तन के द्वारा ।

संवेदना प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया है जिसमें हमारी इन्द्रियां बाहरी वस्तुओं के सम्पर्क में आती है। भारतीय दर्शन में इसे 'इन्द्रियार्थ–सन्निकर्षः प्रत्यक्षम्' कहा गया है।

भौतिक पदार्थ शारीरिक इन्द्रियों को उद्दीप्त करते हैं। इससे उत्पन्न उत्तेजना मस्तिष्क में पहुंचकर संवेदना उत्पन्न करती है। यही संवेदनात्मक ज्ञान है। स्पष्ट है कि इसके अनुसार वस्तुओं की सत्ता मन से स्वतंत्र है। संवेदना से बाहरी वस्तुओं का ज्ञान होता है।

चिंतन द्वारा भीतरी परिस्थितियों का ज्ञान होता है। इसे एक प्रकार से 'अंतर्दर्शन' की प्रक्रिया माना गया है। इससे सुख, दुःख, संशय, निश्चय, विश्वास, विचारणा आदि मानसिक परिस्थतियों का ज्ञान होता है। लॉक के अनुसार 'संवेदना व चिन्तन' द्वारा प्राप्त ये प्रत्यय 'सरल व बिखरे' हुए होते हैं, सम्बद्ध होते है, जिन्हें पुनः संगठित करने की अर्थात सम्बद्ध करने की आवश्यकता होती है। परंतु इन सरल प्रत्ययों को मन पुनः संगठित अथवा सम्बद्ध करता है। पुर्नसंगठन का कार्य मन तुलना, पुनरावृत्ति आदि के आधार पर करता है। मन की यह सक्रिय अवस्था है। इसके द्वारा संगठित प्रत्यय 'जटिल प्रत्यय' कहलाते हैं। इस प्रकार इंद्रियों के अनुभव के बिना ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती, अतः लॉक के अनुसार ज्ञान 'असीमित' न होकर 'सीमित' है।

शैक्षिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है, लॉक के अनुसार, कि बच्चों में चिन्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पहले उनकी इन्द्रियों को 'सूचना प्राप्त करने के रूप में' अधिक से अधिक अनुभव लेने का अभ्यास कराया जाना चाहिए। शिक्षण की प्रक्रिया में बच्चों के अनुभवों को महत्व देना आवश्यक है। स्पष्ट ही है कि बच्चों की अवस्था आदि को भी ध्यान में रखना अनिवार्य होगा। वस्तुतः यह प्रक्रिया 'स्थूल से सूक्ष्म' के प्रति जाने की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, जब तक बच्चों के यथार्थ, वास्तविक, अवलोकनीय, मूर्त स्वरूप से परिचित न होंगे तब तक वे अमूर्त विचारों की कल्पना न कर पाएंगे।

अनुभवों पर आश्रित होने के कारण यह संभव है कि, अपने–अपने अनुभवों में भिन्नता के कारण, प्रत्येक अनुभवकर्ता के 'ज्ञान के स्वरूप' भी पृथक हो। परिणामतः 'शिक्षा की प्रक्रिया' को भी एक 'वैयक्तिक रूप' से प्रस्तुत करने के प्रति संकेत है। पाश्चात्य चिंतन परम्परा में, अपनी–अपनी दार्शनिक विभिन्नताओं को मानते हुए भी, जार्ज बर्कले, डेविड ह्यूम जैसे प्रमुख चिन्तक भी 'ज्ञान' को अनुभवों का ही प्रतिरूप मानते हैं।

ज्ञान की दूसरी परम्परा बुद्धिवादी परम्परा है। इस परम्परा के अनुसार 'बुद्धि' यानि प्रमुखतः चिंतन ही ज्ञान का आधार है। ज्ञान के दो रूप – 'सत् एवं असत्' मानते हुए बुद्धि को ही इसके निर्णय का आधार के रूप में देखा गया है। इस दृष्टि से ज्ञान 'सत्य का पर्याय है तथा सत्य के अन्वेषण के लिए मन को विभिन्न पूर्व मान्यताओं से मुक्त रखा जाय तथा बिना प्रमाण के किसी भी तथ्य को स्वीकार न किया जाए। इस परम्परा में 'मन' अत्यंत सक्रिय है तथा प्रत्यय जन्मजात है। बुद्धि की सीमा ही ज्ञान की सीमा है। इस दृष्टि से 'ज्ञान' को सार्वभौम रूप में भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कहा जा सकता है कि 'सामान्यीकरण' ज्ञान की एक विशिष्टता है। इस धारा की मान्यता है कि समस्त ज्ञान मन से पहले ही विद्यमान रहता है। अनुभवों आदि के द्वारा इसकी अभिव्यक्ति आदि ही होती है। 'अंर्तसूझ' को इसमें विशेष स्थान दिया गया है। पाश्चात्य दर्शन धारा में रेने देकार्त, बेनेडिक्ट स्पिनोज़ा तथा डब्ल्यू लाइबनित्ज़ का इस सिद्धांत को रूप देने में विशिष्ट स्थान है।

ज्ञान प्राप्त करने के विभिन्न साधनों में संवाद का अपना विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्य अथवा शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में 'संवाद' एक 'सक्रिय कक्षा' की आधारभूत ऐसी मौखिक गतिविधि है जिसमें किसी चिंतनशील विषय पर आपसी 'विचार–विमर्श' तब तक निरंतर बना रहता है जब तक

संवाद में भाग लेने वाले सभी प्रतिभागी सामूहिक रूप से कुछ सामान्य निष्कर्षों तक नहीं पहुंच जाते। 'संवाद' का संबंध मूल रूप से दर्शनशास्त्र की 'ज्ञानमीमांसा' शाखा की 'बुद्धिवादी' अथवा 'संज्ञानवादी' परम्परा से है। इसके अंतर्गत यह मानकर चला जाता है कि मनुष्य केवल एक कोरी स्लेट न होकर एक पूर्वनियोजित बुद्धिवाला, चिंतनशील, व चेतन प्राणी है जो अपने अनुभवों आदि के आधार पर 'भाषा' का प्रयोग करते हुए अपना पक्ष रख सकता हैं। बुनियादी तौर पर मौखिक प्रक्रिया होने के कारण संवाद में 'भाषा' के रचनात्मक प्रयोग का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। यहां यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि 'संवाद' दर्शनशास्त्र की एक प्रमुख एवं आधारभूत विद्या है जिसके द्वारा किसी दार्शनिक समस्या पर विचार विमर्श किया जाता है। जिज्ञासा जगाए रखना अथवा जगाते रहना इसका मूल आधार है ।

क्रियाकलाप :

- ज्ञान के संदर्भ में विभिन्न संस्कृतियों में क्या मान्यताएं हैं, इसका पता लगाएं और अपने अध्ययन केन्द्र पर चर्चा करें।
- क्या ज्ञान की कोई एक अवधारणा हो सकती हैं? इस पर अपनी कक्षा एक परिचर्चा का आयोजन करें।

1.7.2 ज्ञान के विविधस्वरूप एवं अर्जन के तरीकें (Diverse forms of knowledge and ways of acquisition)

वर्तमान संदर्भ में शिक्षकों के पास एक सबसे बड़ी चुनौती है कि ज्ञान के विभिन्न रूपों को कैसे समझा जाय। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 ने इस संदर्भ में पांच कठिनाईयों की पहचान की है जो किसी विषय में ज्ञान को निर्धारित करने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

1. ज्ञान के वैसे स्वरूप की उपेक्षा जो किसी विषय या पाठ्यपुस्तक के दायरे में नहीं आते।
2. विषयों को अलग–अलग बाँटने से ज्ञान धुंधला और सीमित हो जाता है।
3. पहले से मौजूद ज्ञान पर अत्यधिक बल देने से ज्ञान के सृजन की संभावना क्षीण हो जाती है।
4. नई चिंताओं और नई समस्याओं को शामिल करने में समस्या।
5. विद्यालय की पाठ्यचर्या में किस ज्ञान को किस आधार पर शामिल किया जाय इसकी दुविधा।

इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि एक शिक्षक को शिक्षण रणनीति तैयार करते समय यह निर्णय लेना होगा कि ज्ञान के विभिन्न रूपों का प्रयोग कितना और किस रूप में करें। क्योंकि ज्ञान का आधार यदि सूचना, अवधारणा और संदर्भित अनुभव है तो उसे सही रूप में प्रयोग करना उसकी कुशलता है और बच्चों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को प्रस्फुटित करने की एक संतुलित प्रक्रिया हो सकती है। सीखनें–सिखाने की प्रक्रिया में बतौर शिक्षक यह जानना आवश्यक है कि ज्ञान क्या हैं? एक बच्चा अपने आसपास की वस्तुओं, व्यक्ति एवं पर्यावरण से अंतःक्रिया करते हुए उसके बारे में, उस व्यक्ति या वस्तु विशेष के प्रति अपनी धारणा बनाता है। इस तरह से ज्ञान एक प्रक्रिया तथा उसका परिणाम दोनों है। जो विचार, अनुभव तथा कौशल सीखा जाना है वह ज्ञान तब कहलाता है जब वह सीखने वाले के संदर्भ में देखा जाता है।

सीखने वाले की इच्छा या आशय किसी वस्तु या स्थिति को ज्ञान बनाता है। बच्चा जैसे ही अपने इन्द्रियों द्वारा वस्तु के रूप, रंग या स्वाद को पकड़ने की इच्छा से आकर्षित होता है, उसे उस वस्तु का अनुभव होता है। इस तरह बच्चा जब अपने संज्ञानात्मक विशेषताओं के साथ वस्तुओं से अंतःक्रिया करता है उस वस्तु के बारे में अपनी धारणा बनाता है जो ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। ज्ञान अन्तःक्रिया करने वाले के संज्ञानात्मक एवं इन्द्रियजन्य विशेषताओं पर निर्भर करता है जिससे ज्ञान का रूप तय होता है।

क्रियाकलाप :

- आप किसी विषय का चुनाव कर लें जिसे आपने बड़ी रूचि से पढ़ाया था। उनमें कौन–कौन से ऐसे सैद्धांतिक पक्ष थे जो आपके जीवन से आज भी जुड़े है। किन्ही पांच बिन्दुओं को लिखें।
- उन पांच विषय–वस्तुओं को इकट्ठा करें जो आज के दौर में बिल्कुल अप्रासंगिक लगते हों। उभरे हुए बिन्दु को कक्षा में लेकर आएँ जिससे उन बिन्दुओं पर समूह के विचार जाने जा सकें।

आपने महसूस किया होगा कि विभिन्न पक्षों का हमने जिस रूप में अध्ययन किया है वे उसी रूप में शायद हमारी जीवन की प्रक्रियाओं से मेल नहीं खाते। हम इतिहास में विभिन्न संग्रामों की चर्चा करते है क्या आपने कभी सोचा है कि हम विषय को क्यों पढ़ाते हैं? नहीं न, तो आइयें ज्ञान एवं उसके कुछ रूप और उनके अंर्तसबंधों की पड़ताल करते हैं।

सूचना (Information) : सूचना ज्ञान संवर्धन का प्राचीनतम रूप है। इसका मुख्य आधार पाठ्य पुस्तक, आपसी चर्चा शिक्षकों की बातें या आधुनिक युग में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विभिन्न तरह की सूचना से बच्चों के मानसिक स्तर में वृद्धि करना हैं। सीखने सिखाने की प्रक्रिया में सूचना अत्यावश्यक है जिससे जानकारी की सीमायें बढ़ सके, परन्तु महज किताबों में लिखें या प्रत्यारोपित ज्ञान उन्हें एक निष्क्रिय शिक्षार्थी बना देता है, जो उनके ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को महज सवालों के जवाब देने तक सीमित कर देता है। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सूचना ज्ञान का एक स्वरूप है यदि इसका आधार बच्चों के मानसिकता को ध्यान में रख कर किया जाय।

अवधारणा (Concept) : अवधारणा व्यक्ति के चेतन और अवचेतन मन के द्वंद का परिणाम है। शिक्षा की प्रक्रिया में जब कोई बच्चा विद्यालय में प्रवेश करता है तो उसके बात व्यवहार, आचरण एवं वेशभूषा के आधार पर कहीं ना कहीं हमारे मन में एक विचार जन्म लेता है। उस विचार का प्रभाव जाने अनजाने हमारी शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावित करता है। आमतौर पर ऐसे विचारों को नकारा नहीं जा सकता परन्तु एक लोकतांत्रिक शिक्षक इन अवधारणाओं को आधार बना कर अपनी शिक्षा की रणनीति तैयार करते हैं, जो जमीनी सच्चाई से जुड़ा हो। यह प्रक्रिया बच्चों के साथ भी होती है, वे किसी खास विषय या सूचना के प्रति अपने विचार कायम कर लेते हैं जिससें ये विषय उनके लिए बोझ हो जाता है। जिससे दिए गए विषय ज्ञान के प्रति उनकी अवधारणा स्पष्ट नहीं हो पाती। यह एक निर्विवाद सत्य है कि बच्चा केवल एक संज्ञानात्मक इकाई नहीं है। वह एक जिज्ञासु प्राणी है। विचार बच्चों के संज्ञान में निहित होते हैं, अतः जब वह किसी भौतिक वस्तुओं या अपने परिवेश से प्रतिक्रिया करता है तो एक अस्थाई धारणा बना लेता है तो उस वस्तु या व्यक्ति विशेष के प्रति उसके अवधारणा को आधार देता है एवं ज्ञान सृजन में सहायता करता है।

अनुभव (Experience) : आज के लगभग तमाम शिक्षाशास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि बच्चें जब विद्यालय आते है तो उनके साथ उनके अनुभव का एक भंडार रहता है जो वे स्वयं से, घर परिवार से, आस–पड़ोस से एवं हम उम्र बच्चों से प्राप्त करते हैं। इस अनुभव के आधार पर वे कई अनसुलझे शिक्षार्थी गतिविधियों की पड़ताल करते है। एवं ज्ञान का सृजन करते हैं। एक शिक्षक की रणनीति में उनके अनुभवों का समावेशन उन्हें ज्ञान सृजन के नए–नए अवसर प्रदान कर सकता है। बाढ़ग्रस्त इलाके के बच्चों को यदि वर्षा ऋतु के सौन्दर्य किताब में दिए गए उदाहरणों से ही बताया जाय तो शायद उनका मन पढ़ते या लिखते समय एक मौन विरोधा करेगा और समग्र शिक्षा की प्रक्रिया उसके लिए झूठ ही प्रतीत होगी। अतः एक कुशल शिक्षक के रूप में हमें उनके अनुभवों से अपने पाठ को जोड़ना होगा जिससे एक स्वस्थ्य शैक्षणिक माहौल बन सके और बच्चें ज्ञान का निर्माण कर सकें। जब हम अनुभव की बात करतें है तो अनुभव केवल शिक्षकों तक हीं सीमित नहीं रहता, वरण बच्चों के अनुभव अपेक्षाकृत ज्यादा मायनें रखतें है। बच्चें विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा भौतिक वस्तु एवं स्थिति से

संवेदना प्राप्त करते हैं यह संवेदनाएँ अपने इन्द्रिय द्वारा उन्हें उस वस्तु विशेष द्वारा उसके रूप, रंग या स्वाद को पकड़ने की इच्छा से प्रभावित होते है जिससे उन्हें उस वस्तु विशेष का अनुभव होता है। इस तरह अनुभव ज्ञान का आधार है विभिन्न इन्द्रियों को भिन्न–भिन्न तरीकों से संयोजित करके एक ही वस्तु स्थिति के अनेक अनुभवों को भाषा तथा सांकेतिक तथ्यों द्वारा संज्ञानात्मक रूप दिया जाता है जो अनुभवों की ही सामान्यीकरण है। अनुभव रूपी ज्ञान ही बुनियादी ज्ञान है। जो विभिन्नि इन्द्रिय जनित संवेगों का समेकित रूप है। जो आज की शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है।

कौशल (Skill) : किताबी ज्ञान चाहे किसी भी क्रिया प्रक्रिया के माध्यम से दी गई हो वह बच्चों को ज्ञानी तो बना सकती है, लेकिन जब तक उनमें कार्य करने की कुशलता विकसित नहीं होगी तब तक ज्ञान का आधार उस तोते की तरह हो जायेगी जिसे यह तो ज्ञान था कि 'शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा, दाना डालेगा, लोभ से उसमें फंसना नहीं'' फिर भी जाल में फंस जाते है। अतः शिक्षकों को शिक्षायी रणनीति में सीखे गए बातों के प्रयोग करने की क्षमता अवश्य शामिल करनी चाहिए, जिससे बच्चे आने वाली चुनौतियों का सामना कर सकें।

शिक्षण प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वालें ज्ञान के विभिन्न स्वरूप
(Different forms of knowledge used in teaching process)

ज्ञान के चारों रूप देखने में तो अलग–अलग लगते हैं। एक लम्बे समय में अलग–अलग तरीकों से देखे भी जाते है परन्तु आज के शिक्षा के संदर्भ में यह वांछित है कि शिक्षक अपने शिक्षा की रणनीति को किसी विषय के संदर्भ में इस तरह विकसित करें कि बच्चों के सृजनात्मक एवं रचनात्मक क्रियाओं को विकसित होने का अनुकूल माहौल मिले और निर्मित ज्ञान की मूलता को व्यावहारिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में देख सके।

(दृष्टांत : 1.7.2–अ)

गर्मी का मौसम था। बच्चें आमतौर पर उल्टी और दस्त से ग्रस्त हो जाया करते थे। विद्यालय में शिक्षक ने बताया कि यदि ऐसा हो तो तुरन्त नमक, चीनी और पानी का घोल पिलाना चाहिए। मुन्नी जब घर पहुँची तो उसने देखा कि उसका भाई बिस्तर पर पड़ा है। जैसे ही उसे कारण की जानकारी हुई, जल्दी से उसने नमक, चीनी और पानी का घोल तैयार कर अपने भाई मुन्ने को दिया।

चिंतन के बिन्दु (Points of reflection)

- मुन्नी के क्रियाकलापों का ज्ञान के विभिन्न रूपों के संदर्भ में विवेचना करें।
- अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप में एकत्र करें और अपने सहयोगियों की राय जाने।

ज्ञान अर्जन के विभिन्न तरीके (Various ways to acquire knowledge)

इससे पहले की चर्चा में आपने शिक्षा एवं ज्ञान के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण पर विचार किया है। साथ ही साथ प्रक्रिया एवं परिणाम के रूप में ज्ञान के अर्थ का विद्यालय के संदर्भ में भी विचारित किया है। इसके अतिरिक्त ज्ञान के विभिन्न रूपों तथा इनके अन्तर्संबंधो के माध्यम से विद्यालय से सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को दृश्यावलोकित भी किया होगा। इस भाग में बच्चों द्वारा ज्ञान प्राप्ति एवं सीखने के विभिन्न क्रियाओं प्रक्रियाओं पर चर्चा की जाएगी। जिसके आलोक में शिक्षकों में परिप्रेक्ष्य एवं रणनीति के विकास के लिए प्रयास किया जाएगा।

ज्ञान के स्वरूप को आवश्यकतानुसार प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि एक शिक्षक में ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न तरीकों की एक समीक्षायी समझ विकसित हो विद्यालय में ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया के विभिन्न रूप देखा जाता है जो बच्चों की सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से प्रचलित होती है। भिन्न भिन्न क्रियाओं जैसे अवलोकन, तर्क करना, समीक्षा करना, बातचीत या संवाद, चिन्तन, प्रयोग करना एवं परिवेश में भाग लेना, अभिव्यक्ति को

गढ़ना, अनुभव करना इत्यादि ज्ञान प्राप्ति एवं सीखने–सिखाने की रणनीतियाँ हैं। बच्चा सक्रिय रूप से केवल पूर्व प्रचलित अनुभव या विचारों के आधार पर ही अपने ज्ञान का निर्माण नहीं करता, बल्कि नई परिस्थितियों, भौतिक, वैचारिक, भाषिक एवं सांकेतिक रूप से संवेगात्मक तथा बौद्धिक क्रिया करते हुए नये विचार, अनुभव तथा कौशल को भी निर्मित करता है। इस विचार, अनुभव एवं कौशल का निर्माण एवं पुर्ननिर्माण बच्चों के विकास का अंतरंग पहलू है। परन्तु विद्यालय से पूर्व तथा विद्यालयी जीवन प्रारम्भ करने के बाद बच्चों के ज्ञान प्राप्ति एवं सीखने की प्रक्रिया में अंतर होता है। विद्यालय से पूर्व बच्चों के सीखने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत अनौपचारिक होती है तथा सीखने का संदर्भ भी अनौपचारिक होता है, सीखने की विषय वस्तु भी अपेक्षाकृत मूर्त एवं सामान्य होती है। जबकि विद्यालय में सीखने की प्रक्रिया औपचारिक परिवेश में तथा औपचारिक रूप से संचालित होती है। यहाँ सीखने की विषय वस्तु भी अपेक्षाकृत अमूर्त, विशेष एवं जटिल होती है। विद्यालय पूर्व तथा विद्यालय में सीखने के बीच अंतर का एक मुख्य लक्ष्य सीखने की प्रकृति भी है। विद्यालय पूर्व परिवेश, माता–पिता, बड़े बुजर्ग मित्र–मण्डली या समुदाय एवं समय की मध्यस्ता बच्चों के सीखने के अनौपचारिक तरीकों से नैसर्गिक रूप से अनुकूलित होती है। समय की अधिक मात्रा में उपलब्धता के कारण बच्चें सीखने के क्रम में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र एवं सक्रिय होते है। जिसके फलस्वरूप सीखने की प्रक्रिया नैसर्गिंक रूप से चलती रहती है। परन्तु विद्यालय में शिक्षक, विषय वस्तु तथा स्थान एवं समय की मध्यस्थता अपेक्षाकृत लघु तथा बच्चों के औपचारिक परिवेश से भिन्न होती है। विद्यालय में शिक्षकों की मध्यस्थता बच्चों तथा व्यस्कों के बीच एक नैसर्गिंक संबंध न होकर सीखने के विषय वस्तु तथा विद्यालय के संगठनिक–सांस्कृतिक तथा स्थानिक–कालिक संसाधनों से प्रभावित होती है। कई रूप में विद्यालय का परिवेश बच्चों के सीखने के स्वाभाविक प्रक्रिया को नकारात्मक रूप से प्रभावित भी करता है।

ज्ञान अर्जन के साधन
(Means of acuisition of knowledge)

परम्परा एवं रूढ़ियाँ (Tradition and Conventions)– वह ज्ञान जो हम बिना तर्क के सिर्फ इसलिए स्वीकार करते हैं कि वह लोक परम्परा से चली आ रही है। यह माना हुआ ज्ञान है।

प्राधिकार ज्ञान या आप्त ज्ञान – वह ज्ञान जो किसी आप्त पुरूष / व्यक्ति / संस्था / ग्रन्थ द्वारा सिद्ध एवं प्रदत्त है जिस पर हम सामान्यतया प्रश्न खड़ा नहीं करते क्योंकि वह भी हमारी आस्था व विश्वास से जुड़ा हुआ है।

अंतर्दृष्टि या अंतरसुझ (Insight) – यह ज्ञान पूरी तरह से आतंरिक अनुभवों पर आधारित होता है।

इन्द्रियानुभव (Sense of experience) – इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान।

बुद्धि या तर्क पूर्ण ज्ञान (Intellect in rational knowledge) – वह ज्ञान जो तर्क द्वारा सिद्ध होता हो परन्तु यह जरूरी नहीं है कि वह इन्द्रियों द्वारा भी अनुभूत हो।

वैज्ञानिक ज्ञान (Scientific knowledge) – वह ज्ञान जो इन्द्रियानुभव तथा तर्क दोनों द्वारा सिद्ध होता हो यही ज्ञान सही ज्ञान है।

क्रियाकलाप :

निम्न साधनों की पहचान करें कि क्या ज्ञान के सृजन में सहायक हैं?

कार्य ज्ञान के साधन है या नहीं ?

1. आपके बच्चें जब शिक्षायी भ्रमण पर जाते है।

2. संकुल स्तर पर भाषण प्रतियोगिता का आयोजन।
3. अन्तर विद्यालय वाद–विवाद प्रतियोगिता।
4. राज्य स्तरीय विज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन।
5. विद्यालय के पोषक क्षेत्र का सर्वेक्षण।
6. गणित मेला का आयोजन।
7. विद्यालय में होने वाली खेल कूद प्रतियोगिता।
8. विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन।
9. कला के माध्यम से वस्तुओं का निर्माण।
10. क्वीज़, परियोजना कार्य में समावेषण।

- अपने उत्तरों को चार्ट पेपर पर लिख कर बड़े समूह में चर्चा करें एवं उभरे हुए बिन्दुओं का समेंकन कर केन्द्र में उपस्थित संगणक को हस्तगत करा दें, जिससे उसका अभिलेखीकरण किया जा सके।
- ऊपर के चयनित साधनों को आधार मानते हुए बताऐं कि क्या आप अपने शिक्षण प्रक्रिया में इन बातों का ध्यान रखतें है?
- दिए गए विभिन्न कार्यों में से किन्हीं दो का सर्वेक्षण कर अपना प्रतिवेदन आई.सी.टी. की मदद से तैयार करें, आप सीडी बना सकते है।
- अपने विद्यालय में इन गतिविधियों के आयोजन हेतु एक कार्य योजना तैयार कर उसका आयोजन करें एवं समुदाय/बच्चों/अभिभावकों से प्राप्त विचारों को संकलित कर अपने सहयोगियों के विचार जानें।

1.8 समेकन तथा सीखने–सिखाने में सहयोगी ई–संसाधन

(Integration and collaborative resources for teaching learning)

इस इकाई के माध्यम से हमने शिक्षा और ज्ञान के विविध आयामों के बारे में जाना–समझा। हमने यह समझा की शिक्षा एक परिवर्तनीय अवधारणा है। अब, बदलते हुए शिक्षायी परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है कि शिक्षक एक ऐसे स्वतंत्र माहौल की निर्माण करें जहाँ ज्ञान का सृजन स्वयं कर सकें, अपने अनुभवों को एक नई दिशा दे सकें एवं जीवन की चुनौतियों से जूझने के लिए अपने आप को तैयार कर सकें।

साथ ही, यह आवश्यक है कि शिक्षक भी शिक्षा और ज्ञान की संकल्पनाओं को व्यापक रूप से समझे और उनके पीछे जो सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक या ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य है, उनका विश्लेषण करें।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें :

- इकाई की विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी./ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारंभिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से संबंधित हों।
- इकाई की विषयवस्तु से संबंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स आदि।

1.9 सारांश (Summary) :

- ज्ञान जीवन का आधार है जिसे प्राप्त करने की प्रक्रिया ही शिक्षा है।
- मानव का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास शिक्षा द्वारा ही सम्भव हो पाता है।
- शिक्षा के द्वारा ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का विकास होता है फलस्वरूप व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन का पुनर्निर्माण होता है।
- शिक्षा और समाज में गहरा संबंध है।
- शिक्षा प्रणाली समाज का ही एक अंग होती है।
- दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास एवं संस्कृति शिक्षा की प्रमुख आधार है।
- शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य एवं मूल्य होते हैं।
- शिक्षा केवल विद्यालय शिक्षण तथा प्रशिक्षण तक ही सीमित न होकर बच्चों में जीवन के सम्पूर्ण अनुभवों से सम्बन्धित होती है।
- शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया है।
- विद्यालयीन शिक्षा को औपचारिक शिक्षा के रूप में जानते हैं।
- काल्पनिक कक्षा (Virtual Classes) तथा ई–लर्निंग जैसे शब्द गैर औपचारिक शिक्षा के नए अभरते हुए आयाम हैं।
- भारतीय परम्परा के अनुसार ज्ञान शब्द का प्रयोग, अर्थों जानने के 'साधन' के रूप में एवं जानने की क्रिया के 'फल' के रूप में होता है।
- परम्परा एवं रूढ़ियाँ, प्राधिकार ज्ञान या प्राप्त ज्ञान, अंतर्दृष्टि, इन्द्रिय अनुभव, बुद्धि या तर्कपूर्ण ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान इत्यादि ज्ञानार्जन के साधन हैं।

1.10 अभ्यास कार्य :

1. अपने अनुभवों के आधार पर यह विश्लेषण करें कि क्या शिक्षा के उद्देश्य बदलते रहते हैं?
2. शिक्षा के क्षेत्र में आने वाले बदलाव सामाजिक परिवर्तन का प्रतिबिम्ब हैं, कैसे?
3. शिक्षा और दर्शन के आपसी संबंधों का विश्लेषण कीजिए?
4. शिक्षा के अतीत में जो विकास हुए हैं, वर्तमान शिक्षा में उनकी क्या छवि समाहित है, इसका विश्लेषण कीजिए?
5. शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या में शिक्षा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों को क्यों शामिल करना आवश्यक हैं?
6. उपेक्षित समुदाय से आनेवाले बच्चों के संदर्भ में शिक्षा और ज्ञान की क्या अवधारणा होनी चाहिए, विश्लेषण करें।
7. आप जब सीखने की योजना बनांएगे उसमें किस–किस प्रकार के ज्ञान को आपने संबोधित किया है, इसकी समीक्षा करें।
8. ऐसी कहानी या घटनाओं को खोजे जिसमें ज्ञान के विभिन्न रूपों का उपयोग किया गया हो और उसे अपने सहयोगियों से बाँटे।

●●●

इकाई – 2

बचपन और समाजीकरण

(Childhood and Socialization)

2.0 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन हमें यह जानने एवं समझने में मदद करती है कि किस प्रकार बच्चे, बचपन एवं समाजीकरण की मूल संकल्पना समय तथा स्थान के अनुसार निरंतर विकसित होती रही है। विद्यालयी एवं परिवेश जन्य अनुभव एवं अंतःक्रियाएँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि प्रत्येक परिवार, समुदाय एवं समाज बच्चे, बचपन एवं उनके समाजीकरण को भिन्न–भिन्न नजरियों से देखते हैं तथा विभिन्न तरीकों एवं साधनों से उनके विकास की व्यवस्था करते हैं। मानव मूलतः एक सामाजिक – सांस्कृतिक प्राणी है। सामाजिक व्यवस्था की वह एक नियामक एवं अपरिहार्य इकाई है। विभिन्न विकासीय अवस्थाओं से गुजरते हुए व्यक्ति के लिए बचपन और उससे जुड़े हुए विभिन्न सन्दर्भ एवं अनुभव जीवन को लगातार प्रभावित करते हैं। इन अर्थों में बचपन मात्र जैविक निर्मित ही नहीं होता, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक निर्मित भी होता है। इस दिशा में प्रस्तुत इकाई विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अवधारणाओं के संदर्भ में बचपन एवं समाजीकरण को व्याख्यायित करती है। जैसा कि हम जानते है कि समाज अपनी विभिन्न गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यक्तियों के समाजीकरण की व्यवस्था करता है। आधुनिक सामाजिक परिदृश्य में 'बचपन एवं समाजीकरण' के व्यवस्थापन एवं नियमन में माता–पिता, परिवार, पड़ोस, जेण्डर(लिंग), समुदाय, मीडिया तथा विद्यालय आदि की भूमिका महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इनमें एक और नया पहलू बाल अधिकारों का जुड़ गया है, जिसकी समझ शिक्षकों को अवश्य होनी चाहिए।

उपरोक्त बिन्दुओं पर विमर्श करने के लिए विभिन्न दृष्टांतों को उदाहरण के तौर पर लिया गया है ताकि प्रशिक्षु उनका स्वयं से विश्लेषण करके बच्चे, बचपन एवं समाजीकरण के विभिन्न पक्षों की संदर्भगत समझ बना सकें।

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- बच्चे तथा बचपन की अवधारणा के विभिन्न पहलुओं से अवगत हो सकेंगे।
- समाजीकरण की अवधारणात्मक समझ बना सकेंगे।
- बच्चों के समाजीकरण के प्रमुख कारकों की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बच्चे तथा बचपन के संदर्भ में बाल अधिकार की अवधारणा को समझ सकेंगे।

2.2 बच्चे तथा बचपन की समझ (Understanding of children and childhood)

बच्चों तथा उनके बचपन से हमारा हर रोज का सरोकार है, जिसके संदर्भ में यह बहुत मायने रखती है कि हमारी उनके प्रति क्या समझ है। समाज में बच्चों तथा उनके बचपन को देखने–समझने के कई नज़रिए हैं, जिनसे हम प्रभावित होते हुए किसी बच्चे से व्यवहार करते हैं। इसका सीधा प्रभाव बच्चों के विकास पर पड़ता है। अतः एक शिक्षक या शिक्षिका के लिए तो यह और महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह उन सामाजिक–सांस्कृतिक

नज़रियों तथा साथ में अपनी सोच का गहन विश्लेषण करे। इस खण्ड के पहले भाग में कुछ दृष्टांतों की मदद से इन मुद्दों को उभारने का प्रयास किया गया है। दूसरे भाग में बच्चे तथा बचपन की अवधारणा के ऐतिहासिक विकास से संबंधित विश्लेषण को प्रस्तुत किया गया है।

2.2.1 बच्चे तथा बचपन : सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा (Children and childhood: Social cultural concept)

हमारे समाज में रोज़ाना कई ऐसी घटनाएं या गतिविधियां होती हैं, जिनके आधार पर यह समझना मुश्किल नहीं है कि बच्चों तथा बचपन के बारे में हम क्या सोचते हैं। आगे दृष्टांतों के माध्यम से कुछ ऐसे उदाहरणों को दिया गया है, जिसके माध्यम से हम बच्चे तथा बचपन की सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा का विश्लेषण करेंगे।

(दृष्टांत : 2.2.1–अ) (Anecdote)

सरगुजा के आरा गाँव में मंगरु का परिवार रहता था। मंगरु एक किसान था जो अपने पैतृक जमीन पर साग सब्जी उपजाया करता था। मंगरु का बेटा बीरु गाँव के ही चौधरी के आम का बागान देखकर ललचाया करता था। एक दिन गर्मी की भरी दुपहरी में जब सारे लोग सो रहे थे बीरु चुपके–चुपके आम के बागान में पहुँच गया और ढेला मारकर आम तोड़ने लगा। इसी बीच चौधरी के आदमी आ गए और बीरु उन्हें देखकर भाग गया। यह खबर चौधरी के पास पहुँची। वह आग बबूला हो गया। उसने कुछ बुजुर्गों को इकट्ठा किया तथा बीरु की शिकायत प्रारंभ की। चौधरी ने कहा – ''यदि वक्त रहते बीरु की आदतों को नहीं सुधारा गया तो आगे चलकर वह बड़ी–बड़ी घटनाओं को अंजाम देगा। अतः समय रहते उसे समझाना बहुत ही जरूरी है, उसे दंडित करना चाहिए, जिससे फिर कभी वह ऐसे कार्य न कर सके। गाँव के ही रामधनी ने कहा अरे इतना बिगड़ने की कोई बात नहीं है, अभी उसकी उम्र ही क्या है। आठ–दस वर्ष का बच्चा है, प्यार से समझा बुझा के उसे सही रास्ते पर लाया जा सकता है; ये तो बच्चों का स्वभाव ही होता हैं चौधरी के बेटे ललन ने कहा – अरे छोटा क्या है? इस उम्र में तो विदेशों में लोग अपनी छोटी–छोटी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हैं। ये सब मंगरु के लाड़ प्यार का नतीजा है, दो थप्पड़ लगाया जाए तो अपने आप सुधर जाएगा। शिक्षक राम महतो ने कहा – समझा बूझा के भी तो हल निकाला जा सकता है मार पीट से बच्चे ढीठ हो जाते हैं। ऐसे भी शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 में बच्चों को दंड देने के विरूद्ध कड़ा कानून है। मंटू ने कहा– बिलकुल ठीक है यदि बच्चों को सही राह दिखाई जाए और सही मार्गदर्शन दिया जाए तो बच्चे बुरी आदतें क्यों सीखेंगे।

बहस का दौर चलता रहा। जहाँ एक पक्ष बीरु को बच्चा न मानते हुए अपराधी मानकर दंड की बात कर रहा था वहीं दूसरा पक्ष बीरु की गलतियों को उसके बचपन की स्वाभाविक प्रतिक्रिया मानते हुए सहीं ढंग से विकास का मौका देने के पक्ष में था। शाम हो गयी लोगों ने बीरु को एक मौका देने की सिफारिश की और उसके भूलों को बचपन की भूल मानकर माफ करने एवं समझाने–बुझाने की बात पर सहमती बनायी।

चर्चा के बिन्दु (Points of discussion) :

- उपरोक्त दृष्टांत में बचपन के संदर्भ में विभिन्न वर्गों की अवधारणाओं के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों की विवेचना करें।
- एक विशेष उम्र के बच्चों से समाज का विभिन्न वर्ग किस प्रकार के व्यवहार एवं आचरण की अपेक्षा करता है स्पष्ट करें।
- बीरु के व्यवहार की व्याख्या करें।

क्रियाकलाप **(Activity)** :

- अपने विद्यालय आने वाले किन्हीं पाँच बच्चों के संदर्भ में उनके परिवार व आस पड़ोस के पाँच–पाँच लोगों से संवाद स्थापित कर उस बच्चे के बचपन के बारे में उनके विचारों को रेखांकित करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

(दृष्टांत : 2.2.1–ब) **(Anecdote)**

असलम 20–22 वर्षों से सिलतरा, रायपुर की एक फैक्ट्री में काम करता था। विभिन्न प्रकार की पारिवारिक समस्याओं के कारण असलम का परिवार अपने पैतृक गाँव में रहने आ गया तथा अपनी जमीन पर खेती–बाड़ी प्रारंभ कर जीवन यापन करने लगा। असलम के दो बच्चे थे – बड़ी बेटी सलमा 10 वर्ष की थी और छोटा बेटा सलमान 9 वर्ष का था। दोनों बच्चे रायपुर में ही पले बढ़े थे। गाँव आने का यहाँ इनका पहला मौका था। असलम ने दोनों बच्चों का नामांकन पास के सरकारी विद्यालय में करवा दिया। कुछ दिनों तक बच्चों को शहरी परिवेश से आकर ग्रामीण परिवेश में सामंजस्य स्थापित करना कठिन लगता था। इतना ही नहीं नयी जगह व परिवेश होने के कारण गाँव के बच्चों का रहन–सहन, बोल–चाल, वेश–भूषा कुछ दिनों तक उन्हें परेशान करता रहा। शहर में उनका पहनावा उनकी इच्छा के अनुरूप था परन्तु, उन्हें गाँव में गाँव के रीति–रिवाजों के अनुसार ही रहना पड़ता था। विशेषकर सलमा की परेशानी ज्यादा थी। गाँव वाले अक्सर सलमान की कम परन्तु सलमा के रहने–सहने, खेलने–कूदने, पहनने–ओढ़ने को लेकर ज्यादा टिप्पणियाँ करते रहते थे। सलमा को यहाँ शहरों जैसी स्वतंत्रता नहीं थी यहाँ वह अपने भाई की तरह पैंट या जींस नहीं पहन सकती थी। वह अपनी खिड़की पर बैठ धनी किसानों के घरों को देखा करती थी। उसे बड़ा अजीब लगता था, जब वह उनके घर अपने उम्र के बच्चों को खिलौने से खेलते देखा करती थी तथा वहीं यह भी देखती कि उसी उम्र के दूसरे बच्चे उन की सेवा में लगे हुए थे जो छोटी–छोटी गलतियों के लिए दण्डित किये जाते थे। वह हमेशा सोचती कि आखिर एक उम्र के होने के बावजूद भी उनसे दोहरा व्यवहार क्यों किया जाता है? जहाँ वे अपने बच्चों को तो बच्चा समझते हैं, वहीं दूसरे के बच्चों से वयस्क के तरह जिम्मेदारी निभाने की अपेक्षा क्यों रखते हैं? रायपुर में सलमा फैक्ट्री के स्कूल में पढ़ती थी। अतः ऐसी बातें कम देखने को मिलती थी। सलमा हमेशा भ्रमित रहती थी कि आखिर मुझमें और दूसरे बच्चों में क्या अंतर है? वे भी तो मेरे ही उम्र के हैं। अगर मैं बड़ी हूँ, तो वे बच्चे कैसे हैं? आखिर में बच्चा कौन है और उसे बच्चे के रूप में माने जाने के आधार क्या हैं? रात बहुत हो चुकी थी, अतः सलमा ने सोचा कि दूसरे दिन वह माँ से पूछेगी।

चर्चा के बिन्दु **(Points of discussion)** :

- दिए गए दृष्टांत के आधार पर बतायें कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में बचपन की समझ को लेकर क्या फर्क है?
- आपकी समझ से सलमा और सलमान के बचपन को भिन्न रूपों में देखे जाने के प्रमुख आधार क्या हैं?
- धनी और निर्धन परिवार में बचपन किन आधारों पर अलग–अलग ढंग से देखा जाता है? सलमा के समझ को विस्तारित करें।
- किसी बच्चे के बचपन के संदर्भ में समुदाय की सोच को उस बच्चे के परिवार की आर्थिक–सामाजिक दशा किस प्रकार प्रभावित करती हैं?

क्रियाकलाप (Activity) :

- अपने विद्यालय के दो छात्रों व दो छात्राओं के बचपन के संदर्भ में उनके परिवार, आस–पड़ोस व विद्यालय के शिक्षकों द्वारा लैंगिक आधार पर किये जाने वाले फर्कों को रेखांकित करते हुए तत्संबंधी रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

2.2.2 विषयवस्तु की समझ (Understanding of content)

उपर्युक्त दृष्टांतों के माध्यम से आपने विभिन्न नजरों से विषय वस्तु पर अपने विचारों को परखा होगा एवं क्रियाकलापों के माध्यम से उसकी समझ को विस्तारित किया होगा। दृष्टांत 1 में बचपन के विविध रूपों का चित्रण विभिन्न परिस्थितियों के माध्यम से इस आशय के साथ किया गया है कि किसी बच्चे के रूप में समझे जाने या न समझे जाने में परिस्थितियाँ किस प्रकार प्रभावी भूमिका निभाती है। दृष्टांत 2 भी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बच्चों के बचपन के संदर्भ में, लैंगिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समझ को विस्तारित करता है। इन तमाम दृष्टांतों के माध्यम से सलमा के मन में उठे उस प्रश्न को और समझ को विस्तारित करता है। इन तमाम दृष्टांतों के माध्यम से सलमा के मन में उठे उस प्रश्न को और विस्तारित किया गया है कि आखिर में बच्चा कौन है? तथा उसे बच्चे के रूप में माने जाने के आधार कौन से हैं? अक्सर हमारे समाज में ऐसी उक्तियाँ बार–बार पढ़ने और सुनने को मिलती हैं कि बच्चे नादान होते हैं, उन्हें बड़ों की सहायता से ही आगे बढ़ाया जा सकता है। इन उक्तियों का बच्चों के बचपन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। वे यह सोचने के आदी हो जाते हैं कि वे फिलहाल कोई 'बड़ा' काम नहीं कर सकते, क्योंकि अभी वे छोटे हैं, अतः कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकते। सभी महत्वपूर्ण काम वे बड़े होकर ही कर सकेंगे। इस कारण वे जल्दी–से–जल्दी बड़े हो जाना चाहते हैं। साथ ही, समाज उनके व्यवहार को नियंत्रित करने के सारे तरीकों को निरन्तर अपनाता रहता है। दण्ड एवं मानसिक डर के माहौल को इस प्रकार बनाया जाता है जिससे हर बच्चा अपने मौलिक स्वभाव को त्याग कर सामाजिक व्यवहार को जल्द से जल्द अपना ले। अलग–अलग समुदायों में इसकी प्रक्रिया भिन्न–भिन्न हो सकती है। समुदाय में बच्चे के ऊपर कई सवालों के दबाव भी होते हैं। 'बड़े होकर क्या बनोगे' ऐसे प्रश्न घर पर आने वाले अतिथियों द्वारा बार बार पूछे जाते हैं या फिर कहीं न कहीं परिवार ही कई माध्यमों से यह घोषणा करने लगता है कि उसके बच्चे आगे क्या बनेंगे। इस प्रकार वयस्क बनने की तैयारी का आगाज़ हो जाता है और वयस्क बनने से बहुत पहले ही बच्चे अपने बचपन से कट जाते हैं। लेकिन, ऐसा नहीं है कि समाज में बच्चों की छवि को केवल नकारात्मक ढंग से ही परिभाषित किया जाता है।

यदि देखें तो समाज में बच्चों की छवियों को कई प्रकार से परिभाषित किया जाता है – जैसे आज्ञाकारी, जिज्ञासु, भोले–भाले, नादान, चतुर, चंचल, परिपक्व, नटखट, गुमसुम, बातूनी, मिलनसार, क्रोधी, हंसमुख, जिद्दी, गम्भीर, साहसी, डरपोक, नकलची, मूडी, तार्किक, मनमौजी आदि। बाल साहित्यों में भी बच्चों तथा उनके बचपन को कई तरह से प्रस्तुत किया जाता है, जो हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक चिंतन को दर्शाते हैं। इस पाठ्यक्रम में आप आगे कई ऐसे साहित्य–रचनाओं से अवगत होंगे और उनका अध्ययन करेंगे जिससे बच्चों तथा उनके बचपन से संबंधित कई अवधारणाएं स्पष्ट होती है।

क्रियाकलाप (Activity) :

बच्चों का मन कोरी स्लेट के समान होता है।

बच्चे कच्ची मिट्टी के घड़े के समान होते हैं।

क्या आप उपरोक्त उक्तियों के तर्कों से सहमत हैं? हाँ अथवा नही। अपनी कक्षा में इस पर सामूहिक चर्चा करें। साथ ही, बच्चों से जुड़ी अन्य लोकोक्तियों का संग्रह करें और उनका विश्लेषण करें।

इसमें दो राय नहीं है कि बच्चा स्वयं में एक महत्वपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक इकाई है। हर सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बच्चे एवं बचपन को अलग–अलग नजरिए से देखा जाता है। हर जाति धर्म व परंपरा में बच्चे तथा बचपन की समझ अलग–अलग है। जाति, धर्म, आर्थिक व सामाजिक दशा आदि बच्चे व बचपन को देखने के हमारे नजरिए को प्रभावित करते हैं। समाज में परोक्ष एवं प्रत्यक्ष दोनों तरीकों से बच्चों को जातीय संस्कारों एवं सामाजिक संबंधों को सिखाया जाता है। किसके साथ बैठना है, किसके साथ खेलना है, किसके साथ खाना खाना है, ये सारी बातें सिखायी जाती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि समाज बच्चों को एक ऐसी उपयुक्त इकाई के तौर पर भी देखता है जिन्हें सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं को सीखना वयस्कों की अपेक्षा सहज है।

हम यह भी देख सकते हैं कि जहां एक ओर, अभिजात्य वर्गों में बच्चों के लालन–पालन एवं सुरक्षा की अलग अवधारणा है, वहीं सुविधा विहीन परिवारों में बच्चों के लालन–पालन भिन्न प्रकार से होते हैं। उदाहरण के तौर पर – वैश्वीकरण के इस दौर में बच्चों के पालन–पोषण के लिए आया का सहारा लिया जा रहा है क्योंकि माता–पिता दोनों बाहर काम करते हैं। अन्य विकल्प के तौर पर मां–बाप के स्थान पर बड़े भाई या बहन अपने छोटे भाई या बहन की देख–रेख में होते हैं। गांवों में तो, कभी–कभी माता–पिता बच्चों को अपने साथ खेतों पर ले जाते हैं। धीरे–धीरे उन्हें अपने साथ काम पर भी ले जाना शुरू कर देते हैं। इस माहौल में बच्चे समर्पण के भाव एवं जातीय व्यवहार सीखते हैं एवं सामाजिक अर्न्तसंबंधों की भी समझ विकसित करते हैं। इसके साथ ही, ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में भी बच्चों के लालन–पालन का तरीका अलग होता है। जिसका प्रभाव बच्चों के व्यवहारों से परिलक्षित होता है। शहरी और ग्रामीण बच्चों के प्रति समाज में रूढ़ीवादी विचारधाराएँ भी होती हैं। जैसे शहरी बच्चों को स्मार्ट, बुद्धिमान, आदि संज्ञाएँ दी जाती हैं, वहीं गांव के बच्चों को दब्बू या कमजोर मानने की आम धारणा है। ऐसी धारणाओं के पीछे असामनता, वंचना और वर्गीय वर्चस्व को स्थापित करने वाली सामाजिक धारणाएं हैं, जो अपना पहला हमला समाज के बच्चों तथा उनके बचपन पर करती हैं। इसके बारे में हम तृतीय सत्र की पहली इकाई में विस्तार से समझेंगे। बच्चा एवं बचपन की सामाजिक–सांस्कृतिक समझ के लिए यह भी जानना आवश्यक है कि बच्चा लड़का है अथवा लड़की। आगे इकाई–2 में इस विषय पर विशेष चर्चा की गई है।

आज के समय में बचपन पर पड़ने वाले विभिन्न सामाजिक दबावों को भी समझना जरूरी है। पढ़ाई–लिखाई से लेकर भोजन करने तथा कपड़ा पहनने तक में बच्चे कई प्रकार के दबावों व प्रतिबंधों को झेलते हैं, जिनसे बच्चों के प्रति समाज के नज़रिए के वास्तविक चरित्र को समझना मुश्किल नहीं है। चाहे ये दबाव विद्यालय के हों या परिवार के, इससे बच्चों के जीवन में ऐसे अवसर लगातार कम होते जा रहे हैं, जब वे आज़ादी से अपनी पसंद का काम कर सकें। साथ ही, स्कूल की पुस्तकें भी बच्चों पर मानसिक बोझ डालती हैं। यदि देखा जाए तो वर्तमान सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य में बच्चों से वे सारे पल छीन लिये जा रहे हैं जब वे स्वयं को बच्चा समझ सकें। समाज बच्चों को उनके बचपन के प्रति हतोत्साहित करने का मौका नहीं छोड़ता।

यह स्पष्ट है कि बच्चों का बचपन व्यक्ति विशेष के सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों के अनुरूप विशिष्ट होते हैं। अलग अलग समाज व सांस्कृतियों में बच्चों को भिन्न भिन्न रूपों में समझा जाता है। बच्चों व बचपन के बारे में हमारे समाज में कई धारणाएँ हैं, जो बच्चों के प्रति हमारे व्यवहार को निर्मित करते हैं। बचपन सिर्फ विभिन्न प्रभावों तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि यह स्वयं भी समाज को प्रभावित करता है। इस प्रकार बचपन के अनुभव समाज व बच्चे के मध्य के सक्रिय अनुभव हैं जो सतत अंतःक्रिया के माध्यम से बनते हैं। बचपन की कई बातें बच्चे के भावी जीवन पर बहुत प्रभाव डालती है।

क्रियाकलाप (Activity) :

अपने आस पास के बच्चों के दैनिक जीवन का अवलोकन करें तथा निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करें:–

- क्या उन सभी बच्चों का दैनिक जीवन एक जैसा है या एक दूसरे से भिन्न है। इसके पीछे के कारणों का विश्लेषण करें।
- ये बच्चे अपना कितना समय किस कार्य में देते हैं, इसका भी अध्ययन करें और इसका उनके व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसका विश्लेषण करें।
- अपने अवलोकन के आधार पर विचार करें कि एक ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चे और शहरी पृष्ठभूमि के बच्चे के बचपन में क्या मूलभूत अंतर हो सकते हैं।

उपरोक्त बिन्दुओं के संदर्भ में अपनी कक्षा में एक प्रस्तुतिकरण करें तथा अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों पर चर्चा करें।

2.2.2 बच्चे तथा बचपन की अवधारणा : ऐतिहासिक समझ (Understanding children and childhood : Hitorical perspective)

मानव समाज के विकास का अपना एक लम्बा अतीत रहा है जिसे हम विशेष रूप से इतिहास के माध्यम से समझते हैं। हम यह जानते हैं कि इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में विभिन्न सभ्यताओं व संस्कृतियों से संबंधित समुदायों का उद्‌भव व विकास होता रहा है। स्पष्ट है कि उन समुदायों के अस्तित्व में उन बच्चों का अस्तित्व भी समाहित है जिन्हें भविष्य में उन समुदायों को आगे बढ़ाया होगा। अतीत में बच्चों की भूमिका इतनी अहम होने के बावजूद, ऐसा प्रतीत होता है कि हमने अपने इतिहास के अध्ययन में इसे कभी भी ज्यादा महत्व नहीं दिया। लेकिन बच्चों के मामले पर इतिहास के ऐसे चुप रहने अथवा उत्साही साक्ष्य न मिलने का निष्कर्ष यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि अतीत में विकसित समुदाय अपने बच्चों के प्रति संवेदनशील नहीं थे। आज के काल में बच्चों का जो स्वरूप विद्यमान है, यह कहीं अपने अतीत में हुए विकास का भी द्योतक है। अतः बच्चों के बचपन की संकल्पना को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना भी अति महत्वपूर्ण है।

बच्चों के बचपन को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर स्वतः ही कई सवाल उठते हैं। जैसे– अतीत के समुदायों में बच्चों के बचपन की क्या अवधारणाएं रही होंगी? किस प्रकार बचपन की संकल्पना, बच्चों की छवि, तथा परिवार के नजरिये में सदी–दर–सदी बदलाव आते रहे हैं? इस बदलाव के पीछे क्या कारण रहे होंगे? उस समय व आज के आधुनिक युग में इन संकल्पनाओं में कितना परिवर्तन हुआ है? इन सभी सवालों का कोई सटीक उत्तर देना काफी कठिन है। फिर भी उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कुछ अनुमान लगाने की गुंजाइश जरूर बनती है। यह स्वाभाविक है कि साक्ष्यों की बहुलता व प्रमाणिकता के मामले में आधुनिक काल इतिहास के अन्य कालखण्डों की तुलना में अधिक धनी है। अतः वर्तमान काल में बच्चों के बचपन के विषय में क्या स्थिति बनी है, उस पर बेहतर तरीके से विमर्श किया जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से विभिन्न कालखण्डों में बच्चों की स्थितियों के विषय में जानने को कम ही मिलता है। इस सीमा के कारण बच्चों की अवधारणा के निश्चित क्रमिक विकास को इतिहास के सभी कालखण्डों के परिप्रेक्ष्य में पूरी तरह से देखा नहीं जा सकता। यहां हम बच्चों और बचपन से संबंधित कुछ मूलभूत विशेषताओं व मान्यताओं को लेते हुये इतिहास में उनसे जुड़े साक्ष्यों का विश्लेषण करेंगे। साथ ही यह प्रयास भी होगा कि यथा सम्भव हम अपने विश्लेषण को इतिहास के विभिन्न कालों के संदर्भ में कर पायें और उन्हें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखें।

बच्चों के बारे में बहुत पहले के लोग क्या सोचते थे?, यह प्रश्न हमारे मन में कौतुहल को अवश्य जागृत करता है। आगे दिया गया उदाहरण बच्चे और बचपन के ऐतिहासिक अवधारणा के कुछ मूल पक्षों पर विशेष

प्रकाश डालता हैं। इसके विश्लेषण के माध्यम से हम बचपन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने का प्रयास करेंगे। आइये इसे पढ़ते हैं और इसमें उठाये गये बचपन से संबंधित विभिन्न पहलुओं को समझते हैं।

एक जैविक अवधारणा (बच्चा मात्र जैविक प्राणी के रूप में) सामाजिक अवधारणा (बच्चा सामाजिक प्राणी के रूप में) में तब्दील हो रही है कि बच्चा सिर्फ जैविक छोटा प्राणी नहीं है जो कि बड़े का एक छोटा संस्करण हो, उसका अलग व्यक्तित्व है। प्लेटो ने दो सहस्त्राब्दि पहले कहा था कि बच्चा दरअसल बड़ों के बीच एक विदेशी की तरह होता है, जैसे आप किसी विदेशी से जिसकी भाषा आपको न आती हो जब बात करते हैं तो आपको मालूम होता है कि मेरी कई बातें वो ठीक समझेगा, कई नहीं समझेगा या गलत समझेगा और जब वो कुछ बोलता है, अपनी भाषा में बोलता है और हमको उसकी भाषा नहीं आती तो हम भी उसकी पूरी बात नहीं समझ पाते। कुछ समझते हैं, कुछ नहीं समझते हैं, और इस तरीके से जो आदान–प्रदान होता है वह आधा–अधूरा ही रहता है।

प्लेटो ने जरूर इस रूपक को यह सब सोचकर रखा होगा कि जब बच्चों से लोग बात करते हैं तो केवल इस कारण ये बच्चा मनुष्य जैसा दिखता है, ये न सोचें कि ये मेरी बात को समझेगा और मैं इसकी बात को समझूंगा। उनके बीच में ये गुंजाइश रहे कि वे दोनों ही एक–दूसरे की बात को नहीं समझ पायेंगे। सम्प्रेषण का एक बहुत बड़ा क्षेत्र रहेगा जो अंधेरे में रहेगा। जाहिर है, उस समय इतना मनोविज्ञान विकसित नही हुआ था कि प्लेटो समझ सकता कि क्यों अंधेरा रहता है। लेकिन उसने फिर भी एक बहुत बड़ी बात कही थी और इस आधार पर यह अनुशंसा भी की थी कि अपने बीच में जैसा सम्मान हम विदेशियों को देते हैं, वैसा ही सम्मान हमें बच्चों को भी देना चाहिये। अभी तो समझ में नहीं आ रहा है, लेकिन क्या पता बाद में वही सही निकले। वैसे ही बाद में वही रहेगा, हम तो रहेंगे नहीं। तो इस नाते कम से कम एक संस्कार रखने की कोशिश प्लेटो ने की थी। और पिछले 2000 सालों पर गौर करें तो ऐसे कई लोग हुए जिन्होंने हमें याद दिलाया कि बच्चों को गम्भीरता से लेने की जरूरत है। हमारे देश में भी ऐसे लोग लगातार होते रहे हैं। अगर सूर के शब्दों पर विचार करें जिन्होंने अपने पदो ंके जरिए बच्चों की झूठ बोलने की प्रवृति पर विचार किया था और यशोदा को एक ऐसी माँ के रूप में स्थापित किया जो ये सब सहन करती हैं और बहाना सुन के कहती नहीं है कि मुझे पता है कि ये तुम्हारा बहाना है बल्कि गले लगा लेती है, तो सूर कौन–सा रूपक रच रहे थे। वो वही रूपक रच रहे थे कि बच्चों की दुनिया में लोकपाल बनने की कोशिश मत कीजिए। उनको छिपने की जगह दीजिए। उनको बहाना बनाने की जगह दीजिए। उनको अपनी कल्पना की दुनिया में रहने का मौका दीजिए। इसको लेकर अनेक परम्पराएँ हैं, लोक आख्यान हैं, कोई कमी नही है।

(स्रोतः कृष्ण कुमार, बचपन की अवधारणा और बाल साहित्य,
शैक्षणिक संदर्भ, अंक–24 (मूल अंक 81), पृ. 57, 58)

क्रियाकलाप (Activity) :

दिये गये उदाहरण के आधार पर निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करें।

- जैविक अवधारणा और सामाजिक अवधारणा के रूप में बचपन को समझने के क्या–क्या मायने हो सकते हैं? इस पर सोचें।
- उदाहरण में बच्चों के जो भी गुण परिलक्षित हुये हैं उनकी पहचान करें, सूचीबद्ध करें तथा इस पर विचार करें कि आज के समाज में उन गुणों के प्रति क्या धारणाएं है और क्यों?
- उदाहरण में एक भारतीय प्रसंग की चर्चा भी की गयी है। इस संदर्भ में यह विचार करें कि यह प्लेटो के विचार से किस प्रकार अलग है?
- उदाहरण के आधार पर आप उस समय के बच्चों की स्थिति के विषय में क्या अनुमान लगा सकते हैं? उन स्थितियों का आलोचनात्मक विश्लेषण भी करें।

आपने ऊपर के उदाहरण के माध्यम से बच्चों के विषय में कुछ प्राचीन मतों को जाना और उनसे संबंधित दिये गये बिन्दुओं पर विचार किया। विचारकों के अनुसार **प्राचीन मानव समाजों** में 'बच्चे' को एक स्वतंत्र सामाजिक प्राणी की श्रेणी में नहीं रखा जाता था और आज भी यह मत किसी न किसी रूप में विद्यमान है। कई मनोवैज्ञानिकों का यह भी विश्लेषण है कि हमारे समाज में शैशव की अवधारणा तो है, लेकिन बचपन के बाद से हमारे समाज तथा परिवार में उससे की जाने वाली अपेक्षाएं दरअसल उसे वयस्क बनाने की तैयारी रही है और बचपन की संकल्पना को यहां कभी स्वीकारा नहीं गया। अब हम ऊपर के उदाहरण के माध्यम से उठाये गए विचारों को आगे बढ़ाते हुए अपने अतीत में बच्चों की संकल्पना कैसी थी, इसकी पड़ताल करेंगे। आज के समय में बच्चे की अवधारणा कैसे बन रही है, इसकी चर्चा आगे के खण्ड में की जायेगी।

क्रियाकलाप (Activity) :

हड़प्पा सभ्यता में पाए गए कुछ खिलौनों के चित्र यहां दिए जा रहे हैं। आप इन्हें देखकर क्या क्या अनुमान लगा सकते हैं?

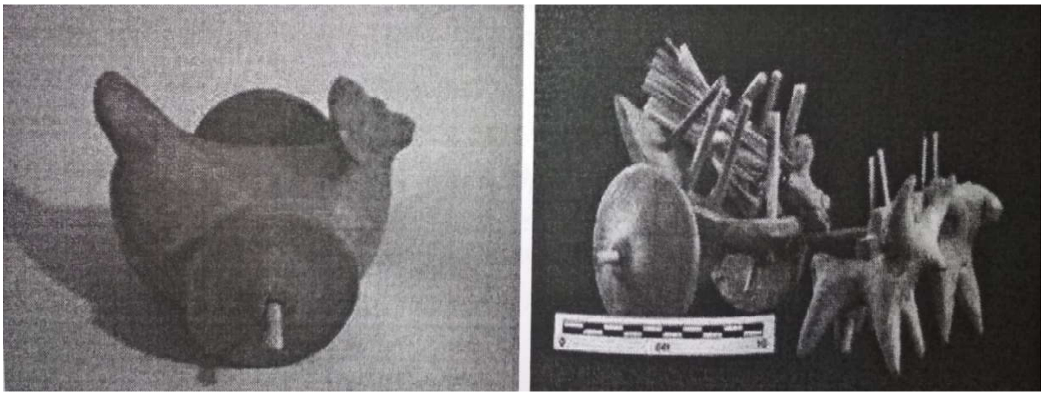

अतीत में देखें तो भारत की **प्राचीन सभ्यताओं** में बच्चों के विषय में कुछ उत्साहवर्द्धक अनुमान लगाने की भरपूर संभावना मिलती है। अब तक की खोजों में कुछ साक्ष्य ऐसे मिले हैं जो हड़प्पाकालीन सभ्यता के लोगों के बच्चों एवं बचपन के प्रति संवेदनशील होने का स्पष्ट प्रमाण देते हैं। खिलौनों का पाया जाना उनकी संवेदनाओं एवं जागरूकता का ही एक उदाहरण है। यहाँ भवन निर्माण से जुड़ी एक महत्वपूर्ण बात भी ध्यानाकर्षित करती है। हड़प्पा कालीन भवनों के मुख्य द्वार कभी मुख्य सड़क की ओर नहीं पाए गएं ऐसा माना जाता है कि इसका एक मुख्य कारण बच्चों की सड़क पर चलने वाले सवारियों से सुरक्षा करना भी था।

उपरोक्त सभी तथ्य इस धारणा को और पुष्ट करते हैं कि वह समाज अपने बच्चों के पालन–पोषण और शिक्षा के प्रति भी जागरूक व संवेदनशील रहा होगा। जिस सभ्यता में लोग अपने बच्चों के प्रति इतने सचेत रहे हैं, अनुमानों के आधार पर उस समाज में एक जीवन्त बचपन की अपेक्षा की जा सकती है। इसके साथ साथ, प्राचीन काल में रचित काव्यों, कथा–कहानियों में भी उस काल के बच्चों के बचपन की छवि दिखती है। उदाहरण के तौर पर कालिदास रचित अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला पुत्र भरत के बचपन की परिस्थितियों का वर्णन है। इस बच्चे के नाम पर हमारे देश का नामकरण 'भारत' करना, यह दर्शाता है कि प्राचीन समाज में बच्चों के प्रति क्या धारणा थी। हालांकि, इन उदाहरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना मुश्किल है कि उस समय बच्चों का बचपन बहुत खुशहाल था। प्राचीन काल की कई कथाओं में ऐसे उदाहरण भी हैं जहां बच्चों के बचपन पर सामाजिक दबाव काबिज़ है। महाभारत के कर्ण और एकलव्य की कथा से आप जरूर परिचित होंगे।

क्रियाकलाप **(Activity)** :

आप कुछ पौराणिक कथाओं का संग्रह करें जिसमें बच्चों के विशेष चरित्रों व दशाओं के विषय में लिखा हो। उनको पढ़े और यह विश्लेषण करें कि :

- उन कथाओं में उल्लेखित बच्चों की सामाजिक स्थिति क्या थी? उदाहरण के तौर पर एकलव्य की कथा को ले सकते है।
- क्या उन कथाओं में किसी बालिका के बचपन का भी विवरण मिला है?
- आप उनमें से किसके बचपन से सबसे अधिक प्रभावित हुए और क्यों?

प्राचीन काल के बाद, अब हम **बचपन के मध्ययुगीन अवधारणा** पर विचार करते हैं। इतिहासकार फिलिप एरीज (1962) मानते हैं कि एक बार जब बाल्यावस्था की संस्था का अभ्युदय होना आरम्भ हुआ, तो समाज में वयस्कों और बच्चों के मध्य के संबंध की स्थिति बदलने लगी। बच्चों को वयस्क वास्तविकता से बचाने के क्रम में बच्चों से उन सभी असहज बातों को छिपाना शुरू हुआ जिसे बच्चों के लिये जानना अच्छा नहीं माना गया। एरीज़ ने चित्रों, लेखों, सामग्री आदि के विश्लेषण से निकाला कि मध्ययुग से पूर्व बचपन की अवधारणा अस्तित्व में नहीं थी परन्तु बच्चे को अनदेखा भी नहीं किया जाता था। यहां बचपन की अवधारणा और बच्चे के प्रति स्नेह के मायने अलग–अलग हैं। बच्चे के प्रति स्नेह का अर्थ यह नहीं है कि कोई समाज उसके बचपन को मान रहा है। इस काल में शैशवावस्था को युवावस्था व वयस्कों से अलग नहीं माना जाता था, अर्थात शैशवावस्था खत्म होते ही वह वयस्क समाज से संबंधित हो जाता था। आगे चलकर, धीरे–धीरे बच्चों की अपनी मिठास, सादगी व अपने नटखटपन के कारण वयस्कों के मनोरंजन एवं तनावमुक्ति के स्रोत के रूप में नई अवधारणा प्रकट होती नज़र आती है। इस समय लिखी किताबों में हमें दिखाई देता है कि माँ और परिवार के अन्य लोग बच्चे के खुश होने पर खुश रहते हैं। ऐसा माना जा सकता है कि बच्चों की उछलकूद, बोलना सिखाना, खेलना, आदि छोटी–छोटी हरकतों से मिलने वाले आनन्द को समाज व परिवार ने महत्व देना शुरू कर दिया था। इसी कालक्रम में उक्त अवधारणा के विरूद्ध आलोचनात्मक प्रतिक्रियाएँ भी सामने आने लगी जिनमें बच्चे का इस तरह से पालन पोषण के दौरान अत्यंत प्रेम और खुले माहौल को गलत माना गया। कालांतर में बच्चे बड़ों के बीच अपने मूर्खतापूर्ण उत्तरों के कारण परिहास का कारण बनने लगे तथा ऐसा लगने लगा कि वे वयस्कों के मनोरंजन के लिए बने हैं। यदि आलोचनात्मक दृष्टिकोण से परखें तो पाएंगे कि फिलिप एरीज़ का यह विश्लेषण का दायरा वस्तुतः एक विशेष अभ्जित्य वर्ग के बच्चों पर ही सीमित है जिसमें मध्ययुगीन समाज के अन्य वर्गों के बच्चों का बचपन शामिल नहीं है। उस समय के किसानों, मजदूरों, अपेक्षित समुदायों में बच्चों का जीवन कैसा था, इसकी समझ उनके विश्लेषण से नहीं मिलती है।

यदि मध्यकाल में भारतीय समाज का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि इसके राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य में कई बदलाव आए, जो मुख्य रुप से भारत में बाहर के समुदायों के आगमन के कारण हुआ। इस परिस्थिति में बच्चों के विकास का संदर्भ भी बदला, जैसे उनके लालन–पालन, शिक्षा–दीक्षा व परिवेश से संबंधित स्थितियों में विशेष परिवर्तन हुए। बच्चों के पठन–पाठन के लिए विद्यमान पहले की धार्मिक व सामुदायिक संस्थाओं के साथ–साथ 'मकतब', 'मदरसों' व 'पाठशाला' का भी विकास हुआ। इसी काल में इकाई मिशनरियों के आने से बच्चों के बचपन पर प्रभाव परिलक्षित होने लगा। इन संस्थाओं को आप आज भी विकसित रूप में देख सकते हैं।

मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में लगभग सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से वैश्विक स्तर पर बच्चों की अवधारणा में कुछ और परिवर्तन हुए। अब विचारकों का बच्चों के प्रति रूझान का कारण बच्चों से उनका स्नेह नहीं था बल्कि

बच्चों के प्रति मनोवैज्ञानिक व नैतिक चिन्ता थी। वे बचपन की अवधि को समझ के विकास का समय मानते थे। धीरे–धीरे बच्चों के मनोविज्ञान पर टिप्पणियों का दौर भी शुरू हुआ। बचपन के भोलेपन के साथ साथ बच्चों की तर्कशीलता विकसित करने, विचारशील व्यक्तित्व का निर्माण करने पर जोर दिया गया ताकि वे अच्छे व सभ्य नागरिक बन सकें। बच्चों के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये विभिन्न प्रयोगों व युक्तियों को भी अपनाये जाने का दौर शुरू हो गया।

कुल मिलाकर देखा जाये तो मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में बाल्यावस्था की वैश्विक अवधारणा में कई स्थायी परिवर्तन हुए, हालांकि पूरे वैश्विक स्तर पर उनमें कितना परिवर्तन आया, इसकी स्पष्ट समझ बना पाना कठिन है। यहां मध्यकालीन समाज की वैश्विक अवधारणा को मोटे तौर पर इस रूप में भी समझा जा सकता है, जहाँ प्रायः बच्चों को उनके पिता या अभिभावक अपने नियंत्रण एवं सत्ता के अधीन रखने के पक्ष में थे। वहीं दूसरी ओर पारम्परिक भारतीय दृष्टिकोण में बच्चों को दया, करूणा, अहिंसा इत्यादि का अधिकारी माना गया, बच्चों में आत्म–अनुशासन, दूसरों का सम्मान करने वाला, निश्छल इत्यादि गुणों को आवश्यक समझा गया है। गहराई में देखा जाये तो बचपन की विशिष्ट चरित्र, स्नेह व दया भावना वाली अवधारणा का उद्भव परिवार में हुआ। वहीं इसके विपरीत, नियंत्रण, सत्ता और अनुशासन की दूसरी अवधारणा परिवार के बाहर के स्रोतों से निकलकर आई।

क्रियाकलाप (Activity) :

- मध्यकालीन भारत में बच्चों के विषय में लिखे गए साहित्यों की सूची बनाएँ।
- उनमें से किसी एक साहित्य का अध्ययन करें तथा उसमें बच्चों के बचपन पर आये दृष्टांतों/घटनाओं/विवरणों को संकलित करें एवं उन पर अपना विश्लेषण प्रस्तुत करें।

वर्तमान समय में बाल्यावस्था के उद्भव और इतिहास का अध्ययन शुरू करने वालों ने पाया है कि बाल्यावस्था, मातृत्व, घर व परिवार जैसी संस्थाएं आज जिस रूप में मिलती हैं वे कुछ महत्वपूर्ण अर्थों में न केवल स्थानीय हैं, बल्कि उनका उद्भव हाल में ही हुआ है। अर्थात बाल्यावस्था को हम जिस रूप में जानते हैं वह न केवल एक आधुनिक आविष्कार है बल्कि उसकी प्रकृति संस्थागत है। संस्थागत बाल्यावस्था उन दृष्टिकोणों, भावनाओं, रिवाजों तथा नियमों से बंधी है जो एक बच्चे और उसके बुजुर्गों के बीच गहरी खाई खोदते हैं। इससे बच्चों और युवाओं को अपने इर्द–गिर्द तथा समाज से सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई आती है, या यह सम्पर्क असंभव हो जाता है। और तो और वे समाज में किसी प्रकार की सक्रिय जिम्मेदार होने की या उपयोगी भूमिका भी नहीं निभा पाते। जॉन हॉल्ट का मानना है कि आधुनिक बाल्यावस्था की संस्था, दृष्टिकोण, रीति–रिवाज और आधुनिक जीवन में बच्चों से संबंधित कानून इत्यादि का निर्माण एक अनिवार्य प्रयास है, जिसके अन्तर्गत बच्चों का जीवन किस प्रकार है? बड़े–बुजुर्ग इनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं? इनके जीवन के लिए क्या बेहतर हो सकता है? इत्यादि, ये सब प्रश्न वयस्कों ने पहली बार आधुनिक युग में सोचना प्रारम्भ किया। यह स्पष्ट है कि आधुनिकता ने 'बच्चे एवं बचपन' के प्रति हमारी समझ में व्यापक बदलाव किये हैं। आगे के भाग में हम इस पर चर्चा करेंगे।

क्रियाकलाप (Activity) :

- क्या आप इस मत से सहमत हैं कि बचपन की अवधारणा एक नवीन संकल्पना है और यह आधुनिक दुनिया की खोज है? अध्ययन केन्द्र पर इस कथन के ऊपर एक वाद–विवाद परिचर्चा का आयोजन करें।

- बच्चों एवं बचपन की आधुनिक और आधुनिक–पूर्व अवधारणा में किस प्रकार के अंतर हैं, ऐसे अंतर क्यों आए। इस विषय पर अपने अध्ययन केन्द्र पर चर्चा करें।
- आपका अपना बचपन कैसा रहा है और आप आज के बच्चों को किस प्रकार देखते हैं? इस पर एक आलेख लिखें और अध्ययन केन्द्र पर अपने साथियों से साझा करें।
- आज के बच्चों को कैसा बचपन चाहिए। इस बारे में कुछ बच्चों से बात करें और उनके जवाबों का विश्लेषण प्रस्तुत करें।

2.3 समाजीकरण की समझ (Understanding of socialization)

हर व्यक्ति के जीवन में समाजीकरण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। लेकिन, बच्चों के संदर्भ में इस प्रक्रिया की अपनी एक खास अहमियत है। वे जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं या स्वयं या समाज के बारे में जैसा सोचते हैं, यह उनके समाजीकरण का ही प्रतिफल है। इस खण्ड में 'हम समाजीकरण की अवधारणा और इसके कारकों से परिचय करेंगे।

2.3.1 समाजीकरण की अवधारणा : विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण (Concept of socialization : Analysis of diverse situation)

यह समाजीकरण की अवधारणा क्या है और बच्चों के संदर्भ में क्यों महत्वपूर्ण है, इसे समझने के लिए आइए आगे दिए गए दृष्टांतों का अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं।

(दृष्टांत : 2.3.1–अ) (Anecdote)

शिक्षा दिवस के अवसर पर बी.टी.आई. मैदान रायपुर में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। छत्तीसगढ़ के प्रत्येक जिलों से पाँच–पाँच बच्चे चित्रकला प्रतियोगिता में भाग लेने हेतु आये हुए थे। उनके रहने–खाने की व्यवस्था एक साथ की गई थी। शाम के समय जब बच्चे आपस में मिले तो वे विभिन्न बातों पर चर्चा करने लगे। भाषा, खान–पान, रहन–सहन आदि में बच्चे अलग थे। जशपुर, सरगुजा जिले के बच्चे चावल, सब्जी खाना पसंद करते थे वही बस्तर जिले के बच्चे कंद, मुल, पेज। बच्चे पहनावे में भी एक दूसरे से भिन्न थे। फिर भी, सारे बच्चे मिलजुलकर रह रहे थे। उनके सामाजिक सांस्कृतिक, जातीय, धार्मिक एवं भौगोलिक विशेषताओं के कारण उनके आचरण, व्यवहार, रहन–सहन, भाषा एवं रीति–रिवाजों में भी अंतर दिखाई पड़ता था।

चर्चा के बिन्दु (Points of discussion) :

- विभिन्न क्षेत्रों का प्रभाव बच्चों के बचपन पर कैसे पड़ता है? सोदाहरण व्याख्या करें।
- विभिन्न जिलों से आये बच्चों के समाजीकरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों की पहचान करके उनका उल्लेख करें।
- यदि किन्ही दो बच्चों की पृष्ठभूमि एक जैसी नहीं है तो इस आधार पर उनमें अन्तर किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में शिक्षक के समक्ष कई प्रकार की कक्षागत चुनौतियाँ उभर कर आती हैं। इस संदर्भ में विचार करें कि अपनी कक्षा के बच्चों को 'विविधता' और 'विभेद' की अवधारणा को आप कैसे समझाएंगे।

क्रियाकलाप **(Activity)** :

- छत्तीसगढ़ के समस्त जिलों के प्रमुख खान–पान, पहनावे, बोलियों, रीति–रिवाजों व भौगोलिक परिस्थितियों की सूची बनाएँ। बच्चों के समाजीकरण में इनकी भूमिकाओं को स्पष्ट करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करें।
- आप अपने विद्यालय के अन्य शिक्षक व शिक्षिकाओं से चर्चा करें और यह विश्लेषण करें कि बच्चों के समाजीकरण के विभिन्न तरीकों के प्रति उनका मत क्या है।
- अपने विद्यालय में पढ़ने वाले किन्हीं पाँच बच्चों के संदर्भ में यह पता लगायें कि उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य एवं भाषाई विविधताएँ उनके समाजीकरण को कैसे प्रभावित करती है? अपने साथी शिक्षकों से इसकी चर्चा करें और उनके अनुरूप शिक्षण योजना बनायें।

(दृष्टांत : 2.3.1–ब) (Anecdote)

रमेश बाबू एक धनी किसान थे। उनके दो बच्चे थे – सुदेश और मुकेश जो अपने परिवार के साथ अपने पिता रमेश बाबू के घर पर ही रहते थे एवं खेती में उनका हाथ बँटाया करते थे। सुदेश के दो बेटे थे जब कि मुकेश के एक बेटा और एक बेटी थी। चारों बच्चे घर के आँगन में एक साथ खेला करते थे। एक दिन रमेश बाबू की चाची उनके घर आई। चाची को चारों बच्चों का इस तरह खेलना अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने पिंकी को बुलाकर पास बैठाया और कहा कि – मेरे पैर में बहुत दर्द है जरा तेल लगा दे।

तभी पिंकी की माँ शैल ने कहा – चाची अभी तो वह बच्ची है, लाइए मैं लगा देती हूँ। चाची भड़क कर बोली–10 साल की लड़की है और तुम इसे बच्ची कह रही हो। तुम भी क्या बात करती हो। दिन भर केवल भाइयों के साथ खेलती है आखिर घर के रीति–रिवाज व संस्कार कब सीखेगी? स्कूल से आते ही बंदरों की तरह उछलती रहती है। इसे कुछ काम धंधा सिखाओ नहीं तो बहुत बदनामी होगी।''

शैल ने कहा, ''चाची इसे समय कहाँ मिलता हैं स्कूल के कार्यों से तो बस थोड़ी सी फुरसत मिलती हैं। उसे भी तो खेलने का मन करता है।''

चाची ने कहा, ''भाई आज कल तो जमाना ही बदल गया है। हमारे जमाने में तो बच्चियाँ माँ के कामों में हाथ बँटाती थी। बड़े बुजुर्गों की सेवा करती थीं। परन्तु आज ये पढ़ने लिखने वाली पीढ़ी घर और परिवार को तो कुछ समझती ही नहीं है।''

शैल ने कहा, ''चाची पढ़ना लिखना भी तो जरूरी है। समय के साथ साथ नहीं चलेंगे तो बिलकुल पिछड़ जाएँगे। आज समाज की सोच बदलने लगी है।''

चाची ने कहा, ''तुम्हारी बातें तुम ही जानो। मैं तो मंदिर चली''।

मंदिर में उन्हें गाँव की अन्य महिलाएँ मिल गई। एक ने अपनी बहु की शिकायत करते हुए कहा, ''क्या बताऊँ इतना समझाती हूँ कि बेटी को घर के रीति–रिवाज, धर्म–कर्म और परम्परा की बातें सिखाएँ, लेकिन कोई ध्यान ही नहीं देता है।

दूसरी ने कहा, ''अरे पहले तो मुस्लिम परिवार की लड़कियाँ पर्दा किया करती थी।, आज तो वे भी पढ़ने के लिए स्कूल जाती हैं।

तीसरी ने कहा, ''शहरों में तो लड़कियाँ और भी स्वतंत्र हो गई हैं। लड़कों की तरह पैंट–शर्ट पहन कर घूमती रहती हैं।''

उनमें से एक महिला जिसकी बेटी शहर में नौकरी करती थी, ने कहा–''यही तो परेशानी है। हम घर–परिवार, आस–पड़ोस, वाले अपनी इच्छा से जबरन बच्चों के बचपन को सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप ढालना चाहते हैं। कितनी खुशी की बात है कि हमारी बच्चियाँ डॉक्टर, इंजीनीयर, बन कर देश और समाज की सेवा करती हैं तथा घर एवं परिवार का नाम रोशन करती हैं। मीरा कुमार, सानिया मिर्जा, कल्पना चावला, शारदा देवी, इंदिरा गाँधी आदि भी तो लड़कियाँ ही हैं। सही बताना क्या उस समय ऐसा नहीं लगता कि हम अपनी झूठी शान के नाम पर उनके पैरों में सामाजिक मान्यताओं की बेड़ियाँ डाल देते है।''

इस बात ने चाची के दिल को झकझोर दिया। उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ।

चर्चा के बिन्दु (Points of discussion) :

- चाची के विचार समाज की किस सोच को दर्शाता है? विवेचना करें।
- क्या आप अपने घरों में लिंग भेद के व्यवहारों को अनुभव करते हैं? इसको दूर करने के कौन से उपायों को आप सुझाएँगें?

क्रियाकलाप (Activity) :

- अपने विद्यालय में छात्राओं के साथ हो रहे उन व्यवहारों की पहचान करें जिसे आप लिंग–भेद संबंधी व्यवहार मानते हैं। इसके संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

विषय वस्तु की समझ (Understanding of content)

उपरोक्त दृष्टांतों के माध्यम से आपने देखा की समाजीकरण की प्रक्रिया कैसे समाज में आकार लेती हैं, कैसे समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं पारिवारिक कारक बच्चों के बचपन को अलग ढंग से देखते हैं एवं उनके समाजीकरण को प्रभावित करते हैं। आपने क्रियाकलापों के माध्यम से भी इसकी सत्यता की पड़ताल की। बच्चा समाज में जन्म लेता है और जन्म से ही वह सामाजिक विश्व का अंग बन जाता है। इस समाजिक विश्व में परिवार, मित्र–समूह, समुदाय आदि सभी शामिल हैं। इन सभी के साथ बच्चा ऐसे अन्तर्संबंधों का ताना–बाना बनाता है जो जीवन पर्यन्त चलता रहता है। बच्चा जैसे–जैसे बढ़ता है, उसके सामाजिक संसार का फैलाव होता जाता है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह अपने परिवेश, विशेषरूप में अपने परिवार, समुदाय, विद्यालय, मित्र–समूह, व अन्य संचार माध्यमों से निरंतर सीखता रहता है और संबंधित व्यवहार, व विश्वास निर्मित व पुनर्निर्मित करते रहता है। इन्हीं में वह अपने जीवन को ढालने लगता है। हर समाज अपने तरह के लोग चाहता है। इसके लिए परिवार, जाति, समूह, धर्म जैसी न जाने कितनी ही संस्थाएँ समाज ने ऐतिहासिक विकास–क्रम में बनाई हैं। इस प्रकार समाज में अपने आंतरिक जीवन मूल्यों और मान्यताओं को सिखाने के लिए एक सचेत व्यवस्था है, इन्हीं व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं में बच्चे बड़े होते हैं। चाहे–अनचाहे उनका सामना विभिन्न सामाजिक, संस्थाओं और प्रक्रियाओं से होता है। ये संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे को ''कुछ करने के लिए'' और ''कुछ ना करने के लिए'' कहती हैं। बच्चों की अपनी एक निराली दुनिया होती है जिसमें कभी–कभी बड़े अपनी सामाजिक हैसियत की दरार डालते नजर आते हैं। आपने देखा कि विभिन्न सामाजिक और आर्थिक परिवेश में पलने वाले बच्चों की प्रकृति भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। उसी तरह दृष्टान्त में यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि विभिन्न भौगोलिक, जातीय एवं आर्थिक परिवेश का प्रभाव बच्चों के समाजीकरण पर पड़ता है। अंतिम दृष्टान्त चाची एवं उनके जैसी अन्य महिलाओं के सोच को दर्शाता है जो लैंगिक आधार पर बच्चों के बचपन को ढालने का प्रयास करती है वही शैल और दूसरी महिला दोनों के पालन पोषण में एकरूपता लाने की बात करती है। अगर देखा जाय तो किसी बच्चे का विकास कैसे हो, समाज में उनकी भूमिका कैसी हो यह विभिन्न कारकों के द्वारा निर्धारित होता है।

इस प्रकार समझें तो समाजीकरण वह अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह के मूल्य, विश्वास, मनोवृत्ति, मानदण्ड और भाषिक विशेषताएँ अर्जित करता है। इन सांस्कृतिक तत्वों को अर्जित करने के दौरान व्यक्ति की अपनी पहचान और व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस प्रकार समाजीकरण की प्रक्रिया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सामाजिक निरंतरता को बरकरार रखती है। अगर देखा जाए तो समाजीकरण मूलतः सदस्यों द्वारा समाज के तरीके सीखने की प्रक्रिया है। इसका अभिप्राय यह है कि बच्चा संस्कृति के तत्वों को आत्मसात कर अपने व्यवहार को सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप परिमार्जित कर समाज का सदस्य बनता है। बच्चा समाज में सह–अस्तित्व, परस्पर निर्भरता और अपेक्षाएँ सीखता है। इस प्रक्रिया में वह अपने आपको जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में रूपान्तरित करता है और वह समाज का स्वीकार्य सदस्य बनता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बच्चे के जेंडर (लिंग) के अनुसार एक ही समाज अलग–अलग तरीके से समाजीकरण करता है। इस संदर्भ में हम इकाई–2 में विशेष चर्चा करेंगे।

इस प्रकार, समाजीकरण की अवधारणा के कई पहलू है। विभिन्न शास्त्र समाजीकरण की प्रक्रिया के अलग–अलग पहलूओं पर बल देते है। नृविज्ञानी समाजीकरण को मुख्यतया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सांस्कृतिक हस्तांतरण के रूप में देखते हैं। समाजशास्त्री समाजीकरण को मुख्य रूप से सामाजिक भूमिकाओं को सीखने के रूप में देखते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति अपने समूह की भूमिकाओं को सीखते हुए और उसे आत्मसात करते हुए उसका अभिन्न अंग बन जाता है। कुछ समाजशास्त्री समाजीकरण को स्व–अवधारणा के निर्माण के रूप में देखते हैं। आत्मीय और पारस्परिक संबंधों के संदर्भ में 'स्व' और 'पहचान' के विकास को समाजीकरण का केन्द्रीय अंग समझा जाता है।

शिक्षक के रूप में हमारा बच्चों के साथ गहरा संबंध होता है, इसलिए हमें समाजीकरण की उस प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है जो बढ़ते बच्चों पर प्रभाव डालती है। दूसरे शब्दों में 'संदर्भ' और 'मुख्य संबंधों' का बच्चे के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है इसे जानना आवश्यक है। व्यक्तियों में विचार प्रक्रियाएँ समाजीकरण के दौरान विकसित होती हैं। अतः समाजीकरण वह तरीका है जिसमें ज्ञान एक पीढ़ी से निर्धारित मानदंडों, मूल्यों और नियमों का अनुपालन आवश्यक है। सामाजिक रीति–रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक समारोहों के रूप में परंपराएँ आदि के तरीके हैं जिनमें समूह एक दूसरे के साथ बंधे होते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु आयोजनों एवं धार्मिक उत्सवों जैसे अवसरों पर सामूहिक सहभागिता इसके उदाहरण हैं। बढ़ते हुए बच्चे को विभिन्न प्रकार से समुदाय के तरीके सिखाए जाते हैं।

समाजीकरण बच्चों को सामाजिक नियमों एवं परम्पराओं को सिखाता है। हमारे समाज की अनेकों नियम एवं मान्यताएँ हैं जो सामाजिक असमानता को जन्म देते हैं। यह असमानता जाति, धर्म या आर्थिक परिस्थिति के कारण हो सकता है। एक शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय एवं कक्षा–कक्ष में इस प्रकार की असमानता को पनपने न दें एवं बच्चों की गरिमा का एक व्यक्ति के रूप में ख्याल रखें।

क्रियाकलाप (Activity) :

- अपने समुदाय से समाजीकरण की प्रक्रिया के कुछ उदाहरणों की सूची बनाएं और यह विश्लेषण करें कि उनके कारण बच्चों के बचपन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।
- क्या समाजीकरण की प्रक्रिया एक निरपेक्ष प्रक्रिया है? अपने अध्ययन केन्द्र पर चर्चा करें।

2.3.2 बच्चों का समाजीकरण : प्राथमिक एवं परवर्ती चरण के विभिन्न कारकों से परिचय (Socialization of children : Introduction to different factors of primary and secondary stages)

पहले वाले खण्ड में हमने जाना कि समाजीकरण की प्रक्रिया बहुत जटित एवं बहुआयामी है।

ऐसा इसलिए भी है क्योंकि बहुत सारे कारक इस प्रक्रिया में भागीदार होते हैं। इन कारकों की भूमिका को समझना जरूरी है, जिसे आगे दिए गए दृष्टांतो के माध्यम से विश्लेषित करने की कोशिश की गई है।

(दृष्टान्त : 2.3.2–अ) (Anecdote)

मुन्ना एक फैक्ट्री में काम किया करता था। एक दुर्घटना में उसकी मौत हो गयी। उसकी पत्नी अपने दो बर्ष के बच्चे चुन्नू के साथ अपने भाई मोहन के घर रहने आ गई। मोहन के दो बच्चे थे – छोटा बेटा टिंकू चुन्नू का हम उम्र था, जबकि बड़ा बेटा रिंकू उससे दो वर्ष बड़ा था। मोहन की पत्नी सोनी को चुन्नू और उसकी माँ का यहाँ रहना बिलकुल पसंद नहीं था। रिंकू और टिंकू पलंग पर बैठ कर खिलौने से खेलते रहते, वहीं चुन्नू जमीन पर पड़ा रहता था और चुन्नू की माँ घर के सारे काम किया करती थी। समय के साथ–साथ बच्चे बड़े हो गए। रिंकू और टिंकू, शहर के निजी विद्यालय में पढ़ने जाने लगे। सुबह–सुबह नाश्ता कर वे स्कूल बस से स्कूल जाया करते थे। चुन्नू उनके स्कूल बैग को बस स्टैंड तक पहुचाया करता था। वही चुन्नू पास के सरकारी स्कूल में पढ़ने जाने लगा। रात के बचे हुए खाने को खाकर वह स्कूल जाया करता था। स्कूल से आने के बाद जहाँ रिंकू, टिंकू कम्प्यूटर गेम खेलने लगते थे, वहीं चुन्नू को उनकी किताबें सजाकर रखनी पड़ती थी। एकदिन टिंकू, ने अपनी बैट तोड़ डाली और चुन्नू का नाम लगा दिया। सोनी ने चुन्नू को बहुत डाटा, कि ''इतना बड़ा हो गया और कोई तरीका नहीं सीखता। बच्चे का बैट तोड़ दिया। जा भाग यहाँ से। चुन्नू हमेशा सोचता की यदि मैं बड़ा हूँ तो मेरा हम उम्र टिंकू छोटा कैसे है? अपनी बातों से वह माँ को हमेशा परेशान किया करता था। माँ किसी तरह उसे शांत कर देती पर उसे समझा नहीं पाती।

चर्चा के बिंदु (Points of discussion) :

1. चुन्नू और रिंकू के समाजीकरण की परिस्थितियों में क्या फर्क है? स्पष्ट करें।
2. चुन्नू के समाजीकरण में उसके घर परिवार या समाज की भूमिका की पड़ताल करें।

क्रियाकलाप (Activity) :

- अपने विद्यालय के किन्हीं तीन बच्चों का सर्वेक्षण करके बताएँ कि उनके समाजीकरण में उनके परिवार की क्या भूमिका है? इस संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

(दृष्टान्त : 2.3.2–ब) (Anecdote)

गर्मी की छुट्टियाँ प्रारंभ हो गयी थी। पलक अपने पापा से जिद कर रही थी कि उसे कोरबा में रहने वाली अपनी मौसी के घर ले चले। मौसी उसे बहुत मानती थी। घर में तो उसे घरेलू काम भी करना पड़ता था और अपने छोटे भाई ईशान की देखभाल भी करनी पड़ती थी। ईशान 8 वर्ष का था लेकिन वह पलक को बहुत तंक किया करता था। माँ तो पलक को देखना भी नहीं चाहती थी। कुछ भी लाती थी तो ईशान को पहले मिलता था। पलक अगर माँगती तो दादी माँ उसे झिड़क दिया करती थी। उसी की हम उम्र मौसी की बेटी प्रशंसा के साथ ऐसा नहीं था। मौसी के भी दो बच्चे थे प्रशंसा व अपूर्व परन्तु मौसी दोनों पर सामान रूप से ध्यान दिया करती थी। यही नहीं प्रशंसा भी अपूर्व की तरह पैंट शर्ट पहना करती थी। शाम को दोनों भाई बहन मैदान में साथ–साथ खेलने जाया करते थे। जबकि पलक जब भी गाँव में भाई के साथ बाहर जाकर खेलने की बात करती थी तो

दादी बिगड़ जाती और कहती '' अरे कुछ तो लड़कियों वाले गुण सीख। नहीं तो पूरी बिरादरी में नाक कट जाएगी। ''

माँ बचाव करती व कहती '' अरे माँ जी बड़ी होकर वह सब समझ जाएगी अभी वो 9 (नौ) वर्ष की बच्ची ही तो है।''

दादी बिगड़ जाती है '' अरे उसकी उम्र में तो हमारी शादी हो गयी थी। यह बच्ची कैसे है? और घर परिवार समाज के तौर तरीके कब सीखेगी? इसी की उम्र की जरीना है देखो कितने संस्कार वाली बच्ची है। घर के रीति–रिवाजों को समझती है। आस–पास के सभी लोग उसकी कितनी प्रशंसा करते है।''

दादी कहती '' अरे इशान तो लड़का है। तुम्हें दूसरे घर में जाना है। ऐसे बात व्यवहार रखोगी तो ससुराल में तुम्हारा वास कैसे होगा? वहाँ के रीति–रिवाज, परंपरा इस घर के जैसे हो यह कोई जरूरी है? फिर वहाँ कैसे ताल मेल बैठाओगी? इसीलिए घर परिवार की मान्यताओं के अनुरूप ही तुम्हें काम करना चाहिए।'' पलक नाराज होकर भुन भुनाते हुए रह जाती।

चर्चा के बिंदु (Points of discussion) :

- पलक के परिवार में उसकी दादी और माँ समाज के कैसे सोच को दर्शाती है?
- पलक की मौसी समाज के किन विचारों का प्रतिवादन करती हैं, क्या आप उन विचारों से सहमत हैं? तर्कपूर्ण विवेचना करें।

क्रियाकलाप (Activity) :

- अपने विद्यालयों में पढ़ने वाले किन्हीं पाँच बच्चों का अध्ययन करें जिनकी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक पारिवारिक और भाषाई परिवेश अलग–अलग हों। पता लगायें कि इस अन्तर का उनके समाजीकरण पर क्या प्रभाव पड़ता है।

विषय वस्तु की समझ (Understanding of content)

ऊपर वर्णित विभिन्न दृष्टांतों के आधार पर यह देखने को मिलताहै कि किसी भी बच्चे का समाजीकरण उसके घर, परिवार, आस, पड़ोस, समुदाय, जाति एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में ही होता है। पहले दृष्टांत में आपने देखा कि कैसे चुन्नू की मामी चुन्नू से अपने बच्चों की तुलना में किसी खास व्यवहार की अपेक्षा करती है या दूसरे शब्दों में धनी और गरीब परिवार के बच्चों के समाजीकरण को उनका परिवारिक परिवेश अलग–अलग ढंग से परिभाषित करता है। बाद वाले दष्टांत में पलक की दादी के माध्यम से यहाँ स्पष्ट किया गया है की बच्चों के समाजिक मूल्यों का निर्धारण भी समाज के, परिवार के लोग अपनी–अपनी मान्यताओं के आधार पर करते हैं, यह बच्चों के लिंग, जाति, जाति, धर्म व ग्रामीण और शहरी परिवेश में पले बढ़े पारिवारिक और सामाजिक मान्यताओं से ही होता है। अर्थात माता–पिता, परिवार, पड़ोस एवं समुदाय धर्म, संस्कृति, लिंग (जेंडर), जाति आदि से संबंधित प्राथमिक व्यवहारों की नींव परिवार में ही पड़ती है।

अब समाजीकरण के इन कारकों को चरणों के आधार पर समझने की कोशिश करते हैं। यदि देखें तो समाजीकरण के दो चरण माने गए हैं – **प्राथमिक समाजीकरण और परवर्ती समाजीकरण।** इन दोनों प्रकार के समाजीकरण को उनके कारकों के आधार पर समझा जा सकता है। सामान्य अर्थों में यदि समझा जाए तो परिवारजनों के माध्यम से बच्चे के जन्म से ही समाजीकरण की जो अनौपचारिक प्रक्रिया शुरू हो जाती है, उसे प्राथमिक समाजीकरण के रूप में समझा जा सकता है। इसके अंतर्गत बच्चे अपने सांस्कृतिक मूल्य, व्यवहार,

सामाजिक मान्यताओं के रूप में समझा जा सकता है। इसके अंतर्गत बच्चे अपने सांस्कृतिक मूल्य, व्यवहार, सामाजिक मान्यताओं, आदि को सीखते हैं। बचपन के शुरूआती सालों के संदर्भ में प्राथमिक समाजीकरण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। बच्चों का प्राथमिक समाजीकरण माता–पिता, परिवार, पड़ोस एवं समुदाय के द्वारा होता है जबकि द्वितीयक समाजीकरण में विद्यालय एवं संचार माध्यम प्रमुख भूमिका निभाते हैं। माता को बच्चों का प्रथम गुरू कहा जाता है। बच्चों के प्रारंभिक समाजीकरण में माता की भूमिका सबसे प्रमुख होती है। यहाँ यह जानना जरूरी है कि माता–पिता के आपसी संबंध न केवल बच्चों के भावात्मक विकास को प्रभावित करते हैं बल्कि सामाजिक विकास को भी प्रभावित करते हैं। बच्चों में सामाजिक गुणों के विकास में परिवार के सदस्यों द्वारा बच्चे के साथ बिताए गए समय एवं परिवार के सदस्यों के आपसी संबंध की बहुत बड़ी भूमिका होती है। संयुक्त परिवार में बच्चों के समाजीकरण में माता–पिता, दादा–दादी, चाचा–चाची की भूमिका अहम होती है। लेकिन संयुक्त परिवार धीरे–धीरे टूटने लगे हैं और धीरे–धीरे एकल परिवारों की संख्या बढ़ने लगी हैं। परिवार के स्वरूप का बच्चों के समाजीकरण पर अलग–अलग प्रभाव होता है। संयुक्त परिवार के बच्चे अक्सर सहयोगी एवं सहिष्णु प्रवृत्ति के होते हैं जबकि एकल परिवार के बच्चे ज्यादा स्वतंत्र होते हैं। परिवार में बच्चों की संख्या भी बच्चों की समाजिकता को प्रभावित करती है। एक या दो बच्चे का माता–पिता अच्छी तरह से लालन–पालन कर बेहतर शिक्षा दे सकते जो न केवल बच्चों के अच्छे गुणों को विकास करता है बल्कि बेहतर जीवन के लिए भी प्रेरित करता है। धर्म, संस्कृति, लिंग (जेंडर) जाति से संबंधित प्राथमिक व्यवहारों की नींव परिवार में ही पड़ती है। छोटी उम्र में ही परिवार के सदस्य दंड, पुरस्कार तथा पुनर्बलन का उपयोग कर पारिवारिक मूल्यों एवं समाज के वांछित व्यवहारों को आकार देते रहते हैं। बड़ों के प्रति आदर, चोरी न करना, लड़ाई–झगड़ा न करना आदि स्वीकृत सामाजिक व्यवहार के विकास में परिवार की प्रमुख भूमिका होती है।

बच्चों के प्राथमिक समाजीकरण में आस–पड़ोस की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती हैं। परिवार के बाद बच्चे का पहला कदम पड़ोस ही होता है। एक बच्चा अपने परिवार के बाद समाज की जिस इकाई से सबसे पहले अन्तःक्रिया करता है वह पड़ोस ही है। पड़ोस की संरचना अलग–अलग हो सकती है। कहीं एक ही जाति के लोग पड़ोसी हो सकते हैं तो कहीं एक से अधिक जाति एवं धर्म के लोग पड़ोसी हो सकते है। शहरी क्षेत्रों में पड़ोस जाति या धर्म की बजाय लगभग समान आर्थिक परिस्थितियों के लोगों का समूह होता है। इन सभी परिस्थितियों में बच्चों का समाजीकरण अलग–अलग होता है।

परिवार की संस्कृति एवं रीति–रिवाजों के बाद वह सबसे ज्यादा अपने पास–पड़ोस की संस्कृति से प्रभावित होता है। बच्चे के पहले मित्र समूह का निर्माण भी पड़ोस में ही होता है। गाँवों में पड़ोसियों के संबंध नातेदारी के रूप में होते है जहाँ बच्चे को पड़ोसी को भी भैया, दीदी, चाचा, दादी कहना सिखाया जाता है। इस तरह का समाजीकरण बच्चों को पड़ोस के साथ पारिवारिक रूप से एकीकृत करता है। पड़ोस भी उस बच्चे को अपने बच्चे की तरह देखता है। यह बच्चों में भाई–चारा एवं सहयोग की भावना का विकास करता है। शहरी क्षेत्रों में पड़ोस के साथ संबंध जान–पहचान एवं आमंत्रित कार्यक्रमों में उपस्थिति तक सीमित रहता है। इसलिए संकट की स्थिति में उस प्रकार से पड़ोसी का सहयोग नहीं मिल पाता जैसा कि ग्रामीण क्षेत्रों में होता है। पड़ोस, बच्चों में बड़ों के प्रति आदर का भाव, धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों के सहभगिता, एक जुटता, सहयोग जैसे गुणों का विकास करता है। साथ ही यह बच्चों से सामाजिक संबंधों का विस्तार करता है।

बच्चे के समाजीकरण में परिवार, मित्र–समूह, समुदाय, विद्यालय, संचार माध्यम, राजनीति एवं धर्म प्रमुख भूमिका निभाते है। परिवार बच्चे के समाजीकरण की प्राथमिक इकाई है। इसी में बच्चों के समाजीकरण का प्रारंभिक चरण चलता है। धर्म, संस्कृति, लिंग, जाति से संबंधित प्राथमिक व्यवहारों की नींव परिवार में ही पड़ती है। छोटी उम्र में ही परिवार दंड, पुरस्कार तथा पुनर्बलनों का उपयोग कर परिवार एवं समाज के वांछित व्यवहारों को आकार देता हैं एवं अपने मित्रों से बहुत–सारी आदतें सीखते हैं। बच्चों का पहनावा, खान–पान, खेल–कूद

एवं जीवन शैली पर मित्र समूह का बहुत बड़ा प्रभाव होता है। समुदाय हमेशा यह चाहता है कि बच्चा, समाज–स्वीकृत व्यवहार ही करे। उनके व्यवहार पर न केवल परिवार का बल्कि अन्य लोगों की भी निगाहें होती है। बच्चों की आदतों में सुधार के लिए समुदाय कई बार परिवार पर दबाव भी डालता है।

समुदाय शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है। एक अर्थ में समुदाय किसी स्थान विशेष में रहने वाले ऐसे लोगों के समूह से है जिनका समान ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत हो एवं समान सरोकार हो। दूसरे अर्थ में एक पूरे शहर, राज्य या देश को भी समुदाय माना जाता है। यहाँ हम समुदाय का प्रयोग पहले अर्थ में देख रहे हैं। इस प्रकार के समुदाय का निर्माण एक जाति, एक धर्म या अनेक जातियाँ एवं अनेक धर्मों से होता हैं इन सभी परिस्थितियों में बच्चों का समाजीकरण अलग–अलग होगा।

एक ही जाति द्वारा निर्मित समुदाय में उस जाति विशेष की परम्पराएँ, रीति–रिवाज बच्चों को सिखाया जाता है। जहाँ एक से अधिक जातियों द्वारा निर्मित समुदाय है वहाँ बच्चे की अपनी जाति विशेष की परम्पराओं एवं रीति–रिवाजों के अलावा अन्तर्जातीय संबंधों के बारे में भी सीखने का अवसर मिलता है। इसी प्रकार एक ही धर्म द्वारा निर्मित समुदाय में बच्चे के अपने धर्म से संबंधित रीति–रिवाजों, कर्मकाण्डों एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अलावा दूसरे धर्मों से समानता व भिन्नताओं को भी सीखने का अवसर मिलता है।

इसके साथ ही, बच्चे का सामना जब विभिन्न सामाजिक संस्थाओं जैसे–विद्यालय, पाठ्यचर्या, राज्य आदि से होता है तो समाजीकरण की औपचारिक प्रक्रिया शुरू होती है, जिसे परवर्ती समाजीकरण कहते हैं। यह प्रक्रिया बाल्यावस्था के उत्तवर्ती काल से शुरू होती है जब बच्चे का समय परिवार के अलावा समाज के किसी अन्य संस्था जैसे विद्यालय में व्यतीत होना आरंभ होता है। समाजीकरण की यह प्रक्रिया आगे निरन्तर चलती रहती है।

परवर्ती समाजीकरण के संदर्भ में विद्यालय की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। विद्यालय समाजीकरण में समाज एवं राज्य के बीच कड़ी की भूमिका निभाता हैं। विद्यालय के पास ऐसे अनेकों उपकरण होते हैं जिनके द्वारा वह बच्चों का समाजीकरण करता है। उसमें से कुछ उदाहरण है – पाठ्यचर्या, शिक्षण–पद्धति, शिक्षक की भूमिका, पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ आदि। विद्यालय में समाजीकरण की विशेष चर्चा तीसरी इकाई में की गई है।

इसके साथ ही, आज संचार माध्यम भी समाजीकरण के एक प्रमुख कारक के रूप में उभरा है। कार्टून चैनलों की भरमार एवं मोबाइल फोन की उपलब्धता ने बच्चों की समाजिकता को प्रभावित किया है। ये संचार माध्यम धीरे–धीरे बच्चों को परिवार एवं समुदाय से दूर करते चले जा रहे हैं। कई बार बच्चों में द्वन्द्व की स्थिति भी पैदा करते हैं जब बच्चे संचार माध्यमों का समय परिवार के अलावा समाज के किसी अन्य संस्था जैसे विद्यालय में व्यतीत होना आरम्भ होता है। समाजीकरण की यह प्रक्रिया आगे निरन्तर चलती रहती है।

परवर्ती समाजीकरण के संदर्भ में विद्यालय की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। विद्यालय समाजीकरण में समाज एवं राज्य के बीच कड़ी की भूमिका निभाता है। विद्यालय के पास ऐसे अनेकों उपकरण होते हैं जिनके द्वारा वह बच्चों का समाजीकरण करता है। उसमें से कुछ उपकरण है – पाठ्यचर्या, शिक्षा–पद्धति, शिक्षक की भूमिका, पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ आदि। विद्यालय में समाजीकरण की विशेष चर्चा इस इकाई में की गई है।

इसके साथ ही, आज संचार माध्यम भी समाजीकरण के एक प्रमुख कारक के रूप में उभरा है। कार्टून चैनलों की भरमार एवं मोबाइल फोन की उपलब्धता ने बच्चों की समाजिकता को प्रभावित किया है। ये संचार माध यम धीरे–धीरे बच्चों को परिवार एवं समुदाय से दूर करते चले जा रहे हैं। कई बार बच्चों में द्वन्द्व की स्थिति भी पैदा करते हैं जब बच्चे संचार माध्यमों पर दिखाए गए दृश्यों को अपने परिवेश के संदर्भ में देखते हैं। राज्य भी

परवर्ती समाजीकरण का एक सशक्त माध्यम है जो अपने नीतियों, नियम–कानूनों और सेवाओं के माध्यम से बच्चों के जीवन में हस्तक्षेप करता है। इसके बारे में आप तृतीय सत्र में विशेष अध्ययन करेंगे।

क्रियाकलाप (Activity) :

- अपने आस–पास के किसी परिवार या अपने परिवार में बच्चों के समाजीकरण की जो प्रक्रिया अपनायी जाती है, उसका अवलोकन करके विश्लेषण करें।

2.4 सारांश (Summary) :

- मानव मूलतः एक सामाजिक–सांस्कृतिक प्राणी है।
- बच्चों के बचपन की संकल्पना को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना भी अति महत्वपूर्ण से देखना भी अति महत्वपूर्ण है।
- बच्चों के सामाजिक, सांस्कृतिक, जातीय, धार्मिक एवं भौगोलिक विशेषताओं के कारण उनके आचरण, व्यवहार, रहन–सहन, भाषा एवं रीतिरिवाजों में विविधता दिखाई देती है।
- समाज में अपने आंतरिक जीवन मूल्यों और मान्यताओं को सिखाने के लिए एक सचेत व्यवस्था है। इन्हीं व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं में बच्चे बड़े होते हैं।
- समाजीकरण बच्चों को सामाजिक नियमों एवं परम्पराओं को सिखाता है।
- बच्चों का समाजीकरण प्राथमिक एवं परवर्ती चरणों में होता है।
- आज संचार माध्यम भी समाजीकरण के एक प्रमुख कारक के रूप में उभरा है।

2.5 अभ्यास के प्रश्न

1. क्या हर समाज में बच्चे तथा उनके बचपन की एक जैसी अवधारणा है? उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करें।
2. बच्चे तथा बचपन की सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा का विश्लेषण करें।
3. बच्चे की अवधारणा का ऐतिहासिक विकास कैसे हुआ है, उसके प्रमुख बिन्दुओं की चर्चा करें।
4. क्या आप सहमत हैं कि बचपन की अवधारणा एक आधुनिक अवधारणा है।
5. समाजीकरण से क्या आशय है? कुछ वास्तविक उदाहरणों के माध्यम से समझाएं।
6. बच्चों के समाजीकरण के विभिन्न चरणों का विश्लेषण करें। अपने अनुभव से कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत करें।
7. बच्चों के समाजीकरण के प्रमुख कारकों की भूमिका का विश्लेषण करें।

●●●

इकाई – 3

शिक्षा, विद्यालय तथा समाज : अन्तर संबंधी पड़ताल

(Education School and Society : an enquiry of the interrelationship)

3.0 प्रस्तावना (Introduction)

लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली में व्यक्ति–व्यक्ति में जाति, धर्म एवं संस्कृति आदि किसी भी आधार पर भेद नहीं करता। इस दृष्टि से भारत का प्रत्येक व्यक्ति भारतीय समाज का अंग है। शिक्षा के संदर्भ में भारतीय समाज का अर्थ भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या से होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोकतन्त्रीय भारत में भारतीय समाज का अर्थ उसकी सम्पूर्ण जनसंख्या के समूह से है।

भारतीय समाज विविधताओं का योग है। यहाँ अनेक धर्म, जाति संस्कृति एवं वर्गों के लोग निवास करते हैं। राजनैतिक दृष्टि से यह एक लोकतंत्रीय समाज है जिसकी गणना विकासशील देशों में की जाती है। विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र मे ंप्रगति के फलस्वरूप भारत में वैज्ञानिक जागरूकता का विकास हुआ है। यही वर्तमान भारतीय समाज की विशेषताएँ हैं।

समाज के विद्यालय के प्रति कुछ आवश्यक कर्तव्य हैं। समाज का प्रमुख कार्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करने में सहायक बनने का है। समाज के इस कार्य हेतु विद्यालय एक साधन के रूप में कार्य करता है। विद्यालय की समाज से अनेक अपेक्षाएँ होती है। समाज इन अपेक्षाओं को पूर्ण करके नागरिकों के सर्वांगीण विकास में पूर्ण रूप से तथा सक्रिय रूप से सहयोग देता है।

समाज और विद्यालय का आपस में घनिष्ठ संबंध है। इन दोनों के मध्य इतना घनिष्ठ संबंध है कि विद्यालय को समाज का लघु रूप कहा जाता है।

भारतीय संस्कृति धर्म एवं दर्शन पर आधारित है। भारतीय संस्कृति चार वर्ण (ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र), चार आश्रम (ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास), चार पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष), चार साधन मार्ग (ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग), पंचमहाव्रत (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रम्हचर्य), पाँच नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधान) की संस्कृति है। भारत में अनेक विदेशी लोग आए जिनमें मुगल, फ्रांसीसी, अंग्रेज आदि शामिल है। इन सभी लोगों की सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ा।

संस्कृति किसी समाज की पहचान होती है। व्यक्ति जिस समाज के बीच पैदा होता है उसी संस्कृति को अपनाता है। जब मनुष्य केवल अपनी संस्कृति के श्रेष्ठ मानता है और दूसरी संस्कृति को हेय समझता है तो वर्ग संघर्ष शुरू होता है। भारत ने सभी संस्कृतियों को अपनाया है अतः यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण पहचान है।

3.1 उद्देश्य (Objective)

1. विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक विविधता असमानता तथा वंचना की अंतर संबंधी पड़ताल कर सकेंगे।
2. शिक्षा के सामाजीकरण में सामाजिक इकाईयों की भागीदारी। भूमिका को समझेंगे।
3. शाला व समुदाय के बीच अर्न्तसंबंध के सकारात्मक प्रभाव से परिचित होंगे।

4. सामाजिक बदलाव के अनुरूप शैक्षिक बदलाव की आवश्यकता को समझ सकेंगे।

3.2 विविधता, असमानता तथा वंचना : अवधारणा तथा शैक्षिक संदर्भ (Diversity Inequality and underprivileged : An enquiry of the interrelationship)

हमारी सम्पूर्ण प्रकृति तमाम विविधताओं से भरी पड़ी है। भिन्न–भिन्न प्रकार के जीवों, पेड़–पौधों, नदी नालों, स्थलाकृतियों आदि के रूप में यह विविधता ही प्रकृति का सौंदर्य है। हमारा समाज भी भिन्न–भिन्न रंग, रूप, क्षमता, प्रकृति भाषा, वेशभूषा, खान–पान, आचार–व्यवहार, आस्था–मान्यता, धर्म–संप्रदाय आदि से संबंधित विविध व्यक्तियों व समुदायों से समृद्ध है। यही विविधता हमारे समाज की खूबसूरती है। हमारे समाज में विद्यमान विभिन्न समुदाय व लोगों की क्षमताएँ व खासियत अलग–अलग है। एक लोकतांत्रिक सत्ता व व्यवस्था की यह भूमिका होनी चाहिए कि इन विविध जनों व समुदायों के विकास व एक बेहतर जीवन जीने की व्यवस्थाओं को बिना भेद–भाव के सुलभ कराए। विकास हेतु आवश्यक सुविधाओं से वंचित होने तथा इस असमानता के व्यवहार के कारण व्यक्ति व समुदाय के अंदर वंचन का भाव जन्म लेता है और वह स्थिति जिसमें वह वंचित व्यक्ति जीता है 'वंचना' के रूप में जाना जाता है। सूक्ष्मता से देखा जए तो वंचन, व्यक्ति तथा समुदाय दोनों के स्तर पर दो प्रकार से हो सकता है। व्यक्ति तथा समूह के अन्दर वंचन का भाव कारण से भी हो सकता है। कि वह जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष कर रहा हो और इस संघर्ष के बावजूद भी उनसे वंचित हो या शारीरिक तथा मानसिक रूप से इतना अक्षम हो कि सामान्य सुविधाओं के उपलब्ध रहने के बावजूद भी उसका उपयोग न कर पाए। इस प्रकार के वंचन को वास्तविक वंचन (Absolute Deprivation) कहा जा सकता है। वंचन का दूसरा भाव इस कारण से भी उत्पन्न हो सकता है कि व्यक्ति या समूह किसी दूसरे व्यक्ति या समूह की अपेक्षा भौतिक संसाधनों, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अन्य किसी भी कारण से अपने आपको वंचित महसूस कर रहा हो। वंचन के इस भाव को सापेक्षिक वंचन (Relative Deprivation) कहा जाता है।

अब आइए विविधता, असमानता तथा वंचना की शैक्षिक सन्दर्भों में पडताल करें। हमारे देश में विविधताओं की भरमार है। यह विविधता प्रकृति के साथ–साथ निवास कर रहे लोगों में भी ज्यादा है। कई मान्यताओं, विश्वासों, लोक–परम्पराओं, पद्धतियों, रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, तथा अन्य कई सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराओं वाले लोग इस देश में निवास करते हैं। शिक्षा के संस्थानों में मौजूद लोग भी इसी विविधता को धारण किए होते हैं। अतः हमें शिक्षायी वातावरण में अवश्य इन विविधताओं का सम्मान करना चाहिए। क्योंकि विविधता इस समाज की पूँजी है, इसका सौंदर्य है जिसको सँजोना शिक्षा का दायित्व होना चाहिए। आप अपने विद्यालय में निरंतर इस प्रकार की विविधताओं का अनुभव करते होंगे। कल्पना कीजिए कि दो भिन्न आर्थिक स्थिति, वेश–भूषा, खान–पान या लोक परम्परा वाले विद्यार्थियों में कोई शिक्षक भेद–भाव करना व असमान व्यवहार करना शुरू कर दे तो किस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होगी? क्या यह स्थिति किसी विद्यार्थी के विकास व उसके आत्म–संप्रत्यय के निर्माण को प्रभावित नहीं करेगी? आपका उत्तर निश्चित ही हाँ होगा। आप संभवतः यह उत्तर देंगे कि असमान व भेद–भाव पूर्ण व्यवहार से विद्यार्थियों के अंदर वंचना का भाव आएगा, तथा यह भाव अवश्य ही उनके विकास को प्रभावित करेगा। संभवतः उन विद्यार्थियों में तंत्र के खिलाफ विद्वेष पैदा होगा जो आगे चलकर उनके व्यक्तित्व की प्रकृति को निर्धारित करेगा। अतः एक शिक्षक का दायित्व बनता है कि वह एक ऐसे शिक्षायी माहौल का निर्माण करे जिसमें विविधताओं का सम्मान हो, किसी भी प्रकार की असमानता का व्यवहार न हो तथा एक समावेशी वातावरण में बच्चों को विकसने का अवसर मिले।

3.2.1 शिक्षा का सामाजिक संदर्भ (Social context of education)

आजाद भारत के पचास सालों में शिक्षा का ऐतिहासिक चरित्र क्या रहा है? मूलतः समाज की विषमतामूलक संरचना ही शिक्षा–प्रणाली में प्रतिबिम्बित होती है। समाज का शक्तिसंपन्न तबका राज्य सत्ता पर

काबिज रहा है और राज सत्ता शिक्षा प्रणाली को नियंत्रित करती है। सामान्यतः राज सत्ता वंचित वर्ग में शिक्षा की पहुंच को लेकर चिंता व्यक्त करती रहती है और शिक्षा के व्यापक प्रसार का संकल्प शैक्षिक संस्थाओं/संस्थानों तक उसी की पहुंच होती है। गरीब और वंचित तबके शिक्षा के आंशिक लाभ ही उठा पाते हैं। क्योंकि शिक्षा–प्रणाली ऐसी है कि वे या तो उसके दायरे से बाहर हो जाते हैं अथवा बाहर कर दिए जाते है। यही नहीं वे स्वयं को अक्षम और हीनतर स्वीकार कर लेते हैं। तमाम अवरोधों को पार करके जो लोग 'सफलता' अर्जित कर लेते हैं उन्हें तंत्र द्वारा अपना लिया जाता है और वे वहां 'खप' जाते हैं। वे एक प्रकार से इस प्रणाली को वैधता भी प्रदान करते है और व्यापक असंतोष को नहीं पनपने देते।

लेकिन शिक्षा अपनी मूल प्रकृति में एक मुक्ति–दायिनी शक्ति भी है। शिक्षा–प्रक्रिया के एक बार सपंर्क में आने के बाद व्यक्ति पहले जैसा नहीं रहता। जो लोग इस असंतोष को संगठित करने लगते हैं और तब समाज की विषम संरचना तथा राज सत्ता के समक्ष चुनौती खड़ी हो जाती है। ऐसे में, सत्ता यथास्थिति कायम रखने के लिए पुनः शिक्षा–प्रणाली में हस्तक्षेप करती है।

तो क्या हम यह मान लें कि स्थापित शिक्षा प्रणाली को सर्वसाधारण का समर्थन प्राप्त है? यदि ऐसा होता तो फिर सहभागिता को लेकर इतना हो–हल्ला ही नहीं होता। सभी लोग खुशी–खुशी अपने बच्चों को स्कूल भेजते। तब बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों को स्कूल भेजने के लिए माँ–बाप को राजी करने के प्रयत्न की जरूरत नहीं होती। ये डर भी नहीं होता कि वे बच्चों से बीच में ही स्कूल छुड़ा लेंगे। फिर शायद स्कूल ठीकठाक चल रहा है या नहीं इसके लिए भी अतिरिक्त चिंता करने की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन हम देखते हैं कि ऐसा नहीं है और बड़े पैमाने पर नहीं है। असल में स्थापित शिक्षा प्रणाली के समर्थन अथवा खिलाफ का तो मुद्दा ही नहीं है– लोगों के लिए, वह तो बस स्थापित है और रहेंगी। सर्वसाधारण की नजर में यह शिक्षा प्रणाली बहुत दृढ़ता से स्थापित है और शिक्षा में जन सहभागिता के सभी रूप इस शिक्षा–तंत्र की सापेक्षता में उभरते हैं।

शिक्षा प्रणाली के प्रतियोगी चरित्र ने इसमें ठीक वैसे ही स्तर–भेद खड़े कर दिए हैं जैसे कि वे सामाजिक संरचना में विद्यमान हैं। समाज के जिन वर्गों और समुदायों ने अपनी बदहाली को लगभग नियति की ही तरह स्वीकार कर लिया है, वही वर्ग अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति उदासीन है। यहाँ हम शिक्षा सुविधाओं की अनुपलब्धता को भी इन वर्ग–समुदायों की स्थिति से ही जोड़ना चाहेंगे। यदि यहां स्कूल उपलब्ध नहीं है या उसमें नियुक्त शिक्षक नियमित नहीं हैं तो यह भी इन वर्ग–समुदायों की हताशा अथवा इनकी आवाज की क्षीणता को ही द्योतित करता है। निश्चय ही, यहां शैक्षिक उपक्रमों में लोगों की सहभागिता हासिल करने के लिए उन्हें झकझोरने और उनमें आकांक्षाओं को जगाने की जरूरत सबसे पहले है।

इसी परिप्रेक्षय में बालिका शिक्षा को देखा जा सकता है। जहां महिलाओं का कार्य और संपर्क क्षेत्र समुदाय द्वारा सीमित आंका हुआ है, वहां बालिका शिक्षा को लेकर उदासीनता पाई जाती है। वंचित समुदायों में बालिकाओं की ही नहीं बल्कि सभी बच्चों की शिक्षा बाहरी प्रयत्नों और उत्प्रेरणों के बावजूद 'साक्षरता' में रिड्यूस होकर रह जाती है। क्योंकि वास्तव में, शिक्षा से इससे अधिक अपेक्षा इन वर्ग समुदायों की होती ही नहीं।

प्राथमिक स्तर पर ही तीन तरह के शिक्षा भेदों में हम जन सहभागिता की भिन्न स्थिति पाते हैं। सरकार द्वारा संचालित शिक्षा तंत्र में लोगों की सहभागिता सामान्यतः औपचारिक मात्र है। स्थानीय समुदाय द्वारा किसी भी सरकारी स्कूल या उसके शिक्षक को प्रभावित कर पाना आसान नहीं है। तब प्राथमिक को उच्च प्राथमिक में प्रोन्नत करवा सकते है और अवांछित शिक्षक का तबादला या वांछित की नियुक्ति करा सकते है। कहने की आवश्यकता नहीं कि देश की इस वृहद्काय प्रणाली को यह दृढ़ता राज्य सत्ता के संरक्षण के कारण ही संभव हुई है। राज्य सत्ता इस प्रणाली की रीति–नीति तय करती है। विभिन्न अपीलों और विशेषज्ञ समितियों के जरिए यह सब किया जाता है। पाठ्यक्रम निर्माण और परीक्षाएं आयोजित करने के लिए परिषद् और बोर्ड है। इस तंत्र

में स्कूल से लेकर राज्य सत्ता तक सार्वजनिक बहस और जन सहभागिता के आह्वान के बावजूद वास्तव में सहभागिता जैसा कुछ होता नहीं है। इस शिक्षा तंत्र को आज तक कोई प्रबल चुनौती दे पाना संभव नहीं हुआ।

अब जरा निजी क्षेत्र के स्कूली–तंत्र का जायजा लें। यहां समुदाय के सहभागिता जैसी कोई चीज नहीं है। अलबत्ता अभिभावकों की सहभागिता के लिए कुछ अवकाश है। अभिभावकों पर अपनी पकड़ बनाए रखने की सहभागिता के लिए कुछ अवकाश है। अभिभावकों पर अपनी पकड़ बनाए रखने के लिए अभिभावक समिति और अभिभावक दिवस (पेरेन्टस डे) हैं। उन्हें रोजमर्रा तौर पर बताया जाता है कि बच्चे को होमवर्क में उन्हें क्या मदद करनी है। इस स्कूल द्वारा यदि अभिभावक को यह सलाह दी जाती है कि बच्चे को 'ट्यूटर' की आवश्यकता है तो अभिभावक उसे स्वीकार कर लेते है। असल में, यहाँ स्कूल प्रबंधन और अभिभावकों के बीच दोतरफा सहमति है कि बच्चे को प्रतियोगिता की आगामी दौड़ के लिए इतना समर्थ बनान है कि वह समाज के शिखर की तरफ अपने लिए कोई स्थान निर्धारित कर सके। निजी क्षेत्र की प्रणाली सरकार द्वारा संचालित प्रणाली की कमजोरियों का लाभ उठाती है। चूंकि निजी क्षेत्र के स्कूलों से निकले बच्चे कैरियर की दौड़ में आगे जा रहे हैं, इसलिए समाज का सम्पन्न तबका इधर उन्मुख है। यह उन्मुखीकरण जितना अधिक बढ़ता है, निजी क्षेत्र का वर्चस्व उतना ही बढ़ जाता है और अभिभावकों की हैसियत उतनी ही घट जाती है।

3.2.2 शिक्षा का सामाजिक सशक्तिकरण (Social empowerment of education)

देश की श्रेणीबद्ध विषय सामाजिक संरचना को जिस तरह चुनौती दे पाना मुश्किल है, उसी तरह इस विषय और पिरामिड रूपी शिक्षा–प्रणाली को बदलना जन साधारण के लिए कल्पना से परे है। इस स्थिति ने शिक्षा का 'औपनिवेशिक चरित्र' बनाए रखा है। इस दशक में सामाजिक न्याय के लिए उभरे दलितों, आदिवासियों और महिलाओं के संघर्षों ने शिक्षा में जन–सहभागिता को सबसे प्रभावशाली रूप में बढ़ावा दिया है। किंतु शिक्षा राजनैतिक हल्कों में भले ही चर्चा में है, विदेशी वित्त–प्रवाह भी इस क्षेत्र में बढ़ा है लेकिन अभी तक 'सोशल एजेंडा' में शामिल नहीं है। प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने के लिए संसद में विधेयक का मुद्दा हो या लोक व्यापीकरण की चिंताएं–ये प्रयास विडंबनाजनक रूप से अभी तक शिक्षाविदों और उच्च शिक्षितों तक ही सीमित हैं। हालांकि यह अच्छा संकेत है कि शिक्षा के लिए 'सिटीजन्स चार्टर' बने हैं किन्तु उन्हें कथित 'जनसम्मत शिक्षाक्रमों' से अलगाना होगा। सही मायनों में जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के बिना शिक्षा में जन–सहभागिता संभव नहीं है और इसके लिए शिक्षा की एक जनतांत्रिक प्रणाली–वैकल्पिक स्वरूप को जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत करना होगा जो शिक्षा के लक्ष्य को पुनर्परिभाषित करे, उसकी पद्धति और विषयवस्तु की पुनर्रचना करे। जाहिर है कि शिक्षा में जनसहभागिता का प्रश्न इस दिशा में विमर्श की शुरूआत है।

सभी विकासशील देशों में शिक्षा से सामाजिक रूपांतरण और कमजोर तथा वंचित तबकों के सशक्तिकरण का ध्येय जुड़ा है। शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि इससे समाज की जड़ता टूटेगी और गत्यात्मकता को बढ़ावा मिलेगा। स्वतंत्र भारत के पांच दशकों में शिक्षा की उपलब्धियों पर नजर डालें तो सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका निराश करती है। लेकिन इसके लिए अकेले शिक्षा को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। सशक्तिकरण केवल शिक्षा के भरोसे संभव भी नहीं हो सकता, शिक्षा की इसमें एक सीमित भूमिका है। बेशक, यह सही है कि सशक्तिकरण की व्यापक और बहुआयामी प्रक्रिया में शिक्षा की भूमिका काफी संभावनाशील है।

भारत में दलित, आदिवासियों और स्त्रियों की चिंतनीय दशा के मद्देनजर उन्नयन के अनेक कार्यक्रम तय किए गए। इनकी अपर्याप्तता और असफलताओं की शिकायतें होती रही है। देश में जनतंत्र की आधुनिक राजनीतिक प्रणाली को अपनाया गया था जिसमें हर नागरिक की महत्वपूर्ण भूमिका निर्धारित है, किन्तु कोई भी नागरिक इस भूमिका को तभी अंजाम दे सकता है, जबकि वह इसमें समर्थ हो। व्यक्ति को यह सामर्थ्य प्रदान करने की अपेक्षा शिक्षा से की गई जो कि उचित ही थी। लेकिन खुद शिक्षा को लेकर राज्य सत्ता का रवैया

उदासीनता का रहा है। शिक्षा से सशक्तिकरण से पहले शिक्षा की पहुंच का मुद्दा आता है। समाज के जिन कमजोर और वंचित तबकों को सशक्त करके मुख्यधारा में लाना है, क्या उन्हें शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध हैं? वहां उपलब्धता ही नहीं है तो फिर उनके संदर्भ में शिक्षा से सशक्तिकरण का मुद्दा ही बेमानी हो जाता है।

सशक्तिकरण के संदर्भ में दूसरा सवाल शिक्षा की गुणवत्ता का है। सशक्तिकरण की कोई एक स्थिर परिभाषा नहीं है, समाज–सापेक्ष है। जनतंत्र में सशक्तिकरण व्यक्ति की स्वातंत्र्य चेतना और सामाजिक न्याय से संबंध है। ऐसे में सशक्तिकरण राज्य सत्ता की दृढ़ संकल्प शक्ति, नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन और व्यापक सामाजिक अभियान की मांग करता है। एक उदाहरण से बात जरा स्पष्ट हो जाएगी। अभी तक शिक्षा के सीमित प्रसार के बावजूद, दलित–वंचित तबकों के जो स्त्री–पुरूष सामाजिक अंतरण कर पाए हैं, अधिकांशतः वह आरक्षण की सुविधा के कारण संभव हो सका है। सदियों से चली आ रही रूढ़ संरचना और आर्थिक विपन्नता के चलते किसी दलित परिवार के व्यक्ति के लिए सवर्ण सुविधासम्पन्न लोगों से होड़ लेना संभव नहीं हो सकता। यदि उसे बराबर लाना है तो अतिरिक्त मदद और उत्प्रेरण की आवश्यकता होगी। इसके लिए कुछ दूसरी एजेंसियां और तंत्र स्थापित करने होंगे। वंचित वर्गों के उभार में जनतांत्रिक शासन प्रणाली बहुत कारगर साबित हुई। किन्तु यह तभी संभव होता है जब जनतंत्र निचले पायदान तक पहुंचे। जनतंत्र महज एक शासन–प्रणाली नहीं है, यह जीवन प्रणाली है। जनतांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रसार में शिक्षा तभी प्रभावशाली भूमिका निभा सकती है, जब खुद शिक्षा तंत्र का जनतांत्रिकरण हो और शिक्षा की अन्तर्वस्तु में जनतांत्रिक मूल्यों का समावेश हो। भारत जैसे सामंती पृष्ठभूमि वाले देश में यह चेतना के उन्नयन का मामला है। यह शिक्षा के अभी तक चले आ रहे समाजीकरण कार्य को बढ़ावा देता है। शिक्षा सामाजिक रूपान्तरण में अहम् भूमिका निभाने लगती है।

वंचितों का सशक्तिकरण यथास्थिति को तो तोड़ता ही है, कुछ नए तनावों और संघर्षों को भी जन्म देता है। यदि वंचित तबके उभरते हैं तो वे अपनी खोई हुई जगह हासिल करना चाहते है। और यह वह जमीन है जहां से उन्हें बेदखल कर दिया गया है। इससे समाज के वर्चस्वशाली तबके में बैचैनी होती है। अभी तक स्थापित समाज–संरचना सवालों के घेरे में आती है। ऐसे में उन द्वंद्व और संघर्षों का क्या समाधान हो, यह ज्वलंत प्रश्न है। क्या शिक्षा इस दिशा में मददगार हो सकती है? बेशक, शिक्षा इसमें मदद कर सकती है। लेकिन यह मदद पुलिस अथवा अर्द्धसैनिक बलों जैसी मदद नहीं होगी। शिक्षा के माध्यम से सामाजिक गत्यात्मकता के सिद्धांत को प्रचारित किया जा सकता है। शिक्षा विभिन्न तबके के स्त्री–पुरूषों की अभी तक चली आ रही 'आत्मछवि' हमें बदलाव ला सकती है। शिक्षा सामान्यजनों में यह समझ निर्मित कर सकती है कि वंचितों को उनका हक मिलना चाहिए। जनतांत्रिक प्रक्रियाओं में प्रभावी हिस्सेदारी के लिए जरूरी समझ और कौशल शिक्षा के माध्यम से विकसित किए जा सकते है। यही नहीं, शिक्षा एक नई मूल्य–संरचना विकसित कर सकती है जिसमें परस्पर संवाद और संवेदनशीलता का आदर किया जाता हो।

विषयान्तर किए बिना हम फिर से मुद्दे पर आना चाहेंगे। यदि हम शिक्षा से सामाजिक रूपान्तरण और कमजोर व वंचित तबकों के सशक्तिकरण की अपेक्षा रखते हैं तो सर्वप्रथम शिक्षा की समाज के सबसे निचले पायदान तक पहुंच सुनिश्चित करनी होगी। शिक्षा का सार्वजनीकरण इस प्रकार पहली प्राथमिकता बन जाता है। लेकिन यह सार्वजनीकरण येन–केन–प्रकारेण किया हुआ नहीं होकर, शिक्षा तंत्र के व्यापक जनतांत्रिकरण के अन्तर्गत होना चाहिए।

यह कि शिक्षा के उद्देश्यों मे ंकमजोर वर्गों के सशक्तिकरण को शामिल करने से ही काम नहीं चलने वाला, बल्कि शिक्षा की समूची अन्तर्वस्तु में जनतांत्रिक प्रणालियों, मूल्यों और दृष्टिकोण को जगह देनी होगी। असल में, यह शिक्षा की गुणवत्ता से जुड़ा प्रश्न है। मसलन, शिक्षा की विषयवस्तु और पद्धति तो सशक्तिकरण करना होगा। इसी के साथ समाज का जो हिस्सा कमजोर नहीं है, उसे भी सामाजिक रूपान्तरण की इस प्रक्रिया से निरपेक्ष नहीं छोड़ा जा सकता। जनतंत्र में वैसे भी सिर्फ धर्मनिरपेक्षता के लिए जगह है। वंचितों के सशक्तिकरण

की सामाजिक स्वीकृति से ही स्थिति बदलने वाली नहीं है। इसके लिए सामाजिक सक्रियता जरूरी है। हम देखते हैं, जिन परिवारों ने पितृसत्तात्मक मूल्य–मान्यताओं को त्याग दिया है, वहां पुरूष–स्त्रियों के संबंध अधिक स्वस्थ और संवादमूलक है। एक समतामूलक समाज रचना के लिए सिर्फ वंचितों और पिछड़ों को ही नहीं बदलना है, दूसरों को भी उतना ही बदलना है।

3.2.3 समाज की रचना और स्वरूप (Creation and forms of society)

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अपने हितों की रक्षा और आवश्यकताओं की पूर्ति के ध्येय से मनुष्य एक–दूसरे के संपर्क में आता है। इस प्रकार अज्ञात रूप से वह समाज का निर्माण करता है। आवश्यकताओं के बढ़ने के साथ–साथ संबंधों के प्रकार और तद्नुसार समाज के आकार में वृद्धि होती जाती है।

विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा निर्मित समाज से उसके सभी सदस्य प्रभावित होते हैं। समाज की अपनी कुछ मान्यताएं होती है, जिनका निर्माण विभिन्न सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक हो जाता है। इन मान्यताओं का पालन प्रत्येक सदस्य के लिए अपने हित की पूर्ति और समाज के सुसंचालन हेतु आवश्यक हो जाता है। सदस्यों के हितों को दृष्टिगत करते हुए समाज–कल्याण संबंधी अनेक संस्थाओं, यथा–परिवार, मोहल्ला, विद्यालय, पंचायतों आदि का आविर्भाव होता है। फलतः समाज का आकार विस्तृत होता जाता है और नियंत्रण तथा सुसंचालन के ध्येय से सामाजिक नियमों में जटिलता, कठोरता एवं दृढ़ता आती है। जिसका पालन प्रत्येक सदस्य के लिए आवश्यक है। पालन न करने पर सदस्य सामाजिक दण्ड, यथा–निंदा, उपेक्षा आदि का भागी होता है।

समाज–रचना के सिद्धांतों के अनुसार समाज के आकार की सीमा का निर्धारण नहीं किया जा सकता। इसका निर्माण दो व्यक्तियों के सामाजिक संबंधों से प्रारम्भ होकर समग्र विश्व के सभी व्यक्तियों के सामाजिक संबंधों को समाहित करने की क्षमता रखता है। ज्यों–ज्यों इसका आकार बढ़ता जाता है, सामाजिक इकाइयों की संख्या में वृद्धि होती जाती है। प्रत्येक सदस्य सामाजिक आदर्शो, नियमों तथा मान्यताओं की पूर्ति करते हुए व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं रहता, चाहे वह समाज के किसी भी समुदाय अथवा इकाई से संबंधित हो।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि समाज के स्वरूप–निर्धारण संबंधी कोई एक निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती, परंतु यहाँ हमारा तात्पर्य उस जन–समुदाय से है, जो अपने सदस्यों के हितार्थ एक इकाई के रूप में संगठित होकर निर्धारित आदर्शों एवं मान्यताओं के अनुसार विभिन्न संस्थाओं के सहारे क्रियाशील रहता है। भौगोलिक आधार पर इसकी एक निश्चित सीमा और सामान्य संस्कृति है।

3.2.4 व्यक्ति और समाज का संबंध (Relation of people and society)

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर वह समाज का निर्माण करता है। दूसरे शब्दों में मनुष्य अपने को जीवित रखने तथा अपने विकास के लिए समाज का निर्माण करता है। समाज–विरोधी कार्य करने से वह डरता है। सामाजिक दण्डों को वह निर्विरोध स्वीकार करता है। सामाजिक नियमों के पालन में अपने बड़े से बड़े स्वार्थों एवं हितों का वह बलिदान कर देता है। अपने सदस्यों के प्रति समाज के भी उत्तरदायित्व है। प्रत्येक सदस्य के व्यक्तित्व के समुचित विकास का उत्तरदायित्व समाज पर है। ऐसे सामाजिक नियमों, प्रथाओं एवं रूढ़ियों में, जिनसे व्यक्तित्व के विकास में बाधा पड़ती हो, वांछित शिथिलता होनी चाहिए। सदस्यो ंको भी चाहिए कि समाज के विकास को ध्यान में रखते हुए उसकी मान्यताओं एवं नियमों का विकास करें। ऐसी प्रथाओं और रूढ़ियों का पालन जो विकास में बाधक हों, उसे त्यागना चाहिए।

समाज के विकास में उसके सभी सदस्यों के व्यक्तित्व का विकास निहित है। सभी सदस्यों के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए उपयुक्त अवसर देना समाज का कर्तव्य है। यदि समाज और उसके सदस्यों में

एक–दूसरे के विकास–संबंधी अच्छी भावनाएं विद्यमान रहेंगी तो समाज उत्तरोत्तर उन्नत होता जाएगा। उन्नत समाज भावी नागरिकों के लिए सर्वथा उपयोगी है। इस प्रकार सदस्यों के विकास पर समाज का विकास और समाज के विकसित रूप पर व्यक्ति का विकास आधारित है, क्योंकि समाज और व्यक्ति दोनों का अस्तित्व एक–दूसरे पर निर्भर है।

3.2.5 बालक का समाजीकरण (Socialization of child)

व्यक्ति को कुशल नागरिक बनाने का दायित्व उसके समाज पर है। समाज की विभिन्न संस्थाएं उसका समाजीकरण (Socialisation) करती है। आयु के अनुसार रोना, हंसना, चलना–फिरना आदि सीखने के साथ ही साथ वह समाज की विभिन्न इकाइयों, यथा–कुटुंब, विद्यालय, पुस्तकालय, क्लबों आदि के नियमों परम्पराओं तथा मान्यताओं से वह परिचित होता जाता है। स्वाभाविक रूप से वह सामाजिक नियंत्रणों को स्वीकार करता जाता है। सामाजिक दण्डों से वह भयभीत होता है। सामाजिक वातावरण (Social environment) से अपने को समायोजित (Adjust) करता है। अतः समाज की विभिन्न इकाइयों को जिन पर बालकों के समाजीकरण का भार है, ऐसा वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे उन्हें समुचित रूप से अपने विकास का अवसर मिल सके और वे कुशल नागरिक बन सकें।

3.2.6 समाज और विद्यालय (Society and school)

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि बालकों के समाजीकरण और उन्हें कुशल नागरिक बनाने में विद्यालयों का महत्वपूर्ण स्थान है। परंतु हमारे अनेक विद्यालयों के कृत्रिम वातावरण बालकों के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने के स्थान पर असमायोजन की जटिल समस्या उत्पन्न कर देते है। घर और विद्यालय के वातावरण का अन्तर विद्यार्थी को असमंजस में डाल देते हैं। फलतः बालकों का व्यक्तित्व अच्छी तरह विकसित नहीं हो पाता। अतः बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु विद्यालयों के वातावरण का समाज के वातावरण के अनुरूप होना आवश्यक है।

डीवी (Dewey) तथा अन्य कई शिक्षाशास्त्रियों का मत है कि विद्यालय, समाज की ऐसी इकाई है, जिससे समाज के प्रतिनिधित्व की आशा की जाती है। परन्तु हमारे देश के विद्यालयों एवं समाज के बीच विद्यमान वातावरण की असमानता विद्यालयों को कर्तव्यच्युत कर देती है। समाज एवं विद्यालयों को एक–दूसरे का पूरक होना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास–संबंधी जिन तत्वों का समाज में अभाव हो, उसकी पूर्ति विद्यालयों द्वारा होनी चाहिए।

विद्यालयों का समाज से निकटतम संबंध होना चाहिए। उसे समाज की समस्त आवश्यकताओं और गतिविधियों से परिचित होना चाहिए, जिससे वह सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप कुशल नागरिकों के प्रणयन में सफलता पा सके। विद्यार्थियों को सामाजिक समस्याओं के समाधान संबंधी आवश्यक शिक्षा प्रदान कर सके। विद्यालयों के कार्यक्रम का संगठन समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तद्नुकूल करना चाहिए। इस प्रकार विद्यालय विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर, कर्तव्य–परायण तथा समाज और विद्यालय के प्रति आस्थावान बनाने में सफल हो सकेगा।

समाज के विकास में विद्यालयों का सर्वाधित महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरे शब्दों में, कुशल नागरिकों के निर्माण का उत्तरदायित्व एकमात्र विद्यालयों पर ही है। अतः विद्यालयों और समाज के बीच विद्यमान व्यतिक्रमता को, जो सामाजिकता का भयंकर विष है, दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए विद्यालयों को अपने वातावरण की कृत्रिमता को समूल नष्ट करके समाज और उसके वातावरण के अत्यधिक निकट आने की आवश्यकता है। विद्यालयों को अभिभावकों की मांगो का समुचित आदर करना होगा तथा इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी होगी जो विद्यार्थियों के व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी हो सके।

समाज से निकटतम संबंध स्थापित करने और प्रभावित करने के लिए विद्यार्थियों के अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। एत्दर्थ विद्यालयों को सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करके अभिभावकों को आमंत्रित करना चाहिए। उनके समक्ष विद्यालय की कार्य–प्रणाली का विवरण प्रस्तुत करके विद्यालय और समाज में व्यतिक्रमता उत्पन्न करने वाली समस्याओं पर परामर्श करना चाहिए। इसी प्रकार अध्यापकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों के घर पर उनके अभिभावकों से मिलकर विद्यार्थी की सामाजिक तथा पारिवारिक स्थिति और समस्यओं का अध्ययन करें। इस प्रकार विद्यालयों को समाज के अत्यधिक निकट लाने और उन्हें समाज की महत्वपूर्ण अंतरंग संस्था का रूप प्रदान करने में सफलता प्राप्त कर सकेंगे क्योंकि समाज की मान्यताओं, सांस्कृतिक परंपराओं और उसकी दुर्बलताओं से परिचित होकर विद्यालयों को समाज के लिए अत्यधिक उपयोगी बना सकेंगे। विद्यालय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ हो सकेंगे।

समाज और विद्यालयों में निकटतम संपर्क स्थापित करने की दूसरी विधि विद्यालयों को सामाजिक जीवन के केन्द्र के रूप में स्थापित करने से संबंधित है। मन्तव्य की पूति हेतु विद्यालयों को चाहिए कि संबंधित समाज की संस्कृति के अनुकूल सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करें, जिसमें उन्हें समाज का सहयोग प्राप्त हो। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय त्योहारों तथा पर्वों का आयोजन विद्यालयों में होना चाहिए, जिसमें नागरिकों को भाग लेने का अवसर मिल सके। इस प्रकार नागरिकों में विद्यालयों के प्रति अपनत्व एवं श्रद्धा के भाव उदय होंगे और समाज तथा विद्यालयों के बीच की दूरी समाप्त हो जायेगी। गणतंत्र की सफलता के लिए देश के समस्त नागरिकों का साक्षर तथा शिक्षित होना आवश्यक है, जिससे वे अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों को भली–भांति समझ सकें। उनमें कर्तव्य–पालन की क्षमता और दृढ़ता उत्पन्न हो सके। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकें। इस मंतव्यों की पूर्ति के एकमात्र साधन विद्यालय है, जहां कोमल–मति बालकों के सामाजिक हित को दृष्टिगत करते हुए उपयुक्त शिक्षा दी जा सकती है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि सफलता प्राप्त करने के लिए विद्यालयों को समाज के अत्यधिक निकट आकर उसकी अतरंग संस्था के रूप में कार्य करना होगा। विद्यार्थी समाज और विद्यालय के बीच की कड़ी है। इनके द्वारा विद्यालय समाज से निकटतम संबंध स्थापित करने में सफल हो सकता है। संबंधों की स्थापना के लिए विद्यालयों एवं उनके पाठ्यक्रमों का संगठन इस रूप में होना चाहिए कि वे सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल, समाजोपयोगी शिक्षा दे सकें। नागरिकों को उनकी सामाजिक समस्याओं के समाधान में वांछित योगदान कर सकें।

3.2.7 विभिन्न सामाजिक इकाईयाँ शिक्षा के लिए उत्तरदायी (Various social units responsible for education)

विद्यालयों के अतिरिक्त, गणतंत्रात्मक व्यवस्था के अंतर्गत राज्य एवं अन्य प्रकार की विभिन्न राजनैतिक तथा सामाजिक इकाइयां भी अप्रत्यक्ष रूप में बालकों को शिक्षा देती हैं। बालकों के समाजीकरण पर वातावरण का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ वातावरण नागरिकता के गुणों के विकसित के लिए अत्यंत आवश्यक है। अतः प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि बच्चों को दूषित वातावरण के प्रभावों से बचाते हुए उनके सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण दे, जिससे वे सफल नागरिक बन सकें।

3.2.8 विद्यालयों एवं समाज के सहयोग की आवश्यकता (Necessity of collaboration of school and society)

बालक लगभग 6 घंटे प्रतिदिन विद्यालय में रहकर शेष 18 घंटे समाज की अन्य संस्थाओं, प्रमुखतया कुटुम्ब में बिताता है। इससे स्पष्ट है कि समाज की जिन इकाइयों में वह अधिक समय बिताता है उनके मूल्यों, मान्यताओं एवं आदर्शों के प्रभाव से वह अछूता नहीं रह सकता। दूसरें शब्दों में, बालक विद्यालय एवं समाज, दोनों से प्रभावित होता है। इस प्रकार समाज और विद्यालय के वातावरण की भिन्नता बालकों के विकास की एक जटिल

समस्या बन जाती है। इसे दूर करने के लिए समाज और विद्यालयों में सामंजस्य का होना आवश्यक है। वांछित सामंजस्य तभी स्थापित हो सकता है जब विद्यालय और समाज–दोनों एक–दूसरे की आवश्यकताओं से अवगत हों और सहयोग की कामना करते हों। समाज का सहयोग पाकर ही विद्यार्थियों के विकास संबंधी सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन में विद्यालयों को सफलता मिल सकती है।

अधिकांश अभिभावक बालकों को विद्यालय में प्रवेश करा देने के पश्चात् उनके विकास–संबंधी उत्तरदायित्व से अपने को मुक्त समझने लगते हैं, परंतु यह उनकी भूल है। बिना समाज और विद्यालय, दोनों के परस्पर सहयोग के बना बालक का समुचित विकास असम्भव है। विद्यालयों एवं कुटुम्ब के वातावरण एवं आदर्शों में विद्यमान वैषभ्यता के कारण कुछ अभिभावकों के प्रतिस्पर्धा के भाव उत्पन्न हो जाते है। फलतः उन्हें विद्यालयों तथा उनकें कार्यक्रमों से अरूचि हो जाती है और वे कौटुम्बिक आदर्शों की महानता की प्रतिष्ठा के प्रयत्नों द्वारा बालक के विकास की स्वाभाविक गति पर आघात पहुंचाते है। अतः प्रत्येक दशा मं अभिभावकों को चाहिए कि वे विद्यालयों के कार्यक्रमों में रूचि लें और विद्यालयों को समाज के निकट लाने में आवश्यक सहयोग दें। विद्यालयों को भी चाहिए कि बालकों को समुचित विकास के लिए समाज के निकटतम आने का प्रयास करें और उसकी विभिन्न संस्थाओं तथा इकाईयों का सहयोग प्राप्त करें। इसके लिए कुछ साधन इस प्रकार है :–

1. विद्यालयों का पाठ्यक्रम सामाजिक आदर्शों, मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुकूल हो।
2. समाज का सहयोग प्राप्त करने के लिए उसकी स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विद्यालयों का सतत प्रयत्नशील रहना आवश्यक है।
3. विद्यार्थियों को सारी बातें बताकर ही नहीं, अपितु उन्हें स्वयं अनुभव द्वारा ज्ञान–प्राप्ति का अवसर देना चाहिए।
4. राज्य की विभिन्न संस्थाओं से सहायता प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहना विद्यालयों का कर्तव्य है।
5. शिक्षा को अधिकाधिक समाजोपयोगी बनाने की चेष्टा होनी चाहिए। इस संबंध में समाज में विद्यमान शैक्षिक सामग्रियों तथा उपादानों का प्रयोग करना चाहिए।
6. बालकों को भी उनकी रूचि के अनुसार कार्यक्रमों के आयोजन हेतु प्रोत्साहन देना चाहिए।
7. बालकों के ज्ञान के विकास को ध्यान में रखते हुए पाठ्य–पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के अध्ययन की सुविधा देनी चाहिए।
8. पाठ्यक्रम का चयन इस दृष्टिकोण से किया जाय कि समयानुसार उसमें काल, स्थान एवं परिस्थितियों के अनुकूल संशोधन, परिवर्द्धन अथवा परिवर्तन किया जा सके।

3.3 शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन में संबंध (Relation between education and social change)

शिक्षा तथा समाज का घनिष्ठ संबंध है। शिक्षा समाज का एक महत्वपूर्ण साधन है। परन्तु यह (शिक्षा) एक स्वतन्त्र तथा आत्मनिर्भर प्रक्रिया है। यह अपने उद्देश्यों के निर्धारण के लिए राजनीतिक–सांस्कृतिक प्रणाली पर तथा वित्तीय अनुदान के लिए आर्थिक प्रणाली पर निर्भर रहती है। इसका विपरीतार्थ भी पर्याप्त रूप से सत्य है कि आर्थिक व राजनीतिक प्रणालियाँ भी शिक्षा से लाभान्वित होती है। शायद इसीलिए कहा जाता है कि शिक्षा राष्ट्रीय विकास का बीज तथा फल दोनों हैं, लेकिन शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय विकास या सामाजिक परिवर्तन उस सीमा तक लाया जा सकता है कि जिस सीमा तक इसमें लोगों की रूचि और रूझान है। शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन के संबंध को निम्नांकित रूपों में देखा जा सकता है –

(अ) शिक्षा साामाजिक परिवर्तन की स्थिति तथा साधन – यह कहा जाता है कि शिक्षा के अभाव में सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि सामाजिक परिवर्तन लाने से पूर्व शिक्षा की व्यवस्था की जाये। समाज में बहुत से सुधार या परिवर्तन लाने के लिए कार्य किया जाता है, परन्तु शिक्षा के अभाव के कारण वे सुधार या परिवर्तन व्यवहारतः असफल रहते है। अतः शिक्षा द्वारा इसखाई को पाटकर सामाजिक परिवर्तनों को गति प्रदान की जाती है। शिक्षा द्वारा व्यक्तियों के विचार, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों में परिवर्तन ।

1. नवभारत की सामाजिक आवश्यकताओं के कारण शैक्षिक परिवर्तन – परतन्त्र भारत में शिक्षा का अर्थ था – अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार। नवभारत में धर्म–निरपेक्ष राज्य, समाजवादी समाज की स्थापना, देश के औद्योगीकरण, जन–शिक्षा आदि की माँगों को ध्यान में रखकर शिक्षा के स्वरूप को परिवर्तन करने का सतत् प्रयास किया जा रहा है। इसीलिए निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई है, निरक्षर वयस्कों की शिक्षा के लिए विशाल कार्यक्रम तैयार किया गया है, माध्यमिक और उच्च शिक्षा का नये सिरे से पुनर्गठन किया जा रहा है, कृषि और उद्योगों के विकास के लिए वैज्ञानिक और टेकनिकल शिक्षा का तेजी से विस्तार किया जा रहा है, समाज के पिछड़े हुए वर्गों के लिए अपेक्षाकृत अधिक शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था की जा रही है और बालिकाओं एवं स्त्रियों के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना की जा रही है।

   इस प्रकार, भारतीय समाज में होने वाले विविध परिवर्तनों का शिक्षा द्वारा अनुगमन किया जा रहा है। सैयदैन (Saiyidain) ने ठीक ही लिखा है – ''इस समय भारत में शिक्षा बहुत नाजुक, पर रोचक अवस्था में से होकर गुजर रही है। यह स्वाभाविक है क्योंकि समग्र रूप में राष्ट्रीय जीवन भी, जिसका शिक्षा एक अनिवार्य अंग है, ऐसी ही अवस्था में से होकर गुजर रहा है।''

2. सांस्कृतिक अनुकूलन के कारण शैक्षिक परिवर्तन – ऑगबर्न (Ogburn) के अनुसार – संस्कृति के दो अंग हैं – (i) भौतिक संस्कृति (Materal Culture) अर्थात् मानव निर्मित मूर्त्त वस्तुएँ, जैसे – मकान, सड़क, इंजन, मशीनें, रेडियो आदि। (ii) अभौतिक संस्कृति (Non-Meterail Culture) अर्थात् मनुष्यों के सामूहिक रूप में रहने से विकसित होने वाली अमूर्त वस्तुएँ, जैसे–भाषा, धर्म, संगीत, जनरीतियाँ आदि।

   कुछ विद्वान जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, सांस्कृतिक परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन मानते हैं। इसी आधार पर ओटावे ने लिखा है – ''सांस्कृतिक अनुकूलन के कारण शैक्षिक परिवर्तन होता है।''

   "Alongwith cultural adaptation goes educational change,"

   - A.K.C. Ottaway : op. cit. p. 51

   ओटावे ने अपने कथन की पुष्टि में अभौतिक संस्कृति की वस्तु, रेडियों का उदाहरण दिया है। उसका कथन है कि रेडियो हमारी संस्कृति का इतना अहत्वपूर्ण अंग बना गया है कि यदि हमारे ऊपर रेडियो सुनने पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है या उसके कार्यक्रम में किसी प्रकार की बाधा या परिवर्तन उपस्थित किया जाता है, तो हम उसे अपने अधिकारों का दमन समझकर अत्यधिक क्रुद्ध होते हैं।

   ओटावे ने आगे लिखा है कि इस अभौतिक संस्कृति (रेडियो) से अनुकूलन करने के कारण हमारी शिक्षा में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है, उदाहरणार्थ – व्यस्क लोग–यात्रा, कृषि, स्वास्थ्य, नाटक, आलोचना, राजनीति से संबंधित बातें सुनकर नवीन ज्ञान प्राप्त करते हैं। विद्यालयों में रेडियो का प्रयोग किये जाने के कारण शिक्षा की नवीन विधियों का प्रतिपादन, पाठ्यक्रम–निर्माण के

सिद्धान्तों में परिवर्तन और स्वयं रेडियों से संबंधित नवीन विषय को विज्ञान–शिक्षा का अंग बनाया गया है। इसके अतिरिक्त रेडियो–उद्योग में कार्य करने के लिए कुशल व्यक्तियों की माँग की गई। इस माँग को पूरा करने के लिए विद्यालयों में टेकनिकल शिक्षा की व्यवस्था की गई और इस शिक्षा को प्रदान करने के लिए टेकनिकल विद्यालयों का भी निर्माण किया गया है। इस प्रकार , ओटावे ने सिद्ध किया है कि सांस्कृतिक परिवर्तन या अनुकूलन के कारण शिक्षा में परिवर्तन होना आवश्यक है।

3. सामाजिक शक्तियों के कारण शैक्षिक परिवर्तन – ओटावे के शब्दों में – ''किसी समय में किसी समाज द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा उस समाज में कार्य करने वाली प्रमुख सामाजिक शक्तियों द्वारा निर्धारित की जाती है।'' ये सामाजिक शक्तियाँ – व्यक्तियों के वे समूह होते है, जो समाज की आवश्यकताओं और मूल्यों के अनुसार शिक्षा में परिवर्तन करने का प्रयास करते है। हम इसका उदाहरण, भारतीय शिक्षा के इतिहास से दे सकते हैं।

शिक्षा–आयोज (1964) ने शिक्षा को भारतीय समाज के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुकूल बनाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की नवीन नीति का सुझाव दिया। इसका समर्थन भारतीय विद्यालयों के उपकुलपतियों, पार्लियामेण्ट के सदस्यों, विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों और राज्यों के शिक्षा–मन्त्रियों ने किया। अतः केन्द्रीय सरकार ने 17 जुलाई, 1968 को शिक्षा के महत्वपूर्ण अंगों, सिद्धान्तों स्तरों और स्वरूप में परिवर्तन करने के लिए 'राष्ट्रीय शिक्षा–नीति' (National Educational Policy) की घोषणा की।

3.3.1 सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा का वास्तविक कार्य (Actual role of education in social change)

उपर्युक्त पंक्तियों में हमनें यह प्रदर्शित किया है कि समाज द्वारा शिक्षा में और शिक्षा द्वारा समाज में परिवर्तन किया जाता है। जहाँ तक पहली बात का संबंध है, उसके बारे में किसी प्रकार की मत–विभिन्नता नहीं है, पर दूसरे के बारे में है। वस्तुतः समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन के जितने कारण बताये हैं, उनमें शिक्षा को स्थान नहीं दिया गया है। इसका कारण यह है कि शिक्षा को समाज पर निर्भर रहने वाली और उसी के अनुसार स्वरूप धारण करने वाली क्रिया माना जाता है। फिर भी, जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है, शिक्षा–सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योग देती है। पर इस योग के बावजूद शिक्षा का समाज पर पड़ने वाला प्रभाव मुख्य न माना जाकर गौण माना जाता है। इस संदर्भ में ओटावे (Ottaway) के शब्द उल्लेखनीय हैं – ''शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का कारण स्वीकार नहीं किया जाता है। यह तो समाज पर निर्भर रहने वाली एक परिवर्तनशील वस्तु हैं निस्सन्देह रूप से शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योग देती है, पर इसका प्रभाव मुख्य न होकर गौण होता है।

ओटावे के अनुसार शिक्षा–सामाजिक परिवर्तन का कारण न होकर एक शक्तिशाली साधन है। समाज के व्यक्तियों द्वारा इसका प्रयोग एक निश्चित उद्देश्य से किया जाता है। जब उद्देश्य में परिवर्तन हो जाता है, तब शिक्षा के स्वरूप में भी परिवर्तन हो जाता है। पर यह तभी होता है, जब पहले उद्देश्य में परिवर्तन कर लिया जाए। यह जानते हुए भी कुछ लोग शिक्षा पर समाज को परिवर्तित करने का दायित्व रखते है। उन्हें बहुधा यह कहते हुए सुना जाता है। कि यदि शिक्षा के स्वरूप को बदल दिया जाए, तो वे एक पीढ़ी के बाद सम्पूर्ण विश्व को बदल सकते हैं। पर शिक्षा की अपनी सीमाएँ हैं। हम समाज को परिवर्तन करने के लिए उसकी सहायता तभी ले सकते हैं, जब हम पहले अपने आपको परिवर्तित कर लें। ऐसा करना मानव–स्वभाव को एक नई दिशा में मोड़ना होगा, जो व्यक्तिगत रूप से तो सम्भव हो सकता है, पर सामूहिक रूप कदापि नहीं। एक समाज, एक राष्ट्र के रूप में हमार स्वयं का उदाहरण हमारे सामने है।

हमें स्वतन्त्रता मिली। हमने धर्म–निरपेक्ष राज्य और समाजवदी समाज की स्थापना का संकल्प लिया। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हमने नये आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों का निर्माण किया है,

उनको प्राप्त करने के लिए शिक्षा के स्वरूप को परिवर्तित के लिए कदम उठाये, पर हमने अपने आपको परिवर्तित करने की ओर स्वरूप को ध्यान नहीं दिया है। हम आज भी धार्मिक द्वेष, आर्थिक विषमता, वैमनस्य की भावना और स्वार्थ के सिद्धान्त से अपना गहरा नाता जोड़े हुए हैं। यही कारण है कि हमारी परिवर्तित शिक्षा, हमारे समाज के स्वरूप को निश्चित करने में असफल रही है और उसकी सेविका के रूप में कार्य कर रही है। सैयदेन का यह वाक्य हमारे सामाजिक परिवर्तन में हमारी शिक्षा के कार्य को नवीन रूप प्रदान करने में नेतृत्व करना चाहिए था, उसकी चाटुकार चेरी के रूप में कार्य करके संतोष का अनुभव कर रही है।

सैयदेन ने इन थोड़े से शब्दों में सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा में कह सकते हैं – ''शिक्षक को सामाजिक परिवर्तन का अग्रदूत कहा जाता है, परन्तु आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से बौना बनाकर हम उससे वह काम नहीं ले सकते हैं। आर्थिक सुरक्षा, सामाजिक सम्मान तथा शैक्षणिक स्वतंत्रता देकर ही हम उसे कल्पना, साहसिकता तथा नवाचार या प्रसारक बना सकते है। सामाजिक जड़ता, यथास्थितिवाद तथा श्रेष्ठ वर्ग के प्रभुत्व से छुटकार पाने का यही रास्ता है।''

3.3.2 भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति एवं दिशा (Nature and direction of social change in India)

20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारतीय समाज को परम्परागत समाज माना जाता था। यद्यपि अंग्रेजी सरकार तथा भारतीयों ने उसके स्वरूप को परिवर्तित करने के लिए कदम उठाये। परन्तु लोगों के जीवन में गुणात्मक सुधार करने तथा जीवन–स्तर, को उन्नत बनाने में कोई रूचि नहीं ली। राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद क्या हम अपने समाज का आधुनिकीकरण करने में सफल हुए हैं? यदि हाँ, तो परिवर्तन की प्रकृति क्या रही है? इस प्रश्न के उत्तर को जानने के लिए आवश्यक है कि हम यह जान लें कि एक परम्परागत समाज क्या है और आधुनिक समाज क्या है?

परम्परागत समाज (Traditional society) – परम्परागत समाज में निम्नांकित लक्षण पाये जाते हैं –

1. परम्परागत समाज में व्यक्ति की स्थिति (Status) उसके जन्म से निश्चित व निर्धारित होती हैं अर्थात् व्यक्ति सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) के लिए संघर्ष नहीं करता है।
2. व्यक्ति का व्यवहार प्रथाओं व रिवाजों से संचालित होता है और लोगों के व्यवहार में पीढ़ी दर पीढ़ी थोड़ा ही परिवर्तन हो पाता है।
3. सामाजिक संगठन का आधार संस्तरण (Stratification) है।
4. व्यक्ति अपनी पहिचान प्राथमिक समूह से बनाता है तथा परस्पर, अन्तःक्रिया में नातेदारी संबंध महत्वपूर्ण होते हैं।
5. स्थिति की अपेक्षा व्यक्ति को सामाजिक संबंधों की स्थापना में अधिक महत्व दिया जाता है।
6. इसमें लोग रूढ़िवादी अधिक होते हैं।
7. इसकी अर्थव्यवस्था सरल होती है तथा जीविका से परे आर्थिक उत्पादन अपेक्षाकृत कम होता है।
8. इस समाज में मिथकीय विचार प्रभावी होते हैं।

आधुनिक समाज (Modern society) – आधुनिक समाज में निम्नांकित लक्षण देखने को मिलते हैं–

1. आधुनिक समाज में व्यक्ति की स्थिति उसकी स्वयं की योग्यता एवं सामर्थ्य से होती है।
2. व्यक्ति का व्यवहार रिवाजों की अपेक्षा कानून से अधिक नियन्त्रित होता है।

3. इस प्रकार के समाज में सामाजिक ढाँचे का आधार समान होता है।
4. द्वैतीयक संबंध प्राथमिक संबंधों से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।
5. समाज में व्यक्ति की स्थिति अर्जित होती है और सामाजिक जीवन तथा सामाजिक संबंधों में इसका महत्व अधिक होता है।
6. समाज के लोग नवीनता में विश्वास करते है।
7. अर्थ–व्यवस्था जटिल और प्रौद्योगिकी पर आधारित होती है।
8. समाज में तार्किक विचारों का बोलबाला होता है।

भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति ऐसी है जिसमें आधुनिकता व परम्परा का समन्वय स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। एक ओर हमने उन विश्वासों, प्रथाओं तथा संस्थाओं की उपेक्षा की है जिनकी आवश्यकता अनुभव नहीं की गई तो दूसरी ओर उन मूल्यों को अपनाया है जिनको हमने अपने मौलिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक समझा है। आज हमें परम्परागत सामाजिक प्रथाओं को छोड़ने में तथा नवीन संस्थात्मक संरचनाओं के निर्माण में अधिक विवेकी हो गये हैं, गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में कमी हुई है। प्रति व्यक्ति आय में 92 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा पिछड़े तथा निम्न जाति के लोगों के लिए उच्च सामाजिक स्थिति की उपलब्धि में अब कोई भ्रम नहीं रह गया है।

फिर भी हमारे समाज में आज भी अनेक विरोधाभास हैं। उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं–

1. हमारी भूमिकाएं तो आधुनिक हो गई हैं किन्तु हमारे मूल्य अभी भी परम्परागत हैं।
2. हम समतावाद (eqalitarianism) दर्शाते हैं किन्तु हम भेद–भाव (discrimination) का व्यवहार करते हैं।
3. हमारी आकांक्षाएँ (aspirations) बहुत ऊँची हो गई हैं, किन्तु उनकी प्राप्ति के साधन या तो उपलब्ध नहीं हैं या पहुँच से बाहर हैं।
4. हम राष्ट्रवाद की बात तो करते हैं, लेकिन हम क्षेत्रवाद (regionalism) को प्रोत्साहन देते हैं।
5. हम दावा करते हैं कि हमारा गणतंत्र समानता लाने के लिए समर्पित है, परन्तु यह जाति व्यवस्था के शिकंजे में बुरी तरह जकड़ा हुआ है।
6. हम तर्कशील होने का दावा करते हैं, परन्तु हम अन्याय तथा पक्षपात को भी भाग्यवादी भावना से स्वीकार करते हैं।
7. हम व्यक्तिवाद का समर्थन करते हैं परन्तु हम समूहवाद को लागू करते हैं।
8. हम उदारीकरण की नीति की घोषणा करते हैं, किन्तु फिर भी अनेक नियंत्रण लागू करते हैं, आदि।

उपर्युक्त विरोधाभासों का फल यह है कि हमारे समाज में असन्तोष बढ़ता जा रहा है। भ्रष्टतंत्र तथा अप्रतिबद्ध राजनैतिक कार्यकर्त्ता जो अपने निजी स्वार्थों में रूचि लेते हैं, जिन्हें देश के भविष्य की कोई चिन्ता नहीं है उन्होंने विकास का विरोध किया क्योंकि वे अपनी अपार शक्ति को कम होने नहीं देना चाहते हैं। अन्ततः हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज परिवर्तित हो रहा है और विकास की कुछ दिशाएँ स्पष्ट हो रही हैं, फिर भी सत्य यह है कि उन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो पाये हैं जो हम चाहते थे। भारत में मूल्यों, प्रथाओं तथा संस्थाओं में परिवर्तन आया है और उसका परम्परागत स्वरूप स्थिर नहीं रहा है।

3.4 सारांश (Summary) :

- एक शिक्षक का दायित्व है कि वह एक ऐसे शैक्षिक वातावरण का निर्माण करे जिसमें विविधताओं का सम्मान हो, किसी भी प्रकार का असमानता का व्यवहार न हो तथा एक समावेशी वातावरण में बच्चो के विकसित होने का अवसर मिलें।
- जनतांत्रिक मूल्यों एवं प्रक्रियाओं के प्रभावी हिस्सेदारी के लिए जरूरी समझ एवं कौशल विकसित करने के लिए शिक्षा एक सशक्त माध्यम है।
- विद्यालयों का समाज से निकटतम संबंध होना चाहिए।
- शिक्षा सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योग देती है, पर इसका प्रभाव मुख्य न होकर गौण होता है।
- शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का कारण न होकर एक शक्तिशाली साधन है।

3.5 अभ्यास के प्रश्न

1 स्थानीय शैक्षिक संदर्भ में विविधता, असमानता तथा वंचना का बच्चों के शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभव की विवेचना कीजिए?

2 वर्तमान शिक्षा प्रणाली को सर्वसाधारण का व्यापक समर्थन प्राप्त करने के लिए किन–किन बदलावों की आवश्यकता है और क्यों?

3 शिक्षा का सामाजिक सशक्तीकरण से आप क्या समझते हैं? सामाजिक सशक्तीकरण हेतु क्या –क्या किया जा सकता है, समझाइए?

4 बालक के सामाजीकरण में परिवार, समाज और विद्यालय की भूमिका को समझाइए ?

5 बालकों के समूचित विकास के लिए विद्यालय, समाज तथा परिवार की क्या भूमिका है?

6 शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्सम्बंधों को स्पष्ट कीजिए ?

●●●

इकाई – 4

विद्यालय के शुरूआती समय के दौरान अधिगम एवं शिक्षण

(During The Early Part of The School, Learning and Teaching)

4.0 प्रस्तावना (Introduction)

एक अध्यापक के रूप में शिक्षण एवं अधिगम की इन दो प्रक्रियाओं से आप भली भाँति परिचित है, क्योंकि आप बच्चों को सिखाने के लिए शिक्षण में व्यस्त रहते हैं। सामान्यतया आप यह अपेक्षा करते हैं कि सभी बच्चे अपनी क्षमता के अनुसार अधिगम अनुभवों को प्राप्त करने में आपकी कक्षा में श्रेष्ठतम हों जबकि सभी अध्यापकों की समान अपेक्षाएं होती हैं जैसे :– नये अनुभवों को सीखने के लिए विद्यार्थियों द्वारा अधिगम प्रयास करना, लेकिन प्रत्येक व्यक्तिगत अध्यापक इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए समान तरीकों का उपयोग नहीं करते।

आओ एक प्राथमिक विद्यालय में दो कक्षाओं की निम्नलिखित स्थितियों पर चर्चा करते हैः–

स्थिति–1 कक्षा V में श्रीमान रमन अपने विद्यार्थियों को पौधों के विभिन्न भागों के बारे में सिखाने के लिए शिक्षण करा रहे थे। वे पौधों के विभिन्न भागों की कुछ इस प्रकार व्याख्या कर रहे थे – जैसे ये जड़ है, ये तना है, ये पत्ती है, ये फूल है, और ये बीज है। श्रीमान रमन ये सब ब्लैकबोर्ड पर पौधे का एक चित्र बनाकर कर रहे थे। वह अवसरानुकूल बच्चों से प्रश्न पूछ रहे थे, ये सुनिश्चित करने के लिए, कि बच्चे अवधारणा को समझ भी रहे है या नहीं। कभी–कभी वह बच्चों के साथ मजाकिया तरीके से पेश आ रहे थे और कभी–कभी वह उन बच्चों का ध्यान श्यामपट्ट की ओर देने को कह रहे थे जो बेपरवाह थे। और अन्त में, निष्कर्ष के रूप में उन्होंने कक्षा के बच्चों को पौधे के विभिन्न भागों को कक्षा में लेकर आने को कहा।

स्थिति–2 एक अन्य कक्षा में, मिस सीमा इसी प्रकरण का शिक्षण करा रही थी जैसे–विभिन्न तरीकों से पौधे के विभिन्न भागों की पहचान करना। उसने बच्चों को ये पहले ही सूचित कर दिया था कि सभी बच्चे अपने घर से एक–एक पौधा कक्षा में लेकर आये। उसने बच्चों को पाँच छोटे समूह में बाँट दिया और कागज के टुकड़े पर प्रत्येक समूह को पाँच पौधों का चित्र बनाने के लिए कहा और पौधो में रंगभर कर उनके विभिन्न भागों पर लेबल लगाने के लिए कहा। समूहों के द्वारा कार्य पूरा करने के बाद मिस सीमा ने उन शीटों को दीवार पर लगा दिया जिससे अन्य बच्चे भी एक–दूसरे की शीट देख सके। कक्षा के अन्त में, जब सीमा ने आम के पेड़ के चित्र के विभिन्न भागों पर लेबल लगाने के लिए कहा, तो बच्चों के बीच में इस कार्य को करने के होड़ सी मच गयी।

क्या दो कक्षाओं मे अनुकरण की गयी शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाओं के तरीके में अन्तर की पहचान की जा सकती है?

दोनो स्थितियों में समानताएं है –

a) क्रियाकलाप की योजना शिक्षक ने बनायी और

b) दोनों ने शिक्षण के लिए कुछ सामग्री का उपयोग किया। फिर भी इनमें निम्नलिखित अन्तर है –

- पहली स्थिति में, कक्षा पूर्ण रूप से शिक्षक केन्द्रित थी। शिक्षक ने पाठ की योजना बनायी, शिक्षण–अधिगम सामग्री को व्यवस्थित किया, अवधारणा की व्याख्या की प्रश्न किये और अन्य कक्षा के

क्रियाकलाप किये। विद्यार्थियों ने निष्क्रिय भूमिका निभायी और अपेक्षानुरुप शिक्षक द्वारा दी गयी सूचनाओं का आदर किया।

- द्वितीय स्थिति में विद्यार्थी कक्षा में शिक्षण अधिगम क्रियाकलाप में सक्रिय रुप से व्यस्त थे और अपेक्षाकृत शिक्षक ने केवल सूचनाएं संचालित की। वे अपने साथ सामग्री लेकर आये, चार्ट तैयार किये, पौधों के विभिन्न भागों पर लेबल लगाये, चाटों को प्रदर्शित किया और स्वेच्छा से मूल्यांकन कार्य में हिस्सा किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षण के दो तरीकों के बीच विभिन्नता शिक्षक का बच्चों के प्रति उनके रवैयों में विभिन्नता के कारण है। वास्तव में, शिक्षण–अधिगम अभ्यास में मूलभूत/आधारभूत विश्वासों में अन्तर था। श्रीमान रमन का विश्वास था कि बच्चे छोटे और कम अनुभवी हैं और इन्हें अधिगम के तथ्यों को प्रदान करने की आवश्यकता है, मिस सीमा का विश्वास था कि बच्चों के पास कक्षा में आने से पहले का अपने चारों ओर के वातावरण से प्राप्त किया गया अनुभव है और जिसका उपयोग वे नये अनुभवों को प्राप्त करने के लिए कर सकते हैं।

बच्चों के बारे में विश्वास और धारणाएं, शिक्षक की भूमिका, कक्षा की परस्पर क्रिया की प्रक्रिया और मूल्यांकन का तरीका, वास्तविक शिक्षण प्रक्रिया और अभ्यास को प्रभावित करता है। कुछ अध्यापक बच्चों के अवलोकनात्मक व्यवहार को रूपान्तिरत करने के लिए शिक्षण और अधिगम पर बल देते हैं, और कुछ संज्ञानात्मक योग्यताओं को विकसित करने पर बल देते हैं एवं कुछ का विश्वास है बच्चों के स्वयं के ज्ञान का निर्माण करने में उनकी सहायता की जा सकती है। एक शिक्षक के रूप में आपको विभिन्न अभ्यास और उनके लिए आधारभूत विश्वासों के बारे में जागरूक होने की आवश्यकता है और ऐसा इसलिए है जो कि आप इस इकाई में सीखेंगे। आप अधिगम प्रक्रिया की प्रकृति के बारे में जानेंगे, बच्चे किस तरीके से सीखते हैं और वर्चस्व वाले विश्वासों मार्गदर्शित विभिन्न प्रचलनों के बारे में जानेंगे। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सिद्धांत और अभ्यास के निम्नलिखित तीन उपागमों, जिनके नाम निम्नलिखित है – (1) शिक्षण और अधिगम के लिए व्यवहार का रूपान्तरण (2) शिक्षण और अधिगम के लिए समस्या समाधान (3) शिक्षण और अधिगम के लिए अनुभवों का निर्माण, की चर्चा की जायेगी। छोटे बच्चों के लिए विधियां अर्थपूर्ण पायी गयी हैं। यह विश्वास है कि जब अधिगम एक बच्चे के लिए अर्थपूर्ण होता है तब वह अधिगम से प्यार करता है और उसे निरन्तर बनाये रखता है।

जब आप इस इकाई का शिक्षण करा रहे हैं तब आपको बच्चों को अपने ध्यान में रखना है जो अभी प्राथमिक विद्यालय में आना शुरू हुए है।

4.1 अधिगम उद्देश्य (Learning objectives)

इस इकाई के पूर्ण हो जाने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- अधिगम की अवधारणा और प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेंगे।
- अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले घटकों को करना।
- अधिगम के विभिन्न तरीकों और सिद्धांतो की व्याख्या करना।
- अधिगम और शिक्षण के पारस्परिक और आधुनिक उपागमों के बीच अन्तर करना।

4.2 अधिगम प्रक्रिया (Learning process)

अधिगम क्या है? एक बच्चा कैसे सीखता हैं? हम बच्चे के अधिगम को कैसे सुविधा प्रदान कर सकते हैं? एक शिक्षक के रूप में इस प्रकार के कुछ प्रश्न हैं जिनको विद्यालय में बच्चों के अधिगम को आकार देने में, इस जिम्मेदारी को क्रम से निभाने के लिए समझना आवश्यक है।

4.2.1 अधिगम की अवधारणा और प्रक्रिया (Learning concept and process)

आपके पढ़ने और विचार करने के लिए नीचे कुछ तथ्य दिये गये हैं :—

- अधिगम, अधिक या कम स्थायी के द्वारा, संसार में हमारे चारो ओर क्या घटित हो रहा है, इसके द्वारा, हमें क्या करना और हमें क्या अवलोकन करना है, इन सब के द्वारा रूपान्तरित होने की एक प्रक्रिया है।
- अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यवहार को मूलभूत किया जाता है, प्रशिक्षण विधि के द्वारा परिवर्तन होता है। (या तो प्राकृतिक वातावरण में या प्रयोगशाला में)
- अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान और प्रवृत्ति प्राप्त करना है, जिनका सामान्य रूप से जीवन की माँग के अनुसार मिलना आवश्यक होता है।
- ''अधिगम व्यक्तित्व (संज्ञानात्मक, प्रभावकारी, प्रवृत्तिपूर्ण, उत्साहपूर्ण, व्यवहार, पूर्ण अभ्यासात्मक) में पूर्णतया परिवर्तन कर देता है और उसके प्रदर्शन में परिवर्तन दिखायी देती है अक्सर ये अभ्यास के द्वारा आता है फिर भी यह अन्तर्दृष्टि से या उसके कारकों या स्मरण से पैदा हो सकता है।''

उपरोक्त तथ्य हमें अधिगम को तीन विस्तृत तरीकों से समझने की ओर इशारा करते हैं। अधिगम को निम्न प्रकार से सुनिश्चित किया जा सकता है —

- व्यवहार का पूर्णतया स्थायी रूपान्तरण
- जीवन की माँगों से मिलने के लिए आवश्यक आदतें, ज्ञान और वृत्ति को ग्रहण करना।
- व्यक्तित्व में पूर्णतया स्थायी परिवर्तन (सभी संभव विमाओं में) अधिगम प्रक्रिया की विशेषताएं निम्न प्रकार है —
- अधिगम एक सतत प्रक्रिया है :— बचपन से ही प्रत्येक मनुष्य अपने व्यवहार सोच, प्रवृत्ति रूचि आदि से अपने व्यवहार में परिवर्तन की कोशिश करता है वह ऐसा जीवन के परिवर्तनशील स्थितियों में स्वयं को निरन्तर फिट रखने के लिए करते हैं।
- अधिगम एक प्रत्यक्ष लक्ष्य है :— प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने की अभिलाषा करता है। इन लक्ष्यों को अधिगम के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यदि प्राप्त करने के लिए कोई उद्‌देश्य नहीं है, तब वहाँ अधिगम की कोई आवश्यकता नहीं होगी।
- अधिगम सुविचारित है :— जब कोई व्यक्ति अपने लिए लक्ष्य निर्धारित करता है तब वह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जानबूझकर कुछ क्रियाकलाप करता हैं यदि उसके पास लक्ष्य तक पहुचने के लिए कोई सुविचार नहीं है या वह इसके बारे में बिल्कुल शांत है, तब उसका लक्ष्य तक पहुँचना मुश्किल है, इसका तात्पर्य है कि उसका अधिगम कमजोर है।

- अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है :– कुछ सीखने के लिए शारीरिक, मानसिक या दोनों प्रकार के कुछ क्रियाकलाप करने की आवश्यकता होती है। नये अनुभवों को सीखने के लिए मस्तिष्क का सक्रिय होना आवश्यक है अन्यथा अधिगम संभव नहीं होगा।
- अधिगम व्यक्तिवादी है :– आपने कक्षा में ये अवलोकन किया होगा कि कुछ बच्चे अधिक शीघ्रता से सीखते हैं और अन्य धीरे–धीरे सीखते हैं। वास्तव में विभिन्न व्यक्तियों की अधिगम की गति भिन्न–भिन्न होती है।
- अधिगम एक व्यक्ति की वातावरण के साथ परस्पर क्रिया का परिणाम है :– एक शिक्षक के रूप में, बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए सावधानी पूर्वक वातावरण का संगठन करना है, प्रायः जब वे आपसे परस्पर क्रिया करते हैं, आपस में अपने साथियों से परस्पर क्रिया करते हैं तथा शिक्षण अधिगम सामग्री से परस्पर क्रिया करते हैं।
- अधिगम स्थानांतरणीय है :– एक स्थिति में किया गया अधिगम अन्य स्थितियों में समस्या हल करने में उपयोगी हो सकता है। गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और भाषा का अधिगम बच्चों के वास्तविक जीवन में विभिन्न क्रियाकलापों के प्रदर्शन में उनकी सहायता करता है।

स्वमूल्यांकन E1. अधिगम की किन्ही तीन विशेषताओं की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

4.2.2 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting learning)

आप ये अवलोकन कर सकते हैं कि कुछ व्यक्ति गाड़ी चलाना या तैरना या खाना बनाना आसनी से सीख लेते हैं, जबकि कुछ इतनी आसानी से नहीं सीख पाते हैं। ऐसा क्यों होता है? वे क्या सीखते है, कैसे सीखते हैं इस संदर्भ में व्यक्तिगत भिन्नता के क्या कारण हो सकते हैं? अधिगम को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को समझने का प्रयास करते हैं।

- **अधिगम और परिपक्वता** – परिपक्वता, वृद्धि की प्रक्रिया/विकास की प्रक्रिया से संबंधित होती है यह परिवर्तनों का वर्णन करती है, जो अपेक्षाकृत वातावरण के प्रभाव से स्वतंत्र है और यह माना जाता है कि यह वंशवाद या परम्परावाद के प्रभाव से पूर्ण रूप से संबंधित है। और दूसरे शब्दों में अधिगम तत्काल वातावरण के साथ व्यक्तिगत पारस्परिक क्रिया के द्वारा प्राथमिक आकार है। उदाहरण – चलने की शुरुआत कुछ निश्चित मांसपेशियों के समूह की परिपक्वता और उनकी गति के बढ़ते हुए नियंत्रण पर निर्भर करती है। (परिपक्वता का विकास) लेकिन चलना विभिन्न कौशलों से सम्मिलित अभ्यास के अवसर के बिना (वातावरण और अधिगम) किसी के लिए भी संभव नहीं हो सकता। उसी प्रकार, यद्यपि बोलना शुरू करना प्रायः परिपक्वता के द्वारा प्रभावित होता है, कोई भी उचित अभ्यास और प्रशिक्षण के बिना धारा प्रवाह एवं अर्थपूर्ण तरीके से नहीं बोल सकता है, जो तत्वतः अधिगम के द्वारा प्रभावित है। हम यह भी जानते हैं कि एक छः माह के छोटे बच्चे को गुणन की तालिका सिखाना असंभव है जब तक कि वह मानसिक परिपक्वता के निश्चित स्तर तक नहीं पहुँच जाता है।
- **सीखने की तत्परता** – जब बच्चे कक्षा में अधिगम सामग्री का प्रबंध कर रहे हैं तब आपको बच्चे के पास सावधानी के साथ आना चाहिए। जब वे आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं देते हैं तब उनसे नाराज हो जाते हैं। ऐसा क्यों हुआ? क्या आपने कभी इसके बारे में बच्चों से बातचीत करने की कोशिश की है?

ठीक है, अनेक कारणों के कारण, कौन सा मनो शारीरिक और/या सामाजिक कारण हो सकता है, जिसके कारण बच्चा सीखने के लिए तैयार नहीं हो सकता है। ये विभिन्न प्रकार की तत्परता है, कुछ शारीरिक परिपक्वता से संबंधित है (जो बच्चा चलने के योग्य नहीं है, वह दौड़ में भाग नहीं ले सकता) कुछ बौद्धिक परिपक्वता से संबंधित है और कुछ पीछे की सूचनाओं को ग्रहण करने की परिपक्वता से संबंधित है (जो बच्चा योग करना नहीं जानता है वह गुणा करना कैसे सीख सकता है।), और कुछ प्रोत्साहन की परिपक्वता से संबंधित है।

बच्चे की मानसिक तत्परता अधिगम के लिए अति आवश्यक है। उदाहरण के लिएः– भाषा अधिगम की स्थिति में जब बच्चा प्राथमिक स्तर पर है तब उससे कठिन शब्दों और वाक्यों को सीखने की अपेक्षा नहीं की जाती है। समान रूप से, शारीरिक क्रियाकलापों के लिए जैसे टंकण करना, नृत्य करना आदि में बच्चे की शारीरिक तत्परता की आवश्यकता होती है। जब बच्चा सीखने के लिए तत्पर होता है तभी वह प्रभाव कारी अधिगम कर पाता है। अतः तत्परता का निर्धारण करने के लिए आपको बच्चों के भावात्मक और बौद्धिक विकास का ज्ञान होना आवश्यक है।

अधिगम वातावरण :– विद्यालय में प्रभावशाली शिक्षा के लिए, विद्यालय का वातावरण अधिगम के अनुकूल होना आवश्यक है, समय व स्थान के अनुसार अधिगम व शिक्षण प्रक्रिया में परस्पर क्रिया की अनुमति होना आवश्यक है। उद्धीपित अधिगम वातावरण का सृजन एवं निर्माण प्रभावशाली कक्षा के संगठन के द्वारा, पारस्परिक क्रिया के द्वारा और पूरे विद्यालय के प्रदर्शन एवं खोजपूर्ण वातावरण के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

निम्नलिखित दो कक्षाओं की स्थिति की कल्पना कीजिए –

स्थिति–3 एक विद्यालय की छोटे कमरे में जहाँ 40 बच्चे बिना उपयुक्त स्थान के स्वतंत्र रूप से बैठे हैं। प्रकाश और हवा का आवागमन भी कमरे में उपयुक्त रूप से नहीं है। गर्मी की अधिकता और भीड़–भाड़ वाले कमरे में बच्चे पसीने से भीगे हुए हैं और शोर कर रहे हैं। स्थान के अभाव के कारण कमरे में कोई शिक्षण अधिगम सामग्री उपलब्ध नहीं है। अध्यापक अनुशासन बनाये रखने के लिए बच्चों पर चिल्ला रहा है।

स्थिति–4 दूसरे विद्यालय में, लगभग समान संख्या के बच्चे साफ–सुथरे, पर्याप्त स्थान वाले हवादार कमरें में विभिन्न क्रियाकलापों में व्यस्त हैं। दीवारों को अधिगम सामग्री से आवश्यकतानुसार सजाया गया है, शिक्षण अधिगम सामग्री उपयुक्त स्थान पर रखी हुई है, और प्रचुर मात्रा में बच्चों के लिए उपलब्ध है। अध्यापक बच्चों को समझने वाला एवं उनके साथ मित्रवत व्यवहार करने वाला है।

एक क्षण के लिए सोचिए कि उपरोक्त में से कौन सी स्थिति प्रभावकारी अधिगम के लिए उपयुक्त है और क्यों? और अपने स्वयं के विद्यालय दिनों के बारे में भी सोचिए। क्या याद आता है? अधिगम की प्रक्रिया में कौन से क्रियाकलाप आपको अधिक संतुष्टि प्रदान करते थे? शायद समुदाय या समाज में कक्षा से बाहर क्षेत्रीय भ्रमण, समूह क्रियाकलाप/समूह कार्य, परियोजना या अधिगम क्रियाकलाप आदि में आपको अधिक संतुष्टि प्रदान की होगी। वास्तव में उपयुक्त प्रभावशाली वातावरण अपने आप नहीं हो जाता, इसे बनाना पड़ता है और इसके बनाने के लिए भौतिक वातावरण जैसे कक्षा का आकार, माप दीवारों का रंग, फर्श की सुन्दरता, हवा, रोशनी व साथ–साथ प्रभावशाली कक्षा संगठन जिससे बच्चे स्वयं ही अधिगम में लग जाते हैं। सुरक्षित, रोचक व आरामदायक तथा मैत्रीपूर्ण वातावरण छात्रों को आपके द्वारा दी गयी अधिगम अनुरुप क्रियाकलापों में व्यस्त कर देता है।

अधिगम और प्रेरणा – प्रेरणा वह आन्तरिक बल है जो व्यक्ति को कार्य पूर्ण करने तक उसके समस्त क्रियाकलापों को नियंत्रण व दिशा देता है। प्रेरणा दो प्रकार की होती है–आन्तरिक प्रेरणा और बाह्य प्रेरणा।

आन्तरिक प्रेरणा – आन्तरिक प्रेरणा रूचि व आनन्द से स्वतः उत्पन्न होती है ना कि किसी बाहरी बल के कारण आन्तरिक प्रेरणा किसी क्रियाकलाप में प्राप्त होने वाले आनन्द पर आधारित होती है ना कि किसी बाहरी पुरस्कार के लालच में आन्तरिक प्रेरणा से उच्च कोटि का अधिगम होता है ना कि किसी बाहरी पुरस्कार के लालच में आन्तरिक प्रेरणा से उच्च कोटि का अधिगम होता है। उदाहरण–विज्ञान/गणित के प्रोजेक्ट विद्यार्थी को शायद इतना आनन्द प्रदान करें कि इसके फलस्वरूप विद्यार्थी स्वयं ही वैसे क्रियाकलाप करने के लिए प्रेरित हो जाये।

बाह्य प्रेरणा – किसी बाह्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य करना बाह्य प्रेरणा है। उदाहरण–यदि छात्र माता–पिता की डांट से बचने के लिए या उन्हें नाराज न करने के कारण गृहकार्य करता है तो वह बाहरी प्रभावों से प्रेरित है। अधिकतर बाहरी प्रेरणा के स्रोत ईनाम, प्रशंसा जैसे पैसे व अंक आदि हो सकते हैं। यदि माता–पिता व अध्यापक प्रायः अपने बच्चों के सफलता से कार्य संपूर्ण करने पर कुछ ईनाम या तोहफा आदि देते है, तो वह बाह्य प्रेरणा हैं।

सही व उपयुक्त प्रेरणा छात्र में अधिगम को बढ़ाती है। एक अध्यापक के नाते बच्चों का ध्यान अधिगम की ओर केन्द्रित करने के लिए आपको उपयुक्त युक्तियां सोचनी चाहिए।

स्वमूल्यांकन E-2 कोई दो उदाहरण दीजिए कि क्यों आन्तरिक प्रेरणा, बाह्य प्रेरणा से अधिगम के लिए बेहतर है।

4.3 बच्चा कैसे सीखता है (How children learns) :–

आपने बहुत से बच्चों को पहली बार कक्षा–1 में प्रवेश होने के लिए आते हुए देखा होगा। ये बच्चे जो पहली बार विद्यालय में औपचारिक पाठ्यक्रमानुसार अधिगम के लिए आये हैं, क्या आप समझते हैं कि इन बच्चों ने पहले कुछ नहीं सीखा और अभी पहली बार सीखेंगे?

क्रियाकलाप (Activity) – 1

एक सामान्य पाँच वर्ष का बच्चा, जो पहली बार विद्यालय में अधिगम के लिए आया है। वह जो कार्य कर सकता है उसकी सूची बनाइए।

श्रीमान विजय ने एक आपके जैसे अध्यापक जो प्राथमिक में हैं, वह एक नये प्रवेश पाने वाले बच्चे जिसका नाम झूम्पा है, से बातचीत की और उसका अवलोकन किया और निम्नलिखित क्रियाकलापों की सूची बनायी जो वह आसानी से कर सकती थी।

- वह साधारण वाक्यों में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर सकती है।
- वह विषय के अनुसार क्रिया के काल का उपयुक्त उपयोग करते हुए बोलती है।
- वह साधरण प्रश्नों जैसे – ''आपने दोपहर के भोजन में क्या खाया'', ''आप कौन सा खेल पसंद करती है,'' ''कल आपके घर कौन आया था'' के उत्तर देती है।
- वह जिज्ञासु है और बहुत सारे प्रश्न पूछती है।
- वह अध्यापक के कथनानुसार कार्य करती है और उनकी बातों को समझती है जैसे :– ''खड़े हो जाओ'', ''बांये मुड़ो'', ''अपनी आँखे बन्द करो'', ''श्यामपट्ट के पास आओ'' आदि।
- वह अपनी पसंद के अनुसार कुछ गाने गाती है।

- वह अपनी कक्षा के बच्चों के साथ खेल के नियमों का मजबूती से पालन करते हुए कुछ खेल खेलती है।

ध्यान दीजिए सूची लंबी है। कोई भी सामान्य बच्चा ये सारी क्रियाएं कर सकता है। लेकिन झूम्पा ये सारी क्रियाएं सुगमता से कैसे करना सीखी। चाहे उसके चारों ओर परिवार में तथा पड़ौस में बहुत सारे व्यक्ति हैं पर किसी ने भी उसे ये सारी क्रियाएं करनी नहीं सिखायी। स्पष्ट है कि विद्यालय ही सीखने की एक मात्र जगह नहीं है, और कोई भी अपने चारों ओर से इस संसार में अनुभवों की एक विस्तृत श्रृंखला सीख सकता है। यदि हम स्वभाविक तौर से अनुभव ग्रहण करने की प्रक्रिया को जानते हैं, तो हम कक्षा में उन प्रक्रियाओं के उपयोग से अधिगम को अधिक प्राकृतिक, अर्थपूर्ण और सीखने के लिए आसान बना सकते हैं। कुछ नये अनुभवों को प्राप्त करने की प्रक्रियाओं को समझते हैं।

4.3.1 अनुकरण (Imitation)

अधिकांशतया व्यक्ति किसी कार्य को अनुकरण के अवलोकन से और अन्य प्रकार की क्रियाओं से सीखते हैं। ये भी कुछ मुख्य प्रक्रियाएं है जिनसे बच्चे नये अनुभवों और व्यवहारिकता को सीखते हैं। अनुकरण किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार या क्रिया के अनुरूप कार्य है। बच्चा प्रत्येक कार्य/व्यवहार का अनुकरण नहीं करता। वह उसका चुनाव करता है जिसे वह पसंद करता है। ऐसा व्यक्ति अनुकरण के लिए अपने व्यवहार या क्रियाओं से उसे आकर्षित करता है और ऐसा व्यक्ति अनुकरण के लिए आदर्श बन जाता हैं वह आदर्श कोई भी व्यक्ति हो सकता है जो उसके प्रत्यक्ष रूप से संपर्क में रहता है जैसे माता–पिता, सहोदर, अध्यापक या अन्य कोई भी व्यक्ति होते हैं जिनके प्रत्यक्ष संपर्क में बच्चा नहीं रहता लेकिन वे अनुकरण के लिए आदर्श बन सकते हैं। उदाहरण – ऐसे व्यक्ति इतिहास या पौराणिक कथाओं के आदर्श हो सकते है जैसे – अशोक महान, शिवाजी, अकबर, गाँधी, नेहरू, मदर टेरेसा, श्री राम, श्री कृष्ण, मीराबाई, ईसा मसीह या प्रसिद्ध फिल्म एक्टर, खिलाड़ी कलाकार आदि। यहाँ तक कि प्रसिद्ध कॉमिक्स के चरित्र भी छोटे बच्चे के आदर्श बन जाते हैं।

ऐसे आदर्शों को सांकेतिक आदर्श कहा जाता है। अक्सर माता–पिता सहोदर व अध्यापक, बच्चे को कुछ महान हस्तियों के उदाहरण भी देते हैं। ऐसे आदर्शों को या तो वास्तविक आदर्श या उदाहरणीय आदर्श कहा जाता है।

यह ध्यान देने की बात है कि सभी अनुकरण अधिगम नहीं होते, जब तक कि अनुकरणीय व्यक्ति बच्चे के दिमाग पर अपनी पक्की छाप नहीं छोड़ता। जब आप किसी बच्चे को सकारात्मक और ऐच्छिक क्रिया का अनुकरण करते हुए, अवलोकन करते हैं, तो आप कैसे उस अनुकरणीय व्यवहार को अधिगम व्यवहार में बदलने के लिए बल दे सकते हो? संभवतः अनुकरण को बल देने के तीन रास्ते हैं, जो निम्न हैं–

- **प्रत्यक्ष प्रशंसा या ईनाम प्रदान करना** – कथन के द्वारा, जैसे–''वह तो एक विशेषज्ञ की तरह से समस्या हल कर रहा है'', वह तो लता मंगेश्कर की तरह बहुत अच्छा गा रही है'', या ''क्या शॉट खेला है यह तो बिल्कुल सचिन तेंदूलकर की तरह से खेला'' बच्चे के व्यवहार को दुहराने के लिए प्रेरित करते हैं।
- **संतोष जनक परिणाम** – यदि अनुकरण से बच्चा एक समाज स्वीकृत व्यवहार को अपनाता है व वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करता है, तो वह उसे दोहराना पसंद करता है। उदाहरण के लिए जब कोई बच्चा अपनी माँ को ''दूध'' कहते हुए अनुकरण करता है, तो वह उस शब्द को दोहराना पसंद करेगा यदि दोहराने पर उसको पीने के लिए दूध मिलता है।

- **प्रतिनिधित्व पुनर्बलन** – कभी–कभी बच्चा दूसरों के अनुकरण को देखकर बिना किसी ईनाम या संतोष जनक परिणाम के लालच के अनुकरण करता है। इसके पीछे उसका तर्क होता है कि यदि दूसरों को ऐसा करने से लाभ प्राप्त होता है तो मुझे भी होगा। किसी विशेष प्रकार की ड्रैस या लिपिस्टिक का चुनाव करना किसी विशेष तरीके से बात करना या कोई भिन्न धुन को गाना आदि ऐसे कुछ प्रतिनिधित्व अनुकरण के उदाहरण है।

बच्चों के अनुकरण हेतु निम्नलिखित प्रकार के कार्य कर सकते हैं –

- अपने विद्यार्थियों के द्वारा प्रकटीकरण के लिए आदर्श बनने की कोशिश कीजिए। अपने व्यवहार के सकारात्मक पहलू का प्रदर्शन अपने विद्यार्थियों के सामने कीजिए। एक शिक्षक के सकारात्मक अभ्यास जैसे :– स्वच्छता, समय बद्धता, सच्चाई और सुन्दरता आदि सभी बच्चे को प्रकटीकरण सिखाने के लिए प्रभावकारी हैं कभी भी अपनी किसी कमजोरी का प्रदर्शन बच्चों के सामने ना करें।
- जब आप इतिहास, सामाजिक विज्ञान, साहित्य और कहानी आदि बच्चों को सिखा रहे हो तो हमेशा महत्वपूर्ण चरित्रों के सकारात्मक पहलू को बच्चों के द्वारा प्रकटीकरण के लिए चिहनांकित कीजिए।
- जब कोई बच्चा सकारात्मक व्यवहार को प्रकट करता है तो इसे पहचानने की कोशिश कीजिए और उसे उत्साहित कीजिए कि वो ऐसा पुनः करें।

SE-3 आप अपने विद्यार्थियों को किसी आदर्श के अनैच्छिक/पथभ्रष्ट व्यवहार के प्रकटीकरण से बचाने के लिए कैसे निरूत्साहित कर सकते हैं?

4.3.2 अवलोकन (Observation)

अवलोकन से अधिगम मानव अधिगम की सामान्य और प्राकृतिक विधि है। अवलोकनात्मक अधिगम (स्थानापन्न अधिगम, सामाजिक अधिगम या आदर्शात्मक अधिगम के नाम से भी जाना जाता है।) इस प्रकार का अधिगम है जो दूसरों के द्वारा किये गये व्यवहार के देखने, अपनाने व परखने से ग्रहण किया जाता है। अवलोकनात्मक अधिगम बच्चों के लिए एक महत्वपूर्ण अधिगम विधि है, जब बच्चा मौलिक क्रियाकलाप जैसेः– भाषा और सांस्कृतिक सिद्धांतों को ग्रहण करता है लेकिन यह अनुकरण से अलग है जिसमें अवलोकनकर्त्ता आदर्श के व्यवहार की नकल करता है एवं पुनः उसका निर्माण करता है। इसलिए अवलोकन के माध्यम से अधिगम किसी आदर्श के व्यवहार का पूर्ण रूप से पुनः निर्माण करना नहीं है लेकिन अवलोकन किये गये व्यवहार के आधार पर नये व्यवहार का विकास है।

Bandura (1977) के अनुसार, निम्न चार विशेष प्रक्रियाएं अवलोकन व्यवहार से जुड़ी हुई है –

- **ध्यान प्रक्रिया** :– हम आदर्श के पूरे व्यवहार की नकल नहीं करते, बल्कि केवल व्यवहार के विशेष पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जो सीखने में हमे अच्छा लगता है। हम व्यवहार के उन्हीं महत्वपूर्ण लक्षणों की ओर ध्यान देते हैं, जो हम सीखना चाहते हैं। उदाहणतया–एक बच्चा अच्छा सुलेख सीखने के लिए अध्यापक को ध्यानपूर्वक देखता है और बारीकी से उसके पेंसिल पकड़ने के तरीकें पर ध्यान केन्द्रित करता है, वह कैसे अपनी अंगुलियां घुमाती है, कहाँ पर वह वड़े अक्षरों का उपयोग करती है अतः उसका ध्यान अध्यापक के पहनावे पर एवं चलने के तरीकें पर नहीं जाता।
- **स्मृति की प्रक्रिया** :– सूचना को दिमाग में एकत्रित करने की योग्यता भी अधिगम प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग है। स्मृति को कई प्रकार के कारक प्रभावित कर सकते हैं। एकत्रित सूचनाओं को बाद में प्रयोग में लाना और उस पर अमल करना अवलोकन अधिगम का महत्वपूर्ण अंग है। हमें अवलोकन

की गयी वस्तुओं को कुछ चिन्हों के उपयोग के तरीके के द्वारा, समझ के द्वारा और उनका संगठन करके, याद रखने की आवश्यकता है।

अक्सर हम स्मृति के लिए दो प्रक्रियाओं का प्रयोग करते हैं :—

पहली—देखी गयी वस्तुओं को अपने दिमाग में स्टोर करना और तब मन ही मन उन क्रियाओं की श्रृंखला बनाकर अभ्यास करना।

उदाहरण — यदि कोई जहीर खान की तरह बॉल फेंकने का प्रयास कर रहा है तो शुरू में मन ही मन जहीर खान के बालिंग एक्शन की कल्पना जहीर खान को व्यक्तिगत रूप से बॉल फेंकते हुए देखकर या टी.वी. पर देखने के बाद करनी होगी और उसके एक्शन की दृश्याकृति अपने दिमाग में बनानी होगी।

Bandura (1977) सुझावित करते हैं — एक आदर्श से सीखने का सबसे अच्छा तरीका है, अवलोकन किये गये व्यवहार को संज्ञानात्मक रूप से संबंधित और अभ्यास करना है और इसके बाद उस पर कार्य करना।

- **पुनः निर्माण की गतिक प्रक्रिया** — दृश्याकृति के अभ्यास के द्वारा अवलोकित व्यवहार के स्मरण के बाद व्यवहार शारीरिक कार्य के रूप में बदल जाता है। इसके लिए दो चीजों की आवश्यकता होती है। पहली, उसके द्वारा किये जाने वाले कार्य के लिए मूलभूत चीजों की आवश्यकता होती है। यदि कोई सचिन तेंदूलकर के समान बल्लेबाज बनने की इच्छा रखता है, तब एक बल्लेबाज बनने के लिए उसमें शारीरिक योग्यता/क्षमता का होना मूलभूत आवश्यकता है। यदि कोई शारीरिक रूप से कमजोर है, तो ये संभव नहीं है कि वह सचिन तेंदूलकर के समान बल्लेबाजी का अभ्यास कर सके क्योंकि उसके लिए बल्ले को उठाना और सचिन तेंदूलकर की तरह घुमाना बहुत कठिन कार्य होगा।
- अवलोकन किये गये व्यवहार को क्रियान्वित करने का दूसरा पहलू उस कार्य की श्रृंखला का वास्तव में अभ्यास करना है। दृष्याकृति की कल्पना और दिमागी रूप से अभ्यास करना भी अवलोकन कर्त्ता को उस कार्य के प्रदर्शन को स्वाभाविक बनाने में सहयोगी नहीं होगा। प्रभावशाली प्रदर्शन के लिए लगातार अभ्यास और अभ्यास पर लगातार ही पृष्ठपोषण और प्रत्येक अभ्यास के बाद गलतियों में सुधार करना आवश्यक होता है।
- **प्रेरक प्रक्रिया** — आपने कई बार ऐसे बच्चों को भी देखा होगा जो दूसरे बच्चों को देखकर बहुत अच्छी तरह सीख लेते हैं और सीखने के सभी पदों को बता भी देते हैं तथा इस कार्य को अच्छी प्रकार कर भी लेते हैं। लेकिन जब आवश्यकता होती है या किसी और समय उनसे उस कार्य को करने के लिए कहें तो वे नहीं कर पाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में क्या समुचित प्रेरणा का अभाव है। बच्चे को प्रेरित करने की आवश्यकता होती है विशेष रूप से किसी कार्य को करने के लिए स्वःप्रेरणा की आवश्यकता होती है।

सारांश रूप से कह सकते हैं कि अवलोकनात्मक अधिगम किसी आदर्शात्मक घटना के साथ शुरू होता है और अवलोकन कर्त्ता के प्रदर्शन से आदर्श के प्रदर्शन की समानता तक जाने के लिए निम्न चार प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है :—

(i) अवलोकन कर्त्ता को ध्यान देना चाहिए।

(ii) अवलोकन कर्त्ता के द्वारा दिमाग में किये गये अभ्यास एवं स्टोर किये गये विचारों के द्वारा अवलोकन किये गये व्यवहार का प्रस्तुतीकरण करना चाहिए।

(iii) अवलोकन कर्त्ता को अवलोकन किये व्यवहार का शुद्धीकरण और पुनःनिर्माण करना चाहिए यदि उसे योग्यता की आवश्यकता है।

(iv)अवलोकन कर्त्ता को समुचित प्रेरक परिस्थितियों के बीच सीखे गये व्यवहार का प्रदर्शन करना चाहिए।

SE - 4 अवलोकनात्मक अधिगम के लिए अपने विद्यार्थियों की सहायता में अध्यापक की भूमिका की व्याख्या कीजिए।

SE - 5 अवलोकनात्मक अधिगम में प्रदर्शन के लिए अपने विद्यार्थियों को प्रेरित करने के किन्हीं दो तरीकों की व्याख्या कीजिए।

4.3.3 प्रयत्न एवं त्रुटि (Trial and error)

आओ अवलोकन करें – एक बच्चा साईकिल चलाना सीख रहा है। साईकिल चलाने में पूर्णता के इस उद्देश्य को एक प्रयास में प्राप्त करना मुश्किल है। बच्चा इस कौशल में निपुणता के लिए अनेक प्रयास करता है। शुरूआत की अवस्था में वह गल्तियां करता है और धीरे–धीरे गल्तियां कम होती चली जाती है। बच्चा किसी सुनिश्चित कार्य या समस्या में अनेक प्रयास करता है और अन्त में अपने द्वारा किये गये प्रयासों का ईनाम पाता है।

जब कोई व्यक्ति किसी मुश्किल समस्या का सामना करता है जिसमें उसके पास कोई त्वरित समाधान नहीं है। तब अनेक प्रकार के समाधानों में व्यस्त हो जायेगा जब तक कोई संतोषजनक समाधान नहीं मिल जाता। दूसरे शब्दों में यह प्रयत्न एवं त्रुटि के द्वारा समस्या को हल करना है।

प्रयत्न एवं त्रुटि अधिगम का सिद्धान्त अमेरिकन मनोविज्ञानी E.L. Thorndike के द्वारा 1913 के दौरान, विभिन्न जानवरों, मुख्यतया बिल्लियों पर किये गये अनेकों प्रयोगों के बाद विकसित किया गया था। उनके बहुत से प्रयोगों में से एक मुख्य प्रयोग इस सिद्धांत को दर्शाने के लिए एक भूखी बिल्ली को पिंजरे में रखकर बाहर लटकती मछली से संबंधित है। बिल्ली को एक बटन दबाकर पिंजरे से बाहर आना है और मछली को हजम करना है। लेकिन धीरे–धीरे उसके अनावश्यक प्रयास कम हो गये और उसने सीधे ही बटन दबाया और बाहर आ गयी। इस प्रयोग से थार्नडाइक ने निम्न तीन नियमों का विकास किया।

- **अभ्यास का नियम** – किसी कार्य को बार–बार करने से वह कार्य लम्बे समय के लिए स्मरण हो जाता है। इसमें मुख्यतः दो नियम है – उपयोग करने का नियम और उपयोग ना करने का नियम। पहला उद्दीपन के संबंधों की क्षमता से संबंधित है और प्रतिक्रियाओं को बार–बार करने से संबंधित है और दूसरा पहले के विपरीत है यानि संबंध कमजोर करने से है।

- **प्रभाव का नियम** – विभिन्न प्रतिक्रियाओं में से वह प्रतिक्रिया जिसको करने से आनंद व सुख की अनुभूति होती है, वह शीघ्रता ही भुला दी जाती है। दूसरे शब्दों में जिस व्यवहार का परिणाम सुखदायी होता है, उस व्यवहार को अपना लिया जाता है। ऐसी स्थिति पुरस्कार व ईनाम की भूमिका अपनाये हुए व्यवहार को दृढ़ करने में सकारात्मक होती है जबकि सजा व तिरस्कार अपनाये हुए व्यवहार में विपरीत प्रभाव डालता है।

- **तत्परता का नियम** – प्रभावशाली अधिगम तभी होता है जब विद्यार्थी अधिगम के लिए तैयार होता है। इस नियम का शैक्षिक उपयोगिता स्पष्ट है। एक बच्चा जो किसी विशेष प्रकार के अधिगम के लिए तैयार है वह अधिगम अनुभवों से शीघ्र लाभ उठायेगा और दूसरा जो सीखने के लिए तैयार नहीं है वह उतना लाभ नहीं उठा पायेगा। इस इकाई की शुरूआत में हम अधिगम की तत्परता के महत्व के बारे में चर्चा कर चुके है और बच्चों की तत्परता की समझ में शिक्षक की भूमिका की भी चर्चा कर चुके हैं।

थार्नडाइक के इन तीन अधिगम के नियमों ने कक्षा अध्ययन में बहुत प्रभाव डाला है यद्यपि अनेकों शोधार्थियों ने अपने प्रयोगों के उपयोग में इन नियमों में अनेकों कमियां पायी है।

SE–6 प्रयत्न एवं त्रुटि सिद्धांत को सम्मुख रखते हुए, एक उदाहरण दीजिए, जिसका आपने अध्यापक होने के नाते अनुभव किया हो।

4.3.4 सहभागिता (Participation)

सहभागिता से अधिगम, करके–सीखना, अर्थपूर्ण अधिगम के लिए एक प्रभावशाली विधि है। स्वयं काम करने से वास्तविक जीवन की समस्याओं को सुलझाने के असली अनुभव प्राप्त होते हैं। इसमें कोई शक नहीं है, कि यह विधि स्व–अधिगम और स्व–आकलन को बल प्रदान करती है, जो अधिगम प्रक्रिया का अन्तिम लक्ष्य होता है। लेकिन कक्षा की स्थिति में, हमेशा व्यक्तिगत रूप से कार्य नहीं किया जाता है। इसलिए बच्चों को छोटे समूह में मिलकर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना हमेशा अधिगम के लिए लाभदायक होता है। शोध परिणाम में दर्शाते हैं कि छोटे समूहो के क्रियाकलाप में सक्रिय सहभागिता से शामिल बच्चे अधिक अच्छा परिणाम देते है। कक्षा स्थिति में समूह क्रियाकलापों की अधिक व्यवस्थाओं का प्रावधान करने से, बच्चों से अधिक सहभागिता की अपेक्षा की जा सकती है। अधिगम को बढ़ाने में सहभागिता के क्या लाभ है? आओ, चर्चा करते है–

- संदर्भात्मक स्थिति में सक्रिय और अर्थपूर्ण अधिगम।
- एक–दूसरे के बीच अनुभवों को बाँटना।
- किसी कार्य को सफलता पूर्वक पूर्ण करने के लिए सम्मिलित संसाधनों को आकर्षित करना।
- खोज करना, तर्क–वितर्क करना और समस्या को हल करने के खोजपूर्ण तथा वैकल्पिक समाधान निकालना।
- सामाजिक गुणों का विकास करना जैसे सहायता करना, बांटना, महसूस करना और जिम्मेदारियों को ग्रहण करना।
- व्यक्तिगत गुणों का विकास जैसे :– आत्मविश्वास, आत्मशक्ति, प्रश्न पूछने का साहस करना, समूह में सहभागिता करना आदि इस प्रकार के कार्य अधिगम पर सकारात्मक प्रभाव डालते है। यह देखा गया है कि वास्तविक स्थिति में, सभी समूह कार्यों में सभी विद्यार्थी समान रूप से सहभागिता नहीं कर सकते। आप कक्षा में बच्चों की सहभागिता को बढ़ाने के लिए क्या कर सकते हैं?

आप निम्न बिन्दुओं पर विचार कर सकते है :–

- आदर्श भागीदारी बढ़ाने का यह उद्देश्य नहीं हैं। जैसे–कुछ बच्चे अक्सर कक्षा में बोलते नहीं हैं वे प्रतिबिंबत प्रकार के बच्चे होते हैं जो विचारों को मुश्किल से विकसित करते हैं और बोलने से पहले उनके मन में प्रश्न होते हैं। और दूसरे शर्मीले प्रकार के बच्चे होते हैं जो समूह के सामने बोलने में असहज महसूस करते हैं। बहुत से बच्चे जो प्रायः स्वयं सेवी होते हैं वे सक्रिय विद्यार्थी होते है वे जो भी बोलते है उस पर पहले गम्भीरता से सोचते है। इसलिए ऐसी अवस्थाओं का सृजन करना आवश्यक है जिससे बच्चे को विभिन्न अधिगम अवसरों और व्यक्तित्व में सम्मिलित होने के योग्य बनाया जा सके। इसके लिए आपको अतिरिक्त कदम उठाने की आवश्यकता होगी जिससे शांतिप्रिय बच्चे मन की कहे और कई बार अधिक बोलने वाले बच्चों को चुप रहने के लिए कहे जिससे कि वो कम बोलने वाले बच्चों को भी बोलने का अवसर प्रदान करें।

छात्रों को सामूहिक चर्चा के लिए प्रशिक्षण व सहायता देने की भी आवश्यकता है। उसके लिए आप को आवश्यकता है –

- जिस प्रकार बच्चे आपस में आदान–प्रदान करें उनके लिए आदर्श रास्ता दिखाएं।

- बच्चों को अपनी भाषा में बातचीत को प्रभावित करने के लिए कुछ नियम निर्धारित करें।
- मिल जुलकर कार्य करने वाली क्रियाएं प्रदान करें जिससे सभी बच्चे सक्रिय रूप से भाग लें।
- बच्चों की सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए इस प्रकार की सामूहिक क्रियाएं मिल जुलकर करना आवश्यक है।
- प्रश्न पूछना
- साथियों से लगातार सक्रिय रूप से सहायता लेना
- विस्तृत रूप से सहायता प्रदान करना
- ये जाँच करना कि सहायता प्राप्त करने वाले दी गयी सहायता को समझ रहे है।

SE – 7 एक सक्रिय विद्यार्थी के दो मूलभूत गुणों की व्याख्या कीजिए।

4.3.5 खोज/पूछताछ के द्वारा अधिगम (Learning through discovery/enquiry)

खोज अधिगम एक पूछताछ आधारित अधिगम है। Jerome Bruner (1960) को खोज अधिगम का जन्मदाता माना जाता है। उनका मानना था कि अपने लिए खोज में अभ्यास ही सूचनाएं इस ढंग से प्राप्त करना सिखाता है जिससे सही रूप से समस्या समाधान में एकदम मदद मिलती है। खोज अधिगम उन समस्या समाधान परिस्थितियों में होता है जहाँ पर छात्र अपने ही वातावरण से आदान–प्रदान करते हुए और वातावरण की वस्तुओं का टाल–मटोल करते हुए तथा भिन्न–भिन्न प्रयोगों से सीखते है। इस विधि में विद्यार्थी सक्रिय रूप से नियम, सिद्धांत सोचते हैं और सूझ–बूझ का प्रयोग करते हुए, अपनी सोच का विकास करते हुए, उपलब्ध आंकड़ों में आपसी संबंध ढूंढ़ते हुए संगठन का आयोजन करते है।

यह विधि निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है :–

→ सक्रियता का सिद्धांत

→ तर्कपूर्ण चिंतन का सिद्धांत

→ ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने का सिद्धांत

→ उद्देश्यपूर्ण अनुभवों का सिद्धांत

→ विकल्पों की खोज का सिद्धांत

खोजबीन अधिगम में अध्यापक समस्याओं का निर्माण करता है, समाधान में सहायता करता है और बच्चों के लिए एकत्रित होकर मिलजुलकर समस्या समाधान करने की प्रक्रिया को संभव बनाता है। उदाहरण के लिए पूरी कक्षा में खोजबीन परिस्थितियों में विद्यार्थी एक वैज्ञानिक की भूमिका निभाते हुए विद्यालयी बगीचे में फूलों की गुणवत्ता व आकार बढ़ाने के वैज्ञानिक तरीके निकालते हैं। वे स्थानीय वनस्पति वैज्ञानिकों के पास फूलों के गुणों और खाद्य के बढ़ाने के वैज्ञानिक नियम सीखने के लिए जाते हैं। कुछ विद्यार्थी विभिन्न स्रोतों से बढ़ते हुए फूलों के इश्तिहार एकत्रित करते हैं। वे कार्बनिक व अकार्बनिक खाद के बारे में सूचना एकत्रित करते हैं और उपयुक्त मात्रा में आवश्यकतानुसार खाद प्राप्त करते हैं। तब वे कार्बनिक व अकार्बनिक खादों के विभिन्न अनुपात में मिलने के बारे में सोचते हुए उसे कुछ फूलों के पौधों में मिलाते हैं और उनके परिणाम की जाँच करते हैं और एक विशिष्ट संयोजन की खाद प्राप्त करते हैं और इस खाद से बड़े आकार के फूलों का निर्माण करते हैं। जिसको वे फूलों के अन्य पौधों पर भी प्रयोग करके देखते हैं और सकारात्मक परिणाम प्राप्त करते हैं।

इस उदारहण में खोजपूर्ण अधिगम एक समूह प्रयास था। खोजपूर्ण अधिगम व्यक्तिगत भी हो सकता है– आप खोजपूर्ण अधिगम के लिए कैसे प्रोत्साहित कर सकते हैं?

- आपको अपने बच्चों के कर्त्तव्य के बारे में उन्हें जानकारी नहीं देनी चाहिए। हमेशा उनके सामने समस्या रखें अथवा यदि कहीं पर कोई चर्चा का विषय है तो समस्या को पहचानने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करें। जब आप उन्हें समस्या बता देते हैं और इसे हम करने की विधि बता देते हैं तो आप उन्हें किसी समस्या की स्वयं खोजने और उसका समाधान करने के जोश से वंचित कर रहे हैं। और एक विद्यार्थी के रूप में उसकी क्षमता को बढ़ने में बाधा पहुँचा रहे हैं।

- आपके शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बच्चों को उन क्रियाकलापों में व्यस्त करके पूछताछ करना है जिनमें परिभाषित करने की प्रश्न पूछना, अवलोकन करना, वर्गीकरण करना, सामान्यीकरण करना, जाँच करना और लागू करना आदि की प्रक्रिया का विकास हो।

- आपका पाठ बच्चों की प्रतिक्रिया के आधार विकसित होना चाहिए ना कि पहले से निर्धारित एक तथाकथित तर्कपूर्ण संरचना हो। आपके पाठ योजना की पाठ्य वस्तु बच्चों की प्रतिक्रिया पर आधारित होनी चाहिए। इसलिए उनके गलत उत्तरों से, झूठे उत्तरों से व अनुपयोगी उत्तरों से परेशान मत होईए।

- बच्चों के साथ परस्पर क्रिया का आपका मुख्य उद्देश्य प्रश्न पूछना होना चाहिए। प्रश्न दोनों प्रकार के अभिसारी (एक सही उत्तर) या अपसारी (अनेक सही उत्तर) प्रकार के होने चाहिए।

- आपको बच्चों को अनेक प्रकार के उत्तर देने के लिए उत्साहित करना चाहिए। और उनसे कभी भी एक उत्तर के लिए नहीं अनेक उत्तर देने के लिए कहे, एक कारण के लिए नहीं, अनेक कारण देने को कहें, एक अर्थ देने के लिए नहीं अपितु अनेक अर्थ देने को कहें। जब आप बच्चे से केवल एक उत्तर की ही माँग करेंगे तो बच्चा संभावनाओं की खोज करना बन्द कर देगा और उनका दिमाग आगे सोचना बन्द कर देगा।

- आपको विद्यार्थी – अध्यापक परस्पर क्रिया की अपेक्षा विद्यार्थी–विद्यार्थी परस्पर क्रिया को बढ़ावा देना चाहिए। एक परंपरागत कक्षा की परस्पर क्रिया में बच्चे अन्तिम सही उत्तर के लिए अध्यापक की ओर देखते हैं। जब उन्हें अध्यापक की ओर से उत्तर मिल जाता है तो वे आगे संभावित उत्तरों की खोज बन्द कर देते हैं इससे दिमाग का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

- आपको पाठ की सफलता का मापन अपने बच्चों की खोजबीन विधि से बदलते व्यवहार से करना चाहिए जैसे प्रश्न पूछने की बारम्बारता से उपयुक्त प्रश्न पूछने में बढ़ोत्तरी, दूसरे विद्यार्थी अध्यापकों के पाठ्य पुस्तक की चुनौतीपूर्ण युक्तियां, उनकी चुनौतियों में स्पष्टता, अपनी स्थितियों को बदलने व सुधारने की उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार इच्छा, विभिन्न उत्तरों को सही करने में हिम्मत की बढ़ोत्तरी और उनका अवलोकन, वर्गीकरण व सामान्यीकरण आदि में बढ़ते हुए कौशल तथा नयी अवस्थाओं में सूचना व अपनी योग्यता व विचारों को प्रयोग करते हुए नये तरीके से सामान्यीकरण करना।

- पाठ का समापन कभी भी विद्यार्थियों के उत्तरों को संक्षेप करते हुए नहीं करना चाहिए। किसी भी प्रकार का निष्कर्ष आगे आने वाले दिमागी विचार के लिए घातक हो सकता है अतः पाठ को खुला ही छोड़ दें। आप ऐस भी कह सकते हैं कि हम अभी इस परिस्थिति में पहुँचे हैं जिसके आगे कोई मोड़ है, जिसे आप अगली कक्षा में ढूंढ़ने का प्रयत्न करें।

- यदि आप अपने विद्यार्थियों में खोजपूर्ण मस्तिष्क को विकसित करना चाहते हैं, तो ये पूर्ण रूप से आप पर निर्भर करता है। यदि आप इसे अपनाना चाहते हैं तो आपको इसे पूर्ण रूप से अपने व्यवहार और विश्वास द्वारा दर्शाना होगा। आपको स्वयं अपने विद्यार्थी के साथ कार्य करने के लिए विद्यार्थी बनना होगा।

SE– 8 खोज–बीन (Inguary) अधिगम की दो विशेषताओं पर विचार व्यक्त कीजिए।

4.3.6 समस्या समाधान (Problem solving)

एक परिस्थिति पर विचार करते हैं –

परिस्थिति – 5 गणित अध्यापिका मिस गीता ने प्रारम्भिक कक्षा में एक त्रिभुज की अवधारणा को पढ़ाया। उसने बच्चों से विभिन्न प्रकार के त्रिभुजों के बारे में पूछा। बच्चे इस प्रश्न का उत्तर देने के योग्य नहीं थे और उनके सामने एक परेशानी उत्पन्न हो गयी। वे इस दत्त कार्य को घर ले गये। उन्होंने समस्या के बारे में सोचा और भुजाओं और कोणों का विचार करते हुए विभिन्न प्रकार के त्रिभुज बनाये। उन्होनें निम्न प्रकार से परिकल्पना का निर्माण किया :–

→ भुजाएं असमान है,

→ दो भुजाएं समान है,

→ तीन भुजाएं समान है,

→ एक कोण 90^0 का है और अन्य दोनों कोणो का योग 90^0 से कम है,

→ प्रत्येक कोण 60^0 का है।

प्रत्येक परिकल्पना के अनुसार बच्चे ने त्रिभुजों को विभिन्न नाम दिये। अतः बच्चे समस्या का समाधान करने के योग्य थे।

समस्या की चुनौतियाँ बच्चों को पूर्वज्ञान का उपयोग करते हुए समाधान प्राप्त कराती है। समस्या स्पष्ट शब्दों में बच्चों के आगे रखनी चाहिए और बच्चों की समझ और उनके अनुभवों के अनुसार होनी चाहिए। बच्चे, शिक्षक की सहायता से समस्या का विश्लेषण करते हैं और समाधान प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।

अतः हम कह सकते है कि समस्या समाधान में निम्नलिखित लक्षण शामिल होते हैं –

→ उद्देश्य को प्राप्त करना।

→ उद्देश्य प्राप्ति के मार्ग में आने वाली कठिनाईयां।

→ सम्मुख आयी समस्या को हल करने की योजना बनाना और उद्देश्यपूर्ण आक्रमण करना।

→ सम्मुख समस्या के संतोषजनक समाधान तक पहुँचना और उद्देश्यों को प्राप्त करना।

→ समस्या की पहचान करना और परिभाषित करना – समस्या की उत्पत्ति, महसूस की गयी आवश्यकता व वर्तमान छात्रों की क्रियाओं तथा वातावरण क्रियाकलापों से होती है। बच्चे, समस्या को पहचानने के योग्य एवं स्पष्ट रूप से परिभाषित करने के योग्य होने चाहिए।

→ समस्या का विश्लेषण करना – समस्या का पूर्ण रूप से विश्लेषण होना चाहिए।

→ विभिन्न अवधारणाओं के बीच संबंधो की स्पष्ट रूप से व्याख्या होनी चाहिए।

→ परिकल्पना का निर्माण करना – समस्या की प्रकृति के अनुसार संभावित समाधान का निर्माण किया जा सकता है।

→ परिकल्पना की जाँच करना :– समस्या का समाधान करने के लिए प्रत्येक परिकल्पना की जाँच की जानी चाहिए।

→ परिणामों की सत्यापन करना :–

परिकल्पना की वैधता की जाँच करने के लिए कई बार समस्या के समाधान का सत्यापन किया जाता है।

बच्चों के द्वारा समस्या को प्रस्तुत करने समस्या का समाधान करने में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक की भूमिका निम्नलिखित प्रकार से है :–

→ समस्या की परिस्थिति का सृजन करना।

→ कक्षा में भय–मुक्त वातावरण का निर्माण करना।

→ समस्या को समझने परिभाषित करने और वर्णन करने में बच्चों की सहायता करना।

→ समस्या का विश्लेषण करने में बच्चों की सहायता करना।

→ परिकल्पना का निर्माण करने और उसकी जाँच करने में बच्चों को प्रोत्साहित करना।

→ बच्चों में जटिल सोच, मुक्त मस्तिष्क, पूछताछ करने का साहस और खोज का विकास करने में उनकी सहायता करना।

SE – 9 समस्या समाधान के पदों का वर्णन कीजिए।

4.3.7 अर्थपूर्ण अधिगम (Meaningful learning)

परम्परागत अध्यापक केन्द्रित पाठ्यक्रम आधारित शिक्षण में, कक्षा के सभी बच्चों को एक समान योग्यता स्तर वाला मानते हैं और वस्तुओं एवं घटनाओं का एक जैसा अर्थ निकालते हैं। अतः इस विश्वास से चलते है कि सारी कक्षा में अधिगम एक ही तरीके से संभव है। यह सत्य नहीं है, जबकि हमारा मानना है कि अधिगम अर्थ निर्माण करने वाला है। अर्थ निर्माता का उनकी शैक्षिक प्रक्रिया में समापन नहीं होता है। वह निरन्तर अपने वातावरण से आदान–प्रदान करते हुए नये अर्थ निकालता रहता है।

शिक्षक के रूप में अर्थपूर्ण अधिगम को बढ़ावा प्रदान करने के लिए आपकी भूमिका निम्न प्रकार है :–

→ कक्षा में किसी अधिगम क्रियाकलाप की शुरूआत करने से पहले आपको प्रत्येक बच्चे के क्रियाकलाप से संबंधित पूर्व ज्ञान की जानकारी होनी चाहिए।

→ पूर्व ज्ञान के अतिरिक्त आपको उनकी रूचि और प्रवृत्ति की विस्तृत जानकारी होनी चाहिए और इसके साथ–साथ बच्चे के व्यक्तित्व की विशेषताओं की जानकारी भी होनी चाहिए जो उसके अवबोधन का आचरण है।

→ आपको विद्यालय और कक्षा में सौहार्दपूर्ण वातावरण का सृजन करने की आवश्यकता है जिसमें बच्चा चर्चा किये जाने वाले बिन्दुओं पर अपने विचार स्वतंत्र रूप से रखेगा।

→ आपको प्रत्येक बच्चे के किसी बिन्दु पर अवबोधन को श्यामपट्ट पर रिकार्ड करना चाहिए ताकि सभी बच्चे सभी कथनों को देखें।

→ आपको प्रत्येक बच्चे को अपने विचारों की व्याख्या करने का अवसर का सृजन करने की आवश्यकता है ताकि प्रत्येक बच्चा प्रक्रिया में दूसरे के अवबोधन को समझ सके और उस बिन्दु पर उसे अपनी स्थिति का आकलन करने का मौका मिले और उसके द्वारा बनाये गये अर्थ को बदलना या रूपान्तरित करना चाहे तो कर सकें।

SE – 10 अर्थपूर्ण अवबोधन के महत्व का वर्णन कीजिए

4.4 शिक्षण की प्रक्रिया (Process of teaching)

हम सभी हमारे विद्यालय के दिनों से विभिन्न रूपों में शिक्षण अनुभव रखते है। लेकिन यदि कोई पूछता हैं कि ''शिक्षण क्या है?'' तो अधिक समान और सामान्य उत्तर होगा'' कक्षा में सिखाने के लिए शिक्षक जो कुछ करता है शिक्षण कहलाता है।'' जितने प्रकार के शिक्षक होते हैं उतने प्रकार के शिक्षण होते हैं। परम्परागत रूप से हमारे कक्षा के अभ्यास शिक्षक के वर्चस्व वाले होते हैं अर्थात अध्यापक केन्द्रित होते हैं। कक्षा में जो भी क्रिया घटित होती है वो शिक्षक के द्वारा निर्धारित, प्रबंधित और आकलित होती हैं कक्षा में प्रबंधित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थियों के कहने के लिए कुछ नहीं होता। विद्यार्थियों को क्या करना है शिक्षक उन्हें सूचित और निर्देशित करता है शिक्षण का अर्थ सूचनाओं, तथ्यों और विषय–वस्तु में निर्धारित परम्परागत अध्यापक केन्द्रित पाठ्यक्रम आधारित शिक्षण में, कक्षा के सभी बच्चों को एक समान योग्यता स्तर वाला मानते हैं और वस्तुओं एवं घटनाओ का एक जैसा अर्थ निकालते हैं। अतः इस विश्वास से चलते हैं कि सारी कक्षा में अधिगम एक ही तरीके से संभव है। यह सत्य नहीं है, जबकि हमारा मानना है कि अधिगम अर्थ निर्माण करने वाला है। अर्थ निर्माता का उसकी शैक्षिक प्रक्रिया में समापन नहीं होता है। वह निरन्तर अपने वातावरण से आदान–प्रदान करते हुए नये अर्थ निकालता रहता है।

शिक्षक के रूप में अर्थपूर्ण अधिगम को बढ़ावा प्रदान करने के लिए आपकी भूमिका निम्न प्रकार है :–

→ कक्षा में किसी अधिगम क्रियाकलाप की शुरूआत करने से पहले आपको प्रत्येक बच्चे के क्रियाकलाप से संबंधित पूर्व ज्ञान की जानकारी होनी चाहिए।

→ पूर्व ज्ञान के अतिरिक्त आपको उनकी रूचि और प्रवृत्ति की विस्तृत जानकारी होनी चाहिए और इसके साथ–साथ बच्चे के व्यक्तित्व की विशेषताओं की जानकारी भी होनी चाहिए जो उसके अवबोधन का आचरण है।

→ आपको विद्यालय और कक्षा में सौहार्दपूर्ण वातावरण का सृजन करने की आवश्यकता जिसमें बच्चा चर्चा किये जाने वाले बिन्दुओं पर अपने विचार स्वतंत्र रूप से रखेगा।

→ आपको प्रत्येक बच्चे के किसी बिन्दु पर अवबोधन को श्यामपट्ट पर रिकार्ड करना चाहिए ताकि सभी बच्चे सभी कथनों को देखें।

→ आपको प्रत्येक बच्चे को अपने विचारों की व्याख्या करने का अवसर सृजना करने की आवश्यकता है ताकि प्रत्येक बच्चा प्रक्रिया में दूसरे के अवबोधन को समझ सके और उस बिन्दु पर उसे अपनी स्थिति का आकलन करने का मौका मिलें और उसके द्वारा बनाये गये अर्थ को बदलना या रूपान्तरित करना चाहे तो कर सकें।

4.4.1 व्यवहारिक रूपान्तरण के लिए शिक्षण (Teaching for behaviour transformation)

हम सीख चुके हैं कि अधिगम पूर्ण रूप से व्यवहार में स्थायी परिवर्तन है। व्यवहार से तात्पर्य भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न है। कुछ लोगों का विश्वास है कि व्यवहार, उन सभी व्यक्तित्व विशेषताओं, जो व्यक्ति

में होनी चाहिए, का योग होता है। वहीं दूसरे लोगों का विश्वास है कि व्यवहार एक अवलोकन की क्रिया है जिसका व्यक्ति प्रदर्शन करता है। शिक्षण के लिए व्यवहार रूपान्तरण अधिगम दूसरे विश्वास पर आधारित है। जब हम एक बच्चे के अवलोकन युक्त व्यवहार को रूपान्तरित करते हैं या बदलते हैं, तो हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे की सीखने में मदद करते हैं।

अवलोकन किया गया व्यवहार मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है प्राप्त किया गया व्यवहार और निकाला गया व्यवहार। जब हम बच्चे को एक सामाजिक नियम व आदर्श के अनुसार किसी अलग ढंग से व्यवहार करवाना चाहते हैं तो हम उसको उसी तरह से सिखाते हुए वांछनीय व्यवहार परिवर्तन की चेष्टा करते हैं उदाहरण :– जब हम बच्चे को चाकलेट देते हुए कहते हैं भागो, तो हम बच्चे से भागने की क्रिया करने की अपेक्षा करते हैं और चाहते हैं कि वह भागे (कभी कुछ अवसरों पर आपने देखा होगा कि व्यक्ति बिना किसी बाहरी पुरस्कार के कोई विशेष व्यवहारिक क्रिया करता है, जो कि आपने पहले कभी नहीं देखा हैं ऐसे व्यवहार को हम स्वाभाविक तौर पर सीखना कहते हैं एक छोटा बच्चा एक अनजानी मीठी धुन को गुनगुना रहा है, एक विद्यार्थी एक कठिन प्रश्न को एक अस्वाभाविक विधि से हल करता है, और एक लड़की नृत्य का एक ऐसा दृश्य दिखाती है जो उसने नृत्य की कक्षा में नहीं सीखा था आदि ये कुछ उदाहरण स्वाभाविक व्यवहार या निकाले गये व्यवहार के है।

जब एक बच्चा निम्न दो अवलोकन योग्य व्यवहारों को सामान्य ग्रहण किये गये व्यवहार के रूप में प्रदर्शन के लिए तैयार करता है जैसेः– प्राप्त किया गया व्यवहार और स्वाभाविक व्यवहार , तब हम कहते हैं कि बच्चे में व्यवहार का रूपान्तरण हो गया है। व्यवहार रूपान्तरण के दो चरण हैं :– पहले चरण से संबंधित व्यवहारिक क्रियाएं बार बार जब अपेक्षा की जाये होती है। और दूसरा चरण व्यवहार सुधार को निरंतर बनाये रखने से संबंधित है ताकि वर्तमान और सीखे हुए व्यवहार में गुणवत्ता लाने के लिए और नये सुधार की आदत पक्की करने के लिए, दुहराव और सुधार किया जाता है। इस प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक अनुकूलन कहते हैं। दो मुख्य प्रकार के अनुकूलन दो प्रकार के व्यवहारों पर निर्भर करते हैं :–

1. शास्त्रीय अनुकूलन (प्राप्त किये गये व्यवहार का अनुकूलन)
2. संक्रिया अनुकूलन (स्वाभाविक व्यवहार का अनुकूलन)

शास्त्रीय अनुकूलन – 1890 के आस–पास पावलोव एक रूप के शरीर विज्ञानी ने इस दिशा में कार्य किया। उसने अपनी प्रयोगशाला में ये देखा कि भूखे कुत्ते, खाना मिलने या खाने की सुगंध लेने से पहले ही लार टपकाना शुरू कर देते थे। आश्चर्य जनक रूप से वे अपने रखवाले को देखते ही या उसके कदमों की आहट को सुनते ही अपने मुँह से लार टपकाना शुरू कर देते थे। इस साधारण अवलोकन से प्रभावित होकर पावलोव ने बड़े ध्यानपूर्वक कुछ प्रयोग किये। जिनमें घंटी का बजना शामिल है, जिसके होने से अकसर मुँह से लार का आना स्वाभाविक है। इस प्रकार के सम्मिलित प्रस्तुतीकरणों को अनेक बार करने के बाद (पहली घंटी का बजाना फिर खाना देना) कुत्ते केवल घंटी की आवाज पर ही लार टपकाने लगे यहाँ तक कि चाहे उन्हें खाना भी ना दिया जाये।)

पावलोन के प्रयोगों में घंटी एक अनुकूल उद्दीपन है, खाना एक प्राकृतिक या स्वाभाविक उद्दीपन और खाने को देखकर लार का टपकना एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है, वही घंटी के बजने पर लार का टपकना एक अस्वाभाविक या अनुकूलन प्रतिक्रया है। शुरूआत में, लार के टपकने के लिए घंटी का बजना एक तटस्थ उद्दीपन (जो किसी प्रतिक्रिया से उत्पन्न नहीं होता) है। साधारण शब्दों में, एक उद्दीपन या एक परिस्थिति किसी अनजान उद्दीपन से जोड़ने पर जो व्यवहार उत्पन्न होता है उसे शास्त्रीय अनुकूलन कहते हैं। इसे प्रत्युत्तर अनुकूलन भी कहते हैं, क्योंकि प्रकटीकरण व्यवहार एक उद्दीपन की प्रतिक्रिया के कारण है।

शास्त्रीय अनुकूलन कक्षा अभ्यास में बहुत अधिक स्पष्ट है, प्रत्येक समय के अनुकूल है और एक ही समय में अन्य प्रकार के अधिगम का विचार किये बिना जारी रहती है। और अधिकतर इन्हीं अचेतन प्रक्रियाओं के द्वारा ही विद्यार्थी विषय एवं अध्यापकों को पसंद या ना पसंद करना शुरू कर देते हैं। उदाहरण–एक विद्यालय का विषय एक तटस्थ उद्दीपन है जो शुरूआत की सोच में छोटी भावात्मक प्रतिक्रियाओं को ताजा करता है जो बच्चे के लिए नयी है। अध्यापक, कक्षा अथवा कोई और विशेष उद्दीपन एक अनुकूलित उद्दीपन का कार्य कर सकता है। अनुकूलित उद्दीपन सुखदायक भी हो सकता है (जैसे हवादार, आरामदायक कक्षा, एक मित्रवत अध्यापक) तथा दुखदायक भी (अंधेरा और गर्म कमरा, एक गुस्से वाला सख्त अध्यापक) हो सकता है। निम्नलिखित विशेष उद्दीपन के साथ जुड़े हुए क्रमागत मामले, अनुकूलन उद्दीपन के साथ जुड़े हुए भावनाएं और प्रवृत्ति, विद्यालय के कुछ पहलुओं को शास्त्रीय अनुकूलन बनाते हैं।

संक्रिया अनुकूलन :– संक्रिय अनुकूलन, विस्तृत रूप से B.F.Shinner (1940) द्वारा चूहों और कबूतरों पर किये गये असंख्य प्रयोगों का निष्कर्ष है। साधारण शब्दों में, सक्रिय अनुकूलन शारीरिक इन्द्रियों (निकाला गया व्यवहार संक्रिया कहलाता है) के द्वारा निकाला गया व्यवहार का पुनर्बलन है। जिससे कि इसकी ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती है। पुनर्बलन और व्यवहार के बीच संबंध की खोज से और ये स्पष्ट करना कि व्यवहार इसके परिणाम को कैसे प्रभावित करता है, स्किनर विशेष रूप से संबंधित है।

स्किनर अपने दो महत्वपूर्ण पदों ''सुदृढ़ करना एवं पुनर्बलन में अन्तर करता है। उदाहरण–एक ईनाम या भोजन सुदृढ़ करता है और जब किसी प्रतिक्रिया या परिणाम को निकालने के लिए भोजन प्रस्तुत किया जाता है वह पुनर्बलन है। किसी निकाले गये व्यवहार की घटना और निकाले गये व्यवहार के रूपान्तरण के द्वारा व्यवहार को आकार देना भी, विभिन्न प्रकार के पुनर्बलन प्रदान करके संभव किया जा सकता है। यद्यपि पुनर्बलन दो प्रकार के है – सकारात्मक और नकारात्मक।

सकारात्मक पुनर्बलन – (ईनाम) सकारात्मक पुनर्बलन में निकाले गये व्यवहार के बाद सुखदायक उद्दीपन दिये जाते हैं जो व्यवहार की घटना को दृढ़ता प्रदान करते हैं। जब एक अध्यापक बच्चों को देखकर मुस्कुराते हैं और उन्हें कुछ अच्छे शब्दों से पुकारते हैं, उनके कार्य की प्रशंसा करते हैं, उनको अच्छे अंक देते हैं, इसका तात्पर्य है कि वह अध्यापक सकारात्मक पुनर्बलन का उपयोग करता है।

ऋणात्मक पुनर्बलन (आराम) –नकारात्मक पुनर्बलन तब होता है जब निकाले गये व्यवहार के साथ किसी अप्रिय उद्दीपन को दूर किया जाता है इससे निकाले गये व्यवहार की घटना बढ़ जाती है। सजा की धमकी, फेल होना, छुट्टी के बाद रोक कर रखना, शर्मिन्दा करना, मजाक उड़ाना आदि के द्वारा कक्षा में अध्यापक विद्यार्थी के साथ दुखदायक उद्दीपन के रूप में उपयोग करते हैं। जब इनका निवारण हो जाता है तो विद्यार्थियों को सुख मिलता है और वह अपने व्यवहार में सुधार लाते हैं। आपके लिए यह जानना आवश्यक है कि दण्ड़ प्रक्रिया पुनर्बलन नहीं है। दंड या तो दुखदायक उद्दीपन प्रस्तुत करता है या एक सुखदायक उद्दीपन को निकाल देता है जिसके कारण बच्चों को शारीरिक और भावात्मक दोनो तरह से दुख पहुँचता है। कक्षा में शारीरिक दंड देना, डाँटना, चेतावनी देना और छुट्टी के बाद बच्चों को रोकना आदि विद्यालयों में दिये जाने वाले कुछ दंड के उदाहरण है।

सक्रिय अनुकूलन शिक्षण की विभिन्न तकनीकियों को विकसित करने में लागू किया जा चुका है। योजनाबद्ध अधिगम या योजनाबद्ध निर्देशन और हाल ही में चलायी गयी कम्प्यूटर सहायक अधिगम उनमें से मुख्य है।

व्यवहार रूपान्तरण उपागम की उपयोगिता–व्यवहार रूपान्तरण अधिगम नीचे दिये गये विभिन्न सामान्य कक्षा अभ्यासों के उपयोग से हमें जागरूक बनाता है –

- व्यवहार सुधार के सभी सिद्धांतों से यह स्पष्ट है कि अधिगम में अभ्यास की महत्वपूर्ण भूमिका है।
- अभ्यास बिना पुनर्बलन किये अधिगम को नहीं बढ़ाता।
- पुनर्बलन में बदलाव व्यवहार सुधार में मदद करता है।
- अप्रिय व्यवहार को समाप्त करने में सजा अधिक प्रभावशाली नहीं है।
- कार्य में रूचि और सुधार अधिगम के लिए चालक की तरह है। व्यवहार रूपान्तरण उपागम की सबसे बड़ी अलोचना यह है कि इसमें केवल बाहर से दिखायी देने वाली व्यावहारिक क्रिया पर ध्यान दिया जाता है। और उसी को अधिगम का प्रतीक समझा जाता है। यह जानवरों और छोटे बच्चों के लिए तो उपयुक्त है। लेकिन बढ़ती उम्र के साथ मानसिक विकास और अवलोकनात्मक व्यवहार किसी व्यक्तिगत की वास्तविक धारणा को प्रतिबिम्बत नहीं कर सकता। एक विद्यालयी आयु का बच्चा कुछ व्यवहारों को केवल सजा से बचने के लिए और दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रदर्शित करता है। अतः दिखायी देने वाले व्यवहार रूपान्तरण से यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक अधिगम हुआ है।

SE – 11 संक्रिया अनुकूलन द्वारा व्यवहार रूपान्तरण के क्या तरीके है?

SE – 12 नकारात्मक पुनर्बलन और सजा में क्या अन्तर है?

4.4.2 संज्ञानात्मक विकास के लिए शिक्षण (Teaching for cognitive learning)

संज्ञानात्मक का शाब्दिक अर्थ ''जानने की कला'' है। सामान्यतया यह जानने, समझने, प्रक्रियाओं और सूचनाओं के उपयोग करने से संबंधित है तथा इनको मानसिक योग्यता या बुद्धिमता के घटक के रूप में समझा जाता है। संज्ञानात्मक विकास वाले के बौद्धिक विकास में जुड़ी हुई अवस्थाओं व प्रक्रियाओं से संबंधित है।

संज्ञानात्मक विकास के अनेकों सिद्धांत हैं। इन सभी सिद्धांतों के बीच में पियाजे का सिद्धांत संज्ञानात्मक विकास की जन्म से लेकर 14–15 वर्ष की आयु तक की विस्तृत तस्वीर प्रदान करता है जबकि संज्ञानात्मक चरम सीमा पर होता है। अवस्थाओं की श्रृंखला के अनुसार पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास का अनुमान लगाया है तथा प्रत्येक अवस्था को कुछ निश्चित प्रकार के व्यवहारों और कुछ निश्चित तरीके से सोचने एवं समस्या समाधान के द्वारा इनकी विशेषता को बताया है।

सभी विशिष्ट अवस्थाओं की आयु को चार विस्तृत अवस्थाओं के अनुसार समूहित किया गया हैः–

→ संवेदी–गत्यात्मक काल (0 से 2 वर्ष की आयु तक)

→ पूर्व–संक्रिया काल (2 से 7 वर्ष की आयु तक)

→ स्थूल–संक्रिया काल (7 से 11 या 12 वर्ष की आयु तक)

→ औपचारिक–संक्रिया काल (11 या 12 से 14 या 15 वर्ष की आयु तक)

प्रत्येक अवस्था पर बच्चे के व्यवहार की विशेषताओं का वर्णन आपके विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक स्तर को समझने के लिए एक शिक्षक के रूप में आपकी सहायता के हिसाब से महत्वपूर्ण हो सकता है। अधिगम की किसी भी अवस्था के लिए संज्ञानात्मक स्तर को जानना महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिगम बच्चे के सोचने के तरीके से, कारणों एवं प्रक्रियाओं की सूचना से मुख्य रूप से प्रभावित होता है। संज्ञानात्मक विकास की चारों अवस्थाओं की कुछ मुख्य विशेषताएं तालिका–1 में नीचे दी गयी है।

तालिका–1

संज्ञानात्मक विकास की पियाजे की चार अवस्थाएं

अवस्था	सन्निकट आयु	कुछ मुख्य विशेषताएं
संवेदी–गत्यात्मक काल	0 से 2 वर्ष की आयु तक	• बुद्धिमत्ता संबंधित गत्यात्मक क्रियाकलाप • वर्तमान और नजदीक की घटनाओं व वस्तुओं से संबंध • ना ही कोई भाषा और ना ही कोई विचार • किसी वस्तु की वास्तविकता का कोई विचार नहीं
पूर्व–संक्रिय काल या पूर्व– अवधारणा काल या सहज बोधनीय काल	2 से 7 वर्ष की आयु तक	• अहं केन्द्रित विचार
	2 से 4 वर्ष की आयु तक	• ग्रहण बोध के आधार पर तर्क वितर्क
	4 से 7 वर्ष की आयु तक	• तर्कपूर्ण समाधान की अपेक्षा सहज बोध से समाधान करना • संरक्षित करने के अयोग्य
स्थूल संक्रिय काल	7 से 11 या 12 वर्ष की आयु तक	• संरक्षण करने की योग्यता • वर्ग व संबंधो के बारे में तर्क देना • संख्याओं को समझना • स्कूल वस्तुओं और अनुभवों को समझना • विचारो में विरोधाभास का विकास।
औपचारिक संक्रिया काल	11 या 12 से 14 या 15 वर्ष की आयु तक	• विचारों में सम्पूर्ण सामान्यीकरण • वैचारिक अभिव्यक्ति की सोच • परिकल्पित विचारों एवं स्थितियों के साथ संबंध बनाने की योग्यता • सशक्त आदर्शवाद का विकास

(Source : Lefrancois 1994 P 60)

पियाजे के सिद्धांत हमे बताते हैं कि बच्चा मानसिक संज्ञानात्मक संरचना के साथ जन्म लेता है। जिसकी अधिकतम वृद्धि और विकास 14–15 वर्ष की आयु तक हो जाता है। संज्ञानात्मक विकास के चारों अवस्थाओं के दौरान मुख्य चलन निम्न प्रकार के है –

→ जीवन के पहले दो वर्षों के दौरान, बच्चा अपने क्रियाकलापों का प्रदर्शन अधिकांशतः अपनी ज्ञानेंद्रियों के द्वारा करता है और कुछ गत्यात्मक क्रियाकलाप भी करता है। इस अवस्था में शिशु किसी वस्तु को देखकर, सुनकर, छूकर, स्वाद या गंध के द्वारा उस वस्तु की अनुभूति करता है और जब वो वस्तु उससे दूर कर दी जाती है तो तुरन्त उसकी ज्ञानेन्द्रियां उस वस्तु के ना होने का अनुभव कर लेती है।

→ संवेदी गत्यात्मक काल के अन्त होने की ओर, बच्चा अपने चारों ओर की वस्तुओं को पहचानने लगता है और दूसरो की क्रियाओं की नकल कर सकता है। और इसके बाद की अवस्था पर बच्चा किसी वस्तु या क्रिया को देखने के बाद उसकी अनुपस्थिति में भी उसकी नकल कर सकता है। इससे ये अर्थ निकलता है कि बच्चा किसी क्रिया को बड़ी गम्भीरता से देखता है, उसे समझता है और इसके बाद उसकी नकल करता है। सुनिश्चित क्रिया बुद्धिमता पूर्ण क्रियाकलाप का एक भाग है।

→ पियाजे संक्रिय को तर्कों के निश्चित नियमों के आधार पर एक मानसिक क्रियाकलाप के रूप में परिभाषित करते है पियाजे के अनुसार 7 वर्ष की आयु से पहले संक्रिया सत्य रूप में प्रतीत नहीं होती है। लेकिन भाषा की योग्यता का विकास होने के साथ बच्चा पूर्व–संक्रिया काल के दौरान अपरिकृत तरीके से निष्कर्ष निकालने की कोशिश करता है। ये तर्क क्षमता मुख्य रूप से पूर्व तर्क, स्व केन्द्रित और उसके अर्न्तज्ञान की स्थिति होती है और मुख्य रूप से भावनाओं और जोश से संचालित होती है।

→ बुद्धिमता की शुरूआत मुख्य रूप से पूर्व–संक्रिया काल के समाप्ति के दौरान लगभग 6–7 वर्ष की आयु पर होती दिखायी देती है। (संयोग से ये समय विद्यालय जाने का शुरूआत का समय होता है।) यह स्थूल संक्रियकाल 7 से 11 या 12 वर्ष की आयु के दौरान का समय है, जिससे बच्चा पूर्व–तर्क से बनाया गया विचार वास्तविक, स्थूल वस्तुओं एवं घटनाओं में लागू करता है। इस काल के दौरान स्थूल वस्तुओं एवं घटनाओं में हस्तकौशल करने के साथ तीन महत्वपूर्ण योग्यताओं का विकास होता है। वे है, संरक्षण वर्गीकरण और श्रेणीकरण।

संरक्षण – संरक्षण से यह तात्पर्य है कि कोई भी संख्या या मात्रा तब तक नहीं बदली जा सकती जब तक कि उसकें कुछ जोड़ा या घटाया नहीं जाता चाहे वस्तुओं या वस्तुओं के भण्डार की स्थिति या स्थान बदलता रहे। उदाहरण–संख्याओं के संरक्षण की जाँच को, मोतियों के ढेर के द्वारा समझाया जा सकता है जो नीचे दिये गये है –

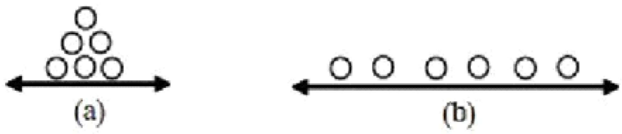

आकृति–1 मोतियों की व्यवस्था यदि पूर्व संक्रिया काल में इन दो व्यवस्थाओं को बच्चों को दिखाया जाता है तो लगभग सभी बच्चे ढेर (b) में अधिक मोती बतायेंगे क्योंकि अभी तक उनकी संख्याओं को संरक्षण करने की योग्यता का विकास नहीं हुआ है। क्षेत्रफल, आयतन आदि समान संरक्षण क्रियाएं यही बताती है कि इस योग्यता का विकास बच्चों में स्थूल संक्रिया काल में ही होता है।

वर्गीकरण – वस्तुओं की समानता एवं विभिन्नता के अनुसार समूहीकरण करना वर्गीकरण कहलाता है। इसमें, वस्तुओं की विभिन्न विशेषताएं जैसे आकार, आकृति रंग, वजन, उपयोग, सामग्री आदि तुलनाएं वर्गीकरण में शामिल होती है। एक पूर्व–संक्रिया काल में बच्चा वस्तुओं का वर्गीकरण करने के योग्य नहीं होता है और एक ही समय में दो वस्तुओं से अधिक की तुलना नहीं कर सकता है।

श्रेणीकरण – एक समान वस्तुओं को एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित करने की योग्यता (बढ़ते या घटते क्रम में) श्रेणीकाल कहलाती हैं

इन तीनों के अतिरिक्त, संख्याओं को समझने की योग्यता वर्गीकरण एवं श्रेणीकरण का प्रत्यक्ष उत्पाद है, जो स्थूल संक्रिया काल के दौरान विकसित होता है।

→ औपचारिक संक्रिय काल की अवस्था संज्ञानात्मक विकास की अन्तिम अवस्था है। यह इसलिए औपचारिक है क्योंकि जिन मामलों से बच्चा अब तक संबंधित हो सकता वो मुख्य रूप से काल्पनिक

या परिकल्पना पर आधारित तथा स्थूल वस्तुओं एवं घटनाओं से स्वतंत्र एवं अमूर्त्त है। इस अवस्था में सोचन की प्रक्रिया में वचनवद्ध तर्क शामिल होते हैं जैसे – ''यदि, तब... '' कुछ इस प्रकार के तर्क जैसे 'यदि $A>B$ से और $B>C$ से, तक A और C के बीच क्या संबंध है? इस प्रकार की समस्याएं जिनमें अमूर्त एवं वचनबद्ध तर्क शामिल है, बच्चा स्थूल संक्रिया काल में हल नहीं कर सकता है।

लेव विजोस्की (lev Vygotsky) एक प्रसिद्ध रूसी मनोवैज्ञानिक ने संज्ञानात्मक विकास के अपने सिद्धांतों में अपने दो तत्वों को शामिल किया। उसने संज्ञानात्मक विकास पर संस्कृति और भाषा के प्रभाव पर बल दिया। उनके अनुसार–सस्कृति के बिना हमारा दिमागी कार्य एक बन्दर के समान प्रारम्भिक मानसिक क्रियाओं तक सीमित है। संस्कृति और एक स्वस्थ्य विकसित भाषा के तत्वों के साथ गहन परस्पर किया के साथ, हम उच्च मानसिक क्रियाओं जैसे सोचने, तर्क करने, स्मरण करना आदि इसी प्रकार की क्रियाओं के योग्य बन जाते है।

आगे विजोस्की वर्णन करते हैं कि बच्चा भाषायी कार्य के विकास में तीन अवस्थाओं से गुजरता है :–

1. सामाजिक (बाहरी) भाषण–(3 या 4 वर्ष की आयु से पहले) दूसरों को नियंत्रित करने के लिए विस्तृत रूप से उपयोग या साामान्य अवधारणा की अभिव्यक्ति।
2. अहम केंद्रित भाषण – (3 से 7 वर्ष की आयु तक)– इसमें बच्चा अक्सर अपने बारे में बात करता है और ऊँचे स्वर में बोलता है। इसमें बच्चा स्वयं अपने व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करने की भूमिका निभाता है।
3. अंदरूनी मन के अन्दर भाषण (7 वर्ष से ऊपर की आयु) यह एक बिना बोला हुआ संवाद होता है जो विचारों और व्यवहार को नियंत्रित करता है।

विजोस्की विद्यालयों में भाषा संबंधी क्रियाकलाप और कक्षा में अन्दर या बाहर पाठ्यक्रम की परस्पर क्रिया में सांस्कृतिक तत्वों को समेकित करने का मजबूती के साथ तर्क देता है।

जब प्राथमिक विद्यालय के बच्चों के बारे में विचार करते हैं तो उनमें से अधिक बच्चे स्थूल संक्रिया काल के होते हैं और वे उच्च प्राथमिक विद्यालय के बच्चे होते हैं वे औपचारिक संक्रिया काल के होते हैं। इसलिए आपको अपने शिक्षण व्यूह रचना को विकसित करने की आवश्यकता है जिससे कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास सुनिश्चित हो। निम्नलिखित कुछ बातें ध्यान देने योग्य है :–

→ आपकी शिक्षण व्यूह रचना में एक अच्छी साम्यवस्था बनाने की आवश्यकता है (भाषा में पियाजे का साम्यीकरण) पूर्व अनुभवों, पुराने अधिगम और व्यवहार के बीच संतुलन के रूप में धारण करना और नये परिवर्तन को बनाना, इस प्रकार संतुलन कायम रखना बालक को व्यवहार व क्रियाओं में परिवर्तन के सामंजस्य में मदद करता है।

→ अधिगम अनुभव प्रदान करते हुए बालकों के परिपक्वता स्तर को भी पहचानने की आवश्यकता है। परिपक्वता जन्मजात गुणों को निखारती है जो हमें उपयुक्त अधिगम साधन जुटाने में मदद करती है। आप बच्चे को तब ऊँचे स्वर में गाना गाने के लिए नहीं कह सकते जब तक कि उसके गाने के लिए अंग विकसित नहीं हो जाते जो कि परिपक्वता के दौरान ही होते हैं।

→ संज्ञानात्मक विकास बच्चे के दैनिक दिनचर्या की क्रियाओं, वास्तिवक वस्तुओं व घटनाओं के अनुभव पर आधारित है। इसलिए बालकों के शारीरिक व मानसिक, वास्तविक घटनाओं व वस्तुओं से संबंधित बहुत सारी क्रियाओं के लिए साधन जुटाने में मदद करनी चाहिए, विशेष रूप से औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था से पहले।

→ सामाजिक परस्पर क्रिया दूसरों के और स्वयं के विचार जानने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार की परस्पर क्रिया अधिकतर शाब्दिक भाषा योग्यता के विकास में मदद करती है और संबंधों को समझने में भी सहायक होती है। यह दोनों ही संज्ञानात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

→ एक अध्यापक के लिए बच्चों को समझना आवश्यक है। जब बच्चा पहले दी गयी आकृति (a) में यह कहता है कि आकृति (b) में अधिक मोती है, हम बच्चे के भाव को स्पष्ट नहीं समझ सकते और यह निर्णय निकालना भी ठीक नहीं है कि उसने कोई गलती की है। इसकी अपेक्षा हमे यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि बालक उसे ठीक से क्यों नहीं समझता तब शायद हम योग्यताओं को बेहतर तरीके से समझ पायेंगे अपेक्षाकृत सीधे–साधे उत्तर सुझाने के। इस विधि से हम बालकों की क्षमताएं व कमियों को जान सकेंगे और बच्चे के मानसिक विकास में उपयुक्त युक्तियां दे पायेंगे।

→ भाषा हमारे विचारों को अभिव्यक्त करने का प्राथमिक संकेत है। इसलिए बच्चों को बोलने के अधिक अवसर प्रदान करने से उनके संज्ञानात्मक विकास में भी सहायक नहीं बल्कि उनकी अभिव्यक्ति के द्वारा उनके विचारों को समझने में सहायता मिलती है।

SE–13 **हमें बच्चों को प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने के लिए अधिक शिक्षण अधिगम सामग्री क्यों प्रदान करनी चाहिए।**

SE-14 **बच्चे के संज्ञानात्मक विकास के लिए समूह अधिगम का क्या महत्व है?**

4.4.3 अनुभव निर्माण के लिए शिक्षण (Teaching for experiential learning)

एक विद्यार्थी अपने ज्ञान का निर्माण अपने वातावरण के साथ परस्पर क्रिया के आधार पर करता है। संरचनात्मक अधिगम के आधार पर दो पूर्वानुमान निम्नलिखित है :–

→ वातावरण से बच्चें की सक्रियता से ही ज्ञान की संरचना होती है ना कि अक्रियता से।

→ वातावरण से प्राप्त बच्चे के अनुभवों के द्वारा लगातार रूपान्तरित एवं स्वीकार आधारित प्रक्रिया, जानने के लिए आना है।

यह ध्यान रखिए, कि नयी चीज को सीखने में बच्चे का अनुभव महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक समस्यात्मक स्थिति को हम करने के क्रम में और नये अनुभवों की संरचना में या नये ज्ञान के निर्माण को ये प्रक्रिया कैसे घटित होती है?

ज्ञान के निर्माण की ये प्रक्रिया निम्नलिखित प्रेरणा से घटित होती है :–

→ नये विचारों को पूर्व ज्ञान/अनुभवों से जोड़ना नये ज्ञान को संरचित करना है। यदि कोई वस्तुओं की गिनती जानता है तो वह उसे जोड़ना सीखने में प्रयोग कर सकता है। लेकिन इस अवस्था में सीधे प्रतिशत नहीं सीख सकता। अपने नजदीक वातावरण में बहुत सी घटनाओं व वस्तुओं से खेलते हुए व्यक्ति अपनी मानसिक छवि का विकास करता है और जब कभी उसका नयी वस्तु से पाला पड़ता है तो वह पहले से प्राप्त ज्ञान के आधार पर इसकी व्याख्या करता है।

→ अवधारणाओं के आपसी सह संबंधों पर ध्यान केंद्रित करने से नये विचारों व ज्ञान की संरचना होती है। यदि संबंधित अवधारणाओं के बीच समानता व असमानता के संबंध को स्थापित कर सके तो नयी वस्तुओं का अधिगम और सुविधाजनक व सार्थक हो जायेगा।

→ अधिगम की आरम्भिक अवस्था में मानसिक छवि बनाना और आपसी अंतःसंबंधों की मुख्य प्रक्रिया है। मान लो, बच्चा एक नयी वस्तु जो संतरे से मिलती जुलती है, को देखता है। और कुछ देर बाद यदि वह नयी वस्तु का संबंध संतरे से नहीं जोड़ सका तो वह अपने में छवि बना लेता है, और कुछ देर बाद वही वस्तु उसके लिए नयी हो जाती है। अतः दूसरे शब्दों में मानसिक छवि बनाना ही ज्ञान संरचना है।

→ सामाजिक समूहों में परस्पर क्रिया अथवा सामाजिक विषय, अधिगम को सार्थक बनाने में सहायक होते हैं। सामाजिक परस्पर क्रिया बच्चे को विभिन्न सांसारिक वास्तविक समस्याओं को समझने में मदद करती है, वह प्रश्न पूछता है, दूसरों के प्रश्नों का उत्तर देता है, समस्या पर ध्यान केंद्रित करता है, समस्या की बहुतत्वीय व्याख्या के बारे मे ंसमझता है, और अंततः समस्या का संपूर्ण मानसिक स्वरूप बनाकर उस समस्या का मानसिक रूप से समाधान करने का प्रयास करता है। इस प्रकार समस्या के विभिन्न पहलुओं के मानसिक चित्रण के फलस्वरूप समाधान नये ज्ञान की संरचना के रूप में निकलता है।

एक अध्यापक के नाते अपने विद्यार्थियों के ज्ञान संरचना में आपकी क्या भूमिका है?

→ बिना आदेश दिये उन्हें नयी अवधारणाओं को सीखने में मदद करना।

→ कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी के पूर्व अनुभव के प्रति संवेदन शीलता।

→ विद्यार्थी को वास्तविक सांसारिक कार्य करने के लिए देना।

→ नजदीकी वातावरण से जितना संभव हो सके विषय वस्तु व अनुभव प्रदान करना।

→ अधिगम को वास्तविक, संबंधित व समय अनुकूल बनाने के लिए वास्तवित सांसारिक वस्तुओं और अनुकूलित वातावरण प्रदान करने की कोशिश ना कि पूर्व निर्धारित निर्देशित विषय वस्तु।

→ वास्तविक सांसारिक समस्या सुलझाने व वास्तविक युक्तियों पर ध्यान केंद्रित करना।

→ किसी भी समस्या समाधान के लिए बहुपक्षीय नजरिया रखने पर, प्रोत्साहन करते हुए विभिन्न समाधान खोजना।

→ विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने की अनुमति देना और उन्हें बुद्धिमता पूर्ण प्रश्न उठाने के लिए प्रोत्साहित करना।

→ मन ही मन में सोचने का अभ्यास विकसित करना। बुद्धिमता पूर्ण प्रश्न पूछने की कला को उकसाने से छात्र अंदर ही अंदर मन में सोचते है।

→ कक्षा में सदभावना पूर्वक मिलजुलकर अधिगम को बढ़ावा देना।

→ विद्यालय के अन्दर की क्रियाओं को विद्यालय के बाहर की क्रियाओं से जोड़ना।

→ अपने अधिगम की वृद्धि का स्वयं विश्लेषण व स्वयं जाँच करना।

SE - 15 पूर्व ज्ञान की नयी ज्ञान संरचना में क्या भूमिका है?

4.5 सारांश (Summary) :

- अधिगम एक प्रक्रिया है, जो कि व्यक्ति के व्यवहार, ज्ञान की आदतों और व्यक्तित्व के उन पहलुओं पर एक स्थायी परिवर्तन करता है, जो कि जीवन की अपेक्षाओं को पूर्ण करने के लिए आवश्यक है।
- अधिगम एक सतत अन्र्तराष्ट्रीय, उद्देश्यपूर्ण व सक्रिय प्रक्रिया हैं जिसके कारण व्यक्ति वातावरण से परस्पर क्रिया करता है।
- अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक अधिगम और परिपक्वता, सीखने की तत्परता, अधिगम वातावरण, अधिगम और प्रेरणा, आन्तरिक प्रेरणा, बाह्य प्रेरणा।
- थार्नडाइक ने प्रयत्न और त्रुटि के लिए तीन नियम विकसित किए है – अभ्यास का नियम, प्रभाव का नियम, तत्परता का नियम।

4.6 अभ्यास के प्रश्न :

1 किसी एक पाठ प्रदर्शन उपरान्त सूक्ष्म अवलोकन कर यह पता लगाईए कि अलग–अलग विषयों को सीखने के क्या तरीके होते हैं और कैसे सीखता है?

2 अधिगम के उद्देश्य एवं अधिगम प्रक्रिया की समझ शिक्षण पूर्व क्यों व कैसे जरूरी होता है ?

3 खोज/पूछताछ, समस्या समाधान तथा अर्थपूर्ण अधिगम की व्याख्या कीजिए?

4 सक्रिया कक्षा एवं सक्रिय विद्यार्थी, कक्षा–कक्ष शिक्षण अधिगम एवं आकलन प्रक्रिया के लिए क्यों महत्वपूर्ण होता है ? उदाहरण देकर समझाइए।

5 ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में पूर्व ज्ञान की क्या भूमिका होती है तथा यह ज्ञान सृजन में कितना मद्दगार होता है ?

6 समस्या समाधान के पदों को समझाने के लिए किन्ही दो परिस्थितियों की खोज–बीन कीजिए ?

●●●

इकाई – 5

शिक्षण और अधिगम की विधियाँ

(Methods of Teaching and Learning)

5.0 प्रस्तावना (Introduction)

हाँलाकि कक्षा संचालन प्रक्रिया में शिक्षण अधिगम को प्रभावकारी बनाने के लिए कई विधियाँ और तकनीकियाँ हैं जिससे, एक अध्यापक होने के नाते, आप शायद परिचित होंगे। इस इकाई में कई प्रकार के शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया जिसका उपयोग कक्षा में किया जाता हैं, के बारे में संदर्भगत, उचित और प्रासंगिक, किस प्रकार बना सकते हैं, को ध्यान में रखकर, चर्चा की गई है।

5.1 अधिगम उद्देश्य (Learning objectives)

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य होंगे कि –

- शिक्षण–अधिगम परिस्थिति में इस्तेमाल किये जाने वाले प्रभावकारी विधियों की विशेषताओं की सूची बना सकेंगे।
- दिये हुए परिस्थितियों में से कक्षा संचालन की विधियों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- विद्यार्थी–केंद्रित विधियों और अनुदेशात्मक विधियों की प्रक्रिया और चरणों की समझ बना सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षण अधिगम परिस्थतियों के लिए विभिन्न उचित विधियों का उपयोग कर सकेंगे या अपना सकेंगे।

5.2 शिक्षण और अधिगम की प्रभावकारी विधियाँ (Effective methods for teaching and learning)

एक विशेष शिक्षण–अधिगम परिस्थिति का वर्णन नीचे दिये गया है इसे ध्यान से पढ़कर इसके पश्चात दिये गये प्रश्नों का उत्तर स्वयं खोजने का प्रयास करें।

परिस्थिति – 1, सुबीर एक विज्ञान अध्यापक है, पिछले तीन महीनों से वह कक्षा VI में विज्ञान विषय का अध्यापन कर रहे थे। विभिन्न अवसरों पर उसने अपने पाठों को विद्यार्थियों के लिए रूचिकर बनाने का उत्तम प्रयास किया। वह विभिन्न प्रकार की सामग्री कक्षा में लेकर आये, कई प्रयोगों का आयोजन किया, विद्यार्थियों को प्राकृतिक घटनाओं का अवलोकन करने के लिए उत्साहित किया, और इसी प्रकार के और कियाकलापों का उपयोग विद्यार्थियों को प्रभावकारी ढंग से सीखने के लिए किया। वह इस बात को जानने के लिए बहुत उत्सुक था कि वह अपने प्रयासों में कितना सफल रहा। वह विश्वस्त नहीं था कि उनके द्वारा अपनायी गयी विधियाँ क्या वास्तव में विद्यार्थियों के लिए लाभकारी हैं। उनके मस्तिष्क में कई प्रश्न उठे। कुछ प्रश्न नीचे दिये हैं।

- क्या वह योग्य था

→ विद्यार्थियों में स्वतः स्फूर्त, विज्ञान सीखने के लिए, रूचि उत्पन्न करने में?

→ विद्यार्थियों की व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने में?

→ विद्यार्थियों की मानसिक योग्यताओं के अनुरूप?

→ विद्यार्थियों की आत्मविश्वास और आत्म अनुशासन को विकसित करने में?

→ विद्यार्थियों के सृजनात्मक विचार को प्रेरित करने में?

→ विद्यार्थियों को उनके ज्ञान को व्यवस्थित करने में सहायता करने में?

→ अधिगम प्रक्रिया में भाग लेने के लिए विद्यार्थियों को उत्साहित करने में?

• क्या विद्यार्थी कुछ करके बेहतर ढंग से सीखते हैं?

आपने अपनी कक्षा में कई विधियों का शायद उपयोग किया है? अभी हाल ही में आपने कोई विधि का उपयोग किया होगा उसको ध्यान में रखते हुए उपरोक्त प्रश्नों पर विचार करें और अपने अध्यापन की प्रभावकारिता के बारे में निर्णय करें। इससे आपको शिक्षण अधिगम की विधि की विशेषताओं के बारे में एक विचार बनाने में सहायता मिलेगी, जो कि निम्न प्रकार से है –

- विद्यार्थियों में रूचि उत्पन्न करना ताकि वे शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भागीदारी करें और सीखने के लिए सतत प्रयास करें।
- विद्यार्थियों की आवश्यकताओं और मानसिक योग्यताओं के अनुरूप हों।
- विद्यार्थियों के अनुभव पर आधिक बल देना।
- सहपाठियों के साथ सीखने के लिए कार्यक्षेत्र उपलब्ध करना।
- करके सीखने के लिए कार्यक्षेत्र उपलब्ध कराना।
- विद्यार्थियों को स्वतंत्ररूप से सोचने के लिए और ज्ञान का स्वसृजन करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- बच्चों में सृजनात्मक चिंतन का विकास करना।
- बच्चों में जीवन कौशल का विकास करने के लिए कार्यक्षेत्र उपलब्ध कराना।
- सभी विषयवस्तु के शिक्षण के लिए केवल एक ही विधि का उपयोग करने के बजाय लचीला तरीका अपनाने शिक्षण अधिगम के दौरान विभिन्न विधियों का उपयोग किया जा सकता है।

5.2.1 विधियों का वर्गीकरण (Classification for methods)

आइए दो विभिन्न कक्षा परिस्थितियों पर विचार करते हैं –

परिस्थिति – 2, रमेश कक्षा III के विद्यार्थियों को विज्ञान विषय पढ़ा रहे थे। विषयवस्तु ''जल का प्रदूषण''। विद्यार्थी कक्षा में पंक्तिबद्ध बैठे थे। रमेश विद्यार्थियों के सामने खड़े होकर पानी के प्रदूषित होने के कारणों की व्याख्या कर रहे थे तथा साथ ही साथ वह पानी के विभिन्न स्रोतो में होने वाले प्रदूषण के कारणों से संबंधित चित्र भी विद्यार्थियों को दिखा रहे थे। उन्होंने यह जानने का प्रयास कभी नहीं किया कि क्या विद्यार्थियों को उनकी बातें समझ में आ रही है या नहीं। उसने विद्यार्थियों से कुछ प्रश्न पूछे कुछ विद्यार्थी प्रश्नों के उत्तर दे पाये। कक्षा के अंत में उसने विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तक में दिये गये अभ्यास कार्य को गृहकार्य के रूप में दे दिया।

परिस्थति – 3, सरिता इसी विषय वस्तु को दूसरे सेक्शन में पढ़ा रही थी लेकिन पूर्णतः अलग ढंग से। उसने विद्यार्थियों को अलग–अलग समूह में विभाजित करके उन्हें वृत्ताकार में बैठने को कहा। उसने प्रत्येक समूह को जल के विभिन्न स्रोतों में प्रदूषण के कारणों को लिखने के लिए निर्देश दिया। सरिता यह देख रही थी कि क्या प्रत्येक विद्यार्थी चर्चा में भाग ले रहा है या नहीं। इसके पश्चात प्रत्येक समूह के समूह लीडर को दिये गये कार्य पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा। एक समूह के प्रस्तुतीकरण के दौरान दूसरे समूह

उसे सुनते थे तथा प्रस्तुतीकरण के पश्चात उस पर अपना विचार व्यक्त करते थे। अन्त में सरिता ने विद्यार्थियों के सहयोग से प्रकरण को एकीकृत किया।

परिस्थिति 2		परिस्थिति 3	
अध्यापक की भूमिका	विद्यार्थियों की भूमिका	अध्यापक की भूमिका	विद्यार्थियों की भूमिका

अब निम्नांकित प्रश्नों का उत्तर दीजिये –

किस परिस्थिति में अध्यापक की भागीदारी अधिक है?

किस परिस्थिति में विद्यार्थियों की भागीदारी पर अधिक बल दिया गया है? प्रथम परिस्थिति में अध्यापक सभी कार्य करता है जैसे प्रकरण की व्याख्या करना, शिक्षण अधिगम सामग्रियों का उपयोग करना अर्थात चित्र, प्रश्न पूछना आदि। विद्यार्थियों की भागीदारी को कम महत्व दिया गया। दूसरी ओर, द्वितीय परिस्थिति में अध्यापक अधिगम सुगमकर्त्ता के रूप में कार्य करती है। वह आवश्यकता पड़ने पर विद्यार्थियों की सहायता करती है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी होती है।

अतः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अध्यापक और विद्यार्थियों की भूमिका के आधार पर इनकी विधियों को दो मुख्य श्रेणीयों में वर्गीकृत किया गया है। अर्थात अनुदेशात्मक विधियाँ और विद्यार्थी अनुकूल विधियाँ। प्रथम परिस्थिति अनुदेशात्मक विधि का उदाहरण है जबकि द्वितीय परिस्थिति विद्यार्थी अनुकूल विधि है। एतएव इन दो विधियों को निम्नांकित दिये गये आरेख के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है।

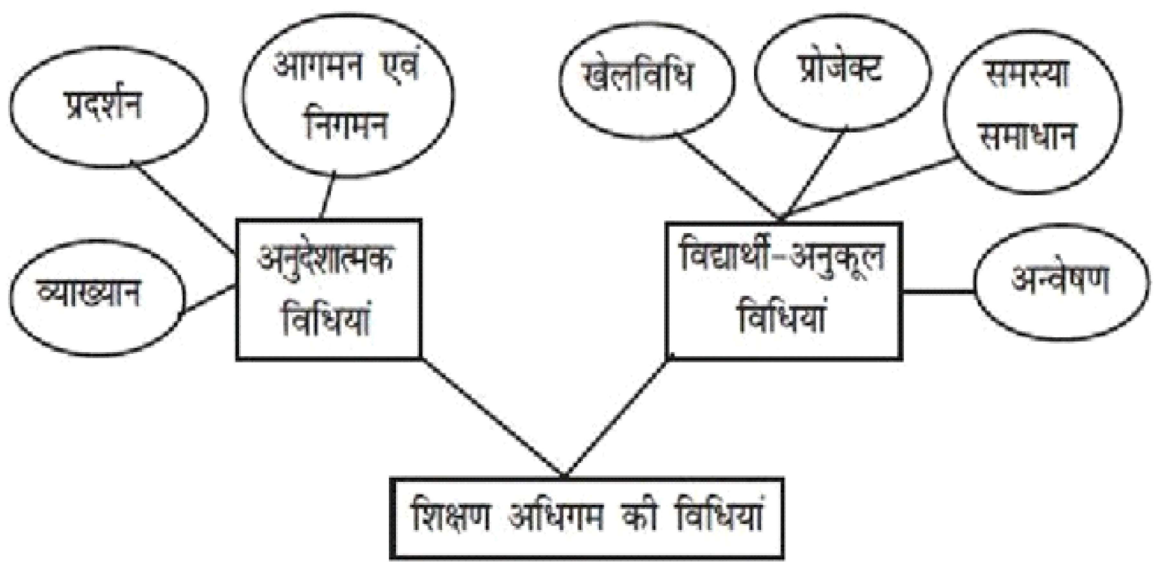

आकृति 5.1 कक्षा संचालन की विधियों का वर्गीकरण

5.3 अनुदेशात्मक विधियाँ (Instructional methods)

हम सभी को कक्षा में विद्यार्थियों को निर्देश देने में या पढ़ाते समय प्रायः अनुदेशात्मक विधियों के बारे में अनुभव है। ये विधियाँ हमारे लिए सामान्य है। कभी हम तथ्यों, अवधारणाओं, सिद्धान्तों और नियमों की

व्याख्या करते हैं तो कभी चित्रों, चार्ट, प्रतिरूपों और प्रयोगों का प्रदर्शन करते हैं या कभी हम विद्यार्थियों को निदेश देते हैं कि पूछे गये प्रश्नों का उत्तर मौखिक या लिखित में दें इन विधियों में एक अध्यापक के रूप में शिक्षण अधिगम के दौरान अधिक सक्रिय होते हैं जबकि विद्यार्थी अधिक निष्क्रिय होते हैं और सीमित रूप से ही सक्रिय रहते है जैसा कि उन्हें हमारे द्वारा उन्हें निर्देशित किया जाता है। अनुदेशात्मक विधियों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं –

व्याख्यान विधि, आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियाँ, बातचीत विधि, व्याख्यान – प्रदर्शन विधि।

5.3.1 व्याख्यान विधि (Lecture method)

निम्नांकित परिस्थिति को ध्यान से पढ़े

परिस्थिति–4, लीलिमा विज्ञान के एक पाठ 'हमारा भोजन' को कक्षा IV में पढ़ा रही है। वह विभिन्न प्रकार के भोजन जिसे हम खाते है उनके तथा उसके अवयवों के बारे में व्याख्यान कर रही है। वह मुख्य बिंदुओं जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और वसा को श्यामपट पर लिख रही है। विद्यार्थी ध्यान पूर्वक सुन रहे हैं और श्यामपट पर लिखे हुए मुख्य बिंदु को अपनी कापी में लिख रहे हैं। विषय वस्तु की व्याख्या करने के पश्चात वह विद्यार्थियों से प्रश्न पूछना शुरू करती है। कुछ विद्यार्थियों ने प्रश्नों का उत्तर दिया जबकि कुछ विद्यार्थी चुप रहते है। वह विद्यार्थियों के गलत उत्तरों को सुधारती है तथा सही उत्तर देने वाले विद्यार्थियों के गलत उत्तरों को सुधारती है तथा सही उत्तर देने वाले विद्यार्थियों की प्रशंसा करती हैं।

लीलिमा किस विधि का अनुकरण करती है?

वह व्याख्यान विधि का अनुकरण कर रही है।

विद्यार्थी के रूप में आपने इस तरह अनुभव अपने विद्यालय और कॉलेज में किया है। अध्यापक के रूप में आप अपनी कक्षा में विद्यार्थियों को पढ़ाते समय इस विधि का प्रयोग करने का अनुभव होगा। अपने अनुभव पर चिंतन करे और कक्षा परिस्थिति में व्याख्यान विधि में अध्यापक और विद्यार्थियों की क्रियाकलाप की सूची बनायें।

व्याख्यान विधि की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं :

- अध्यापक संपूर्ण पीरियड में विषय वस्तु पर व्याख्या देते या निर्देशन देते हैं।
- अध्यापक सूचना, अवधारणायें, तथ्यों, सिद्धांतों, नियमों को उपलब्ध कराता है।
- कभी–कभी वह व्याख्यान के दौरान श्यामपट का उपयोग करते हैं और विद्यार्थियों से प्रश्न पूछते हैं।
- विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता होते हैं। व्याख्यान विधि के दौरान उनका क्रियाकलाप अधिक से अधिक नोट लिखने तक सीमित होता है और कभी–कभी अध्यापक के प्रश्नों का उत्तर देते हैं।
- एक पीरियड के भीतर में अध्यापक, हो सकता है जरूरत से अधिक सूचना विद्यार्थियों को उपलब्ध कराये जिसे विद्यार्थी आत्मसात नहीं कर सकता है। इसके अतिरिक्त यह विधि विद्यार्थियों की प्रगति का वास्तविक रूप से जाँच नहीं करती है। अध्यापक अपनी गति से विषयवस्तु को प्रस्तुत करता है।
- पाठ्यवस्तु को एक ही बार में प्रस्तुत किया जाता है और विद्यार्थी सुनकर और याद करके सीखते हैं।
- यह विधि प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों और अध्यापकों क लिए प्रासंगिक नहीं लगती है।

5.3.2 प्रदर्शन विधि (Demonstration method)

एक अध्यापक के रूप में आप जानते है कि प्राथमिक स्तर की विज्ञान पाठ्यपुस्तक में कई सरल प्रयोगों को प्रदर्शित किया/लिखा गया है। इन प्रयोगों को कक्षा में किया जा सकता है और साथ में व्याख्या भी की जा सकती है। इस तरह के शिक्षण को प्रदर्शन विधि या प्रदर्शन–सह–व्याख्यान विधि या कभी–कभी व्याख्यान–सह–प्रदर्शन विधि कहते हैं।

प्रदर्शन विधि अध्यापक केंद्रित विधि हैं क्योंकि अध्यापक चित्र/चार्ट माडल/प्रयोगों का प्रदर्शन करता है और इन प्रदर्शित सामग्रियों या प्रक्रिया से संबंधित अवधारणाओं, नियमों की व्याख्या करते है। विद्यार्थी अध्यापक द्वारा दिखाये गये प्रदर्शन का अवलोकन करते हैं तथा अध्यापक द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देने में और निष्कर्ष निकालने में कुछ विद्यार्थी भाग लेते हैं।

आओ एक और परिस्थिति पर विचार करते हैं।

परिस्थिति – 5, विज्ञान अध्यापकि शीला को कक्षा V में 'जड़ों द्वारा जल का अवशोषण' को पढ़ाना था। इसके लिए शीला ने कुछ सरल प्रयोग करना चाहा उसने आवश्यक सामग्रियों को एकत्रित किया जैसे–फूल की टहनी, कांच का बीकर, बीकर में पानी और पानी को रंगीन बनाने वाले रंग। बीकर में रखे हुए, लाल रंग के पानी में उन्होंने टहनी के जड़को डुबाकर विद्यार्थियों को दिखाया और साथ में प्रयोग की प्रक्रिया की व्याख्या की। प्रदर्शन के दौरान उन्होंने श्यामपाट पर कुछ महत्वपूर्ण शब्द लिखे तथा प्रयोग का नामांकित चित्र बनाया। इसके पश्चात उन्होंने विद्यार्थियों से पूछा कि कुछ देर के लिए पौधे की जड़ को लाल रंग के पानी में डूबाया तो उन्होंने क्या अवलोकन किया और इस प्रयोग से आप क्या निष्कर्ष निकालते हैं।

प्रदर्शन विधि के विभिन्न चरण इस प्रकार से हैं –

(क) योजना

(ख) परिचय

(ग) प्रदर्शन

(घ) श्यामपट उपयोग

(ड) अवधारणाओं का संग्रह

सफलतापूर्वक प्रदर्शन के लिए प्रत्येक चरण में कई मानदंडों का अनुकरण किया जाता है –

- **योजना बनाना**

  → यह सुनिश्चित करें कि यह पाठ इस विधि के लिए उपयुक्त है।

  → प्रदर्शन के लिए आवश्यक उपकरणों, औजार सामग्रियों को एकत्रित करना ।

  → कक्षा में प्रदर्शन से पहले प्रयोग को करके देखना चाहिए इससे विश्वास के साथ आप प्रदर्शन कर सकते है।

  → प्रदर्शन के दौरान तथा उसके पश्चात उपयोग आने वाले व्याख्यात्मक नोट एवं प्रश्न तैयार कर लेना चाहिए।

- **परिचय**

  → विद्यार्थियों को प्रयोग को ध्यानपूर्वक अवलोकन करने के लिए रूचि उत्पन्न करने के लिए और प्रदर्शन के पश्चात नये अवधारणाओं को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करें।

→ पाठ को एक समस्या या मुद्दे के रूप में परिचय करायें ताकि विद्यार्थी पाठ के महत्व को समझ सके।

- **प्रदर्शन**

→ प्रदर्शन के दौरान विद्यार्थियों की जिज्ञासा को बनाये रखें।

→ यह सुनिश्चित करें कि विद्यार्थी प्रदर्शन का अनुकरण करने के योग्य है।

→ विद्यार्थियों के जीवन अनुभव से प्रदर्शन को जोड़ें।

→ उपकरणों को ठीक प्रकार से उपयोग में लाये और प्रदर्शन हेतु व्यवस्थित रूप से उनके निश्चित स्थान पर रखें।

- **श्यामपट कार्य**

→ विद्यार्थियों को प्रदर्शन के महत्व को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए श्यामपट पर प्रदर्शन के उद्देश्यों को स्पष्ट लिखें।

→ प्रासंगिक चित्र बनाकर मुख्य अवधारणाओं को और प्रदर्शन के निष्कर्ष को तुरंत ही श्यामपट पर लिखें।

→ विद्यार्थियों को मुख्य बिंदुओं को लिखने, चित्र बनाने और निष्कर्ष को अपनी कापी में लिखने के लिए कहें।

→ विद्यार्थी जब अपनी कापियों में लिख रहे हों उस समय उनकी कापियों की जाँच करें।

उपरोक्त लिखित बिंदुओं के अतिरिक्त आपको निम्नांकित पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता हैः

- विद्यार्थियों को प्रदर्शन के प्रयोजन को बतायें परन्तु प्रदर्शन के निष्कर्ष या अनुमान के बारे में पहले से न बतायें।
- प्रयोग करने के लिए आवश्यक तैयारी करने में विद्यार्थियों की सहायता लें। आप और विद्यार्थी सक्रिय रूप से प्रायोगिक कार्य में भाग लेंगे तो इससे प्रदर्शन की गुणवत्ता बेहतर होती है।
- उपकरणों को सावधानीपूर्वक उपयोग करने का अभ्यास कर लें तथा एक निश्चित क्रम में उपकरणों को रखें ताकि विद्यार्थी उसे स्पष्ट रूप सें देख सकें।
- जाँच करें कि प्रदर्शन सभी विद्यार्थियों को स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहा है।
- सुनिश्चित करें कि प्रदर्शन सरल और विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के अनुरूप हो।
- प्रदर्शन को वास्तविक ओर रूचिकर बनाने के लिए अन्य शिक्षण सामग्री का उपयोग करें।
- विद्यार्थियों की रूचि बनाये रखने के लिए उनसे विचारणीय प्रश्न पूछें।

सोचिये और निम्नांकित का उत्तर दीजिए :

SE -1 किन परिस्थितियों में प्रदर्शन विधि उपयुक्त है?

प्रदर्शन विधि की उपयोगिता

प्रदर्शन विधि, अध्यापक का एक पसंदीदा विधि है क्योंकि इसके कई लाभ हैं –

→ यह महंगी नहीं है, क्योंकि अध्यापक इसका प्रदर्शन करता है और यह समय बचाती है।

→ अध्यापक प्रदर्शन के दौरान अवधारणाओं को समझाता है जिससे विद्यार्थी पाठ के अवधारणाओं को स्पष्ट रूप से समझ सकें।

→ प्रदर्शन के दौरान विद्यार्थियों के शंकाओं का निवारण अध्यापक द्वारा उसी समय और जगह किया जाता है।

→ प्रदर्शन के दौरान विद्यार्थियों को निम्नांकित अवसर प्राप्त होते हैं :–

- अवलोकन
- नोट बनाने में
- प्रश्न करना
- आरेख बनाने में
- प्रयोग में भागीदारी

→ यह विद्यार्थियों में ध्यान बनाये रखने को बढ़ावा देता है ध्यानभंग कम होता है और उपयोगी अधिगम के लिए रास्ता बनाता है।

→ यह अधिगम के लिए प्रेरित करता है और विद्यार्थियों की रूचि बनाये रखने का प्रयास करता है।

5.3.3 आगमनात्मक और निगमनात्मक विधि (Inductive and Deductive method)

हम सभी ने अपने विद्यालय में गणित के कुछ आधारभूत सूत्र के बारे में सीखा है। क्या आपको उनमें से कुछ सूत्र याद हैं? नीचे दिये सूत्रों को देखिये तथा इस सूची में याद करके कुछ और सूत्र जोड़िये।

- आयत का परिमाप ज्ञात करने के लिए सूत्र है $2(a+b)$ जहाँ पर a और b क्रमशः आयात की लम्बाई और चौड़ाई है।
- एक त्रिभुज के अंतः कोणों के मापों का योग सदैव दो समकोणों के बराबर होता है।
- $V = s/t$ जहाँ V= गति, S = चली गई दूरी, t = चली गई दूरी पूरा करने में लगा समय है।

एक अध्यापक के रूप में आप या आपके सहयोगी प्राथमिक कक्षाओं में इन सूत्रों को पढ़ा रहे होंगे। इन सूत्रों को किस तरह पढ़ाते हैं।

इन सूत्रों/नियमों को पढ़ाने की कुछ विधियाँ हैं। आओ इन विधियों की चर्चा उदाहरण के साथ करें–

परिस्थिति – 6 : मनोज कक्षा VI में गणित पढ़ाते हैं। एक दिन उन्होंने ज्यामितीय अवधारणा ''यदि एक त्रिभुज की दो भुजाएं बराबर हैं तो उनके विपरीत कोण भी बराबर होते है'' पढ़ाया। इसके लिए उन्होंने प्रत्येक विद्यार्थी को तीन समद्विबाहु त्रिभुज ABC अपनी कापियों पर इस प्रकार आरेक्षित करने के लिए कहा कि AB=AC हो। प्रथम त्रिभुज के लिए AB=AC=6 से.मी. द्वितीय त्रिभुज के लिए AB=AC=8 से.मी. और AB=AC=10 से.मी.। इसके पश्चात उन्होंने विद्यार्थियों को प्रत्येक त्रिभुज के बराबर भुजाओं के विपरीत कोणों को माप करके निम्न सारणी में उन मापों को लिखने को कहा।

त्रिभुज का नाम	कोण **A**	कोण **B**	टिप्पणी
प्रथम त्रिभुज			
द्वितीय त्रिभुज			
तृतीय त्रिभुज			

कोण मापने पर विद्यार्थियों ने पाया कि प्रत्येक त्रिभुज के समान भुजाओं के विपरीत कोण भी बराबर हैं। इससे उन्होंने ये निष्कर्ष निकाला कि एक त्रिभुज के बराबर भुजाओं के विपरीत कोणों की माप भी बराबर होते हैं।

मनोज ने गणितीय अवधारणा पढ़ाने के लिए जिस अधिगम विधि का उपयोग किया उसे आगमनात्मक विधि या आगमन की विधि कहते हैं। इस विधि में एक विशेष घटना से सामान्यीकृत निष्कर्ष पर पहुंचते है। एक सूत्र या सामान्यीकरण निष्कर्ष पर एक विश्वस्त प्रक्रिया के माध्यम से जिसमें कई स्थूल केस में समान तत्वों और समानता की शर्तों को पहचान कर पहुँचते हैं। उपरोक्त उदाहरण में समान तत्व एक त्रिभुज के विपरीत कोणों की माप है और समान शर्त है कि त्रिभुज एक समद्विबाहु त्रिभुज है। तथा संबंधित कोण दो समान भुजाओं के विपरीत कोण है।

परिस्थिति 7 : जिस अवधारणा को मनोज पढ़ा रहे थे उसी को मीना भी पढ़ा रही थी। सबसे पहले उन्होंने गणितीय संबंध का वर्णन किया –

''यदि एक त्रिभुज की दो भुजाएं बराबर हैं तो उनके विपरीत कोण भी बराबर होते है'' इसके पश्चात कुछ उदाहरणों के माध्यम से विपरीत कोणों की माप और उनके सम्मुख बराबर भुजाओं के बीच में संबंध को समझाया। जब विद्यार्थियों ने संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली तो उन्होंने समझाये गये संबंध का इस्तेमाल करके निम्नलिखित प्रश्नों को हम करने के लिए कहा।

1. यदि एक त्रिभुज ABC मे, AB=AC और A=70^0 तो $\angle B$ और $\angle C$ का मान ज्ञात करें।
2. त्रिभुज PQR में PQ=PR, और $\angle Q=65^0$ तो $\angle P$ व $\angle R$ ज्ञात करें विद्यार्थियों ने सूत्र का उपयोग करके प्रश्नों को हल किया।

मीना ने जिस विधि से अवधारणा को सिखाया उसे निगमनात्मक विधि या निगमन की विधि कहते हैं।

इस विधि में अध्यापिका ने स्थापित सूत्र, नियम, या समान्यीकरण का उपयोग करके समस्या समाधान करती है। विद्यार्थी सामान्य से विशेष, मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ते हैं। दूसरे शब्दों में स्थापित सूत्र के अनुप्रयोग के द्वारा तथ्यों का निगमन या विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार विद्यार्थियों ने सूत्र को स्थापित तथ्य के रूप में स्वीकार किया।

क्रियाकलाप 4 :

प्राथमिक गणित पाठ्यपुस्तक से कोई एक अवधारणा चुनें और किस प्रकार आगमनात्म्क निगमनात्मक विधि से इसे पढ़ाया जा सकता है? वर्णन करें।

आगे बढ़ने से पहले निम्नांकित का उत्तर दीजिये।

SE – 2 आगमनात्मक और निगमनात्मक शिक्षण विधि के बीच क्या अंतर है?

SE – 3 आगमनात्मक और निगमनात्मक विधि के बारे में नीचे कुछ कथन दिये हैं। कथनों को ध्यापपूर्वक पढ़कर आगमनात्मक विधि के लिए I और निगमनात्मक विधि के लिए D संबंधित कथन के सामने लिखें।

(क) यह सूत्र/नियम/अवधारणा से शुरू होता है और समस्या के हम पर समाप्त होता है।

(ख) यह उदाहरण के साथ शुरू होता है और सूत्रों/नियमों/अवधारणाओं पर समाप्त होता है।

(ग) यह विशेष स्थित और विचार का वास्तविक अवलोकन करने के लिए उत्साहित करता है।

(घ) यह विधि प्राथमिक शिक्षा के निम्न कक्षाओं के लिए उपयुक्त है।

(ङ) यह विधि समस्या समाधान में प्रयोग योग्य है।

(च) इसमें अधिक व्यय होता है।

उपरोक्त चर्चा से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आगमन विधि विद्यार्थियों को मूर्त्त तत्वों/वस्तुओं या कथनों में संबंधों को अवलोकन के आधार पर सामान्यीकरण करने के पश्चात् निष्कर्ष निकालने के लिए अग्रसर करता है। आगमन के माध्यम से निकाला गया निष्कर्ष सही या वैध है इसे आगमन को पुनः उपयोग करके सत्यापित नहीं किया जा सकता है। वरन इसकी जाँच केवल निगमन विधि द्वारा किया जा सकता है। आगमन के माध्यम से आप अपने विद्यार्थियों की संबंधों या नये अवधारणाओं का अन्वेषण करने में सहायता करते हैं और निगमन के माध्यम से आप उनकी सहायता खोजे गये संबंधों या अवधारणाओं की सत्यता की जाँच करने में करते हैं। इस प्रकार प्रभावकारी अधिगम के लिए दोनों विधियों का इस्तेमाल करना चाहिए क्योंकि एक के बिना दूसरा अपूर्ण है।

5.4 विद्यार्थी अनुकूल विधियाँ/विद्यार्थी केन्द्रत विधियाँ (Child centred methods)

क्या आपने कभी मनोरंजनपूर्ण अधिगम या क्रियाकलाप पर आधारित कोई अध्यापक प्रशिक्षण में भाग लिया है? यदि हाँ क्या आपको याद है इनमें कार्य जगत खेल से भरा होता है। सभी बच्चे खेलना पसंद करते हैं, खेल बच्चों का नैसर्गिक स्वभाव है। यह उनकी आवश्यकताओं की प्राकृतिक अभिव्यक्ति है। यह एक बच्चे के शारीरिक, संज्ञानात्मक सामाजिक और भावानात्मक वृद्धि का विकास करता है। परन्तु खेल और कार्य के बीच क्या अंतर है? खेल और कार्य भिन्न है, एक व्यक्ति के लिए जो कार्य वह दूसरे व्यक्ति के लिए खेल हो सकता है। माली के लिए बगीचे का रखरखाव करने का कार्य उसके जीवनयापन का स्रोत है, जबकि वही कार्य एक युवा विद्यार्थी का शौक बन जाता है जब वह अपने सृजनात्मक इच्छाओं की संतुष्टि के लिए यह कार्य करता है। नीचे कार्य और खेल के बीच अंतर स्पष्ट किया गया है।

कार्य	खेल
इसे कठिन समझा जाता है।	यह आनंददायक है।
इसे दूसरों के द्वारा थोपा जाता है।	स्वैच्छिक रूप से स्वीकार भागीदारी के साथ करते हैं।
शारीरिक कार्य थकावट उत्पन्न करता है।	शारीरिक कार्य आनंददायक अनुभव प्रदान करता है।
कार्य में अधिक ध्यान केंद्रित करने से थकावट होता है।	अधिक ध्यानमग्न परन्तु बिना थकावट के
यह नियंत्रित होता है।	स्वतंत्रता अधिक होती है।

आप कोई भी परिचित खेल का विश्लेषण करें और व्यक्तिगतरूप से या समूह में अन्य अध्यापकों के साथ विचार करें कि खेल में पाठ्यक्रम के अवधारणाओं को किस प्रकार जोड़ें ताकि विद्यार्थी खेल का आनंद लेते हुए अवधारणाओं को भी सीख सके। इस प्रकार के शिक्षण के तरीके को खेल विधि कहते हैं।

एक खेल में क्या तत्व होते हैं जिसके कारण बच्चे कई अवधारणाओं को आसानी से आपके अनुपस्थिति में सीखते हैं? विचार करके उन तत्वों की सूची बनायें।

आकृति 5.2 में दिये गये तत्वों के साथ आप अपने सूची की तुलना करें।

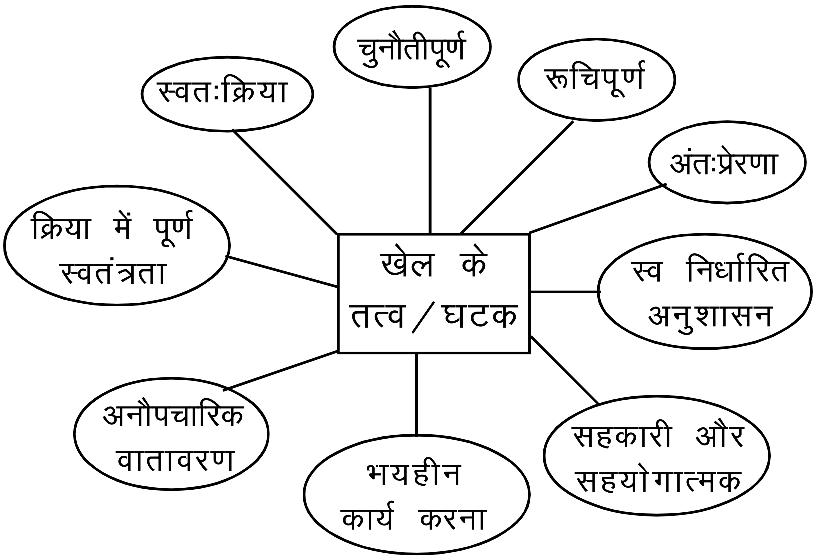

आकृति 5.2 खेल के तत्व

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि खेल विधि का निम्नांकित लाभ है :

- खेल खेलना बच्चों की स्वाभाविक प्रकृति है। वे न केवल खेलों में स्वतःस्फूर्त रूप से भाग लेते हैं बल्कि यदि उन्हें स्वतंत्रता दी जाये तो वे प्रभावकारी ढंग से खेल का आयोजन कर सकते हैं।
- बच्चे नये खेल का सृजन कर सकते हैं, वे खेल को खेलने के लिए नियम बनाते हैं और स्वःनिर्मित अनुशासन का कड़ाई से अवलोकनन करते है।
- यह बच्चे में सृजनात्मक कौशलों को पोषित करने में सहायता करता है साथ ही साथ कई जीवन कौशलों जैसे समस्या समाधान नेतृत्व क्षमता, तर्क पूर्ण ढंग से सोचना, स्वःअभिव्यक्ति, संप्रेषण कौशल, सहकारी अधिगम, समूह में रहना आदि का विकास करता है।
- अधिगम स्वाभाविक, आनंददायक और ऊर्जावान अनुभवकारी होता है।
- यह बच्चों को उनके शारीरिक, भावात्मक और संज्ञानात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अवसर उपलब्ध कराता है।
- यह विद्यार्थी–अध्यापक और विद्यार्थी–विद्यार्थी संबंधों को सुदृढ़ बनाता है।

खेल विधि के सिद्धांत (Principle of play method) :

खेल विधि निम्नांकित सिद्धांतों पर आधारित है –

- अन्तः शक्तियों का अभिव्यक्तिकरण का सिद्धांत : यह एक स्थापित तथ्य है कि एक बच्चा कुछ अंतर्निहित शक्तियों के साथ जन्म लेता है और जैसे बच्चा बड़ा होता है वैसे वह शक्तियों का अभिव्यक्ति करना प्रारंभ करता है यदि उसे शक्तियों को प्रकट करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध कराया जाये। यदि बच्चे के ऊपर प्रतिकूल परिस्थितियों को थोपा जाता है तो ऐसे शक्तियों के विकास की प्रक्रिया धीमी हो जाती है या अत्यधिक विषम परिस्थितियों में शायद शक्तियों का विकास बिल्कुल ही नहीं होता है। खेल विधि का लक्ष्य है एक बच्चे के अंतर्निहित शक्तियों को पहचानना, पोषित करना और उसे अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान करना है।

- नैसर्गिक स्वभाव का सिद्धांत : प्रत्येक व्यक्ति अपने नैसर्गिक स्वभाव के द्वारा निर्देशित होता है। खेल प्रत्येक बच्चे की स्वाभाविक प्रकृति है। बच्चे को खेल के द्वारा सीखा गया कोई भी चीज स्वाभाविक लगता है। और वह उसे शीघ्रता और प्रभावकारी ढंग से आत्मसात कर लेता है। खेल विधि इसलिए इस नैसर्गिक स्वभाव को पहचानता है और विशेषकर बच्चों को नये अनुभव प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

- पूर्ण स्वतंत्रता का नियम : यदि एक बच्चे को उसके कार्य करने में पूर्ण–स्वतंत्रता दी जाये तो वह अपने अंतःशक्तियों अभिव्यक्त करता है और अधिक नये अनुभव कम समय में प्राप्त करता है। बच्चे के ऊपर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध लगाने से उसके स्वाभाविक वृद्धि रूक जाती है। बच्चों को पूर्ण–स्वतंत्रता प्रदान करना खेल विधि का मुख्य सिद्धांत है।

- क्रियाकलाप का सिद्धांत : शिक्षा और मनोविज्ञान में किये गये शोध कार्यों ने यह तथ्य स्थापित किया है कि एक बच्चा बेहतर ढंग से सीखता है यदि वह सक्रिय रूप से किसी कार्य में भाग लेता है। बिना किसी क्रियाकलाप के निष्क्रियतापूर्वक सुनना रटकर सीखने की प्रवृति को बढ़ाता है। खेल के द्वारा बच्चा स्वतःस्फूर्ति सक्रिय हो जाता है।

- इच्छापूर्ति का सिद्धांत : प्रत्येक बच्चा अपने आंतरिक इच्छाओं और प्रवृत्तियों द्वारा चालित होता है जिसे वह शायद सदैव वर्णन करने योग्य नहीं होता है। जब वह पर्याप्त स्वतंत्रता और नभ्यता प्राप्त करता है तो वह अपने इच्छाओं और इरादों को पूरा करने के लिए असीमित अवसर प्राप्त करता है। इसके विपरीत यदि बच्चों पर अधिगम उद्‌देश्य के संदर्भ में कोई बाह्य बंधन लगाया जाता है तो उसके स्वाभाविक वृद्धि में रूकावट/बाधा उत्पन्न हो सकती है। खेल विधि इस प्रकार के बाह्य प्रतिबंधों से रहित स्वतंत्रता उपलब्ध कराती है।

- आनंद का सिद्धांत : कोई भी चीज जो आनंद प्रदान करता है उसे आसानी से सीखा जाता है। बच्चों के सभी क्रियायें आनंद और पीड़ा के सिद्धांत के द्वारा संचालित होता है इसका अर्थ है कि बच्चा आनंददायक कार्यों को करना पसंद करता है तथा पीड़ादायक कार्यों से बचने का प्रयास करते हैं। इसलिए खेल विधि से बच्चे आनंदपूर्वक आसानी से सीखते हैं तथा यह लम्बे समय तक बच्चों को याद रहता है।

- सृजनात्मकता का सिद्धांत : बच्चे खेल खेलना पसंद करते हैं लेकिन वे एक ही प्रकार के खेल से वे जल्दी ही ऊब जाते हैं तथा नये, वैकल्पिक खेल तलाशते हैं। बदलाव की इच्छा उन्हें अपने खेल में नवीनता लाने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार एक बच्चे की सृजनात्मक शक्तियों का प्रारंभिक विकास खेल के द्वारा होता है और खेल विधि कल्पनाशीलतापूर्वक बच्चों में सृजनात्मक योग्यता का विकास करती है।

- जिम्मेदारी का सिद्धांत : खेल बच्चों में जिम्मेदारी का अहसास को बढ़ाता है। खेल के दौरान बच्चे यह अहसास करते है, चाहे वे व्यक्तिगत रूप से या समूह में खेल रहे हो, बिना किसी नियम या अनुशासन के खेलना संतोषजनक नहीं हैं इसलिए बच्चे नियम बनाने के लिए दूसरों की सहायता लेते है या समूह में स्वयं विकास करते है तथा खेल के नियमों का पालन करने की जिम्मेदारी लेते है इस प्रकार बच्चे खेल विधि से अधिक जिम्मेदार होना सीखते है, जबकि प्रत्यक्ष निर्देशन के माध्यम से आज्ञापालन करने से वे जिम्मेदार नहीं बनते है।

इसलिए यदि आप इस विधि को कक्षा में उपयोग करने जा रहे है तो आपको अपनी कक्षा के प्रत्येक बच्चे के आवश्यकताओं की पूर्ति की योजना सबसे पहले बनाना पड़ेगा और उसी के अनुसार आपको कक्षा में कार्य करना पड़ेगा।

खेलविधि में अध्यापक की भूमिका :

अध्यापक

→ विद्यार्थियों के सुझाव के अनुसार खेल की शुरूआत करने में उनकी सहायता करते है या विद्यार्थियों के सहयोग से नये खेल का विकास करते हैं।

→ बच्चों के अधिगम को आनंददायक अनुभव बनाने के लिए अधिगम वातावरण तैयार करते है।

→ अधिगम क्रियाकलाप की डिजाइन करने के पश्चात उचित शिक्षण अधिगम सामग्रियों को तैयार करता है।

→ अधिगम क्रियाकलापों को सरल अवधारणा से कठिन अवधारणा के क्रम में व्यवस्थित करता है।

→ अधिगम प्रक्रिया के दौरान विद्यार्थियों के लिए मार्गदर्शक नेतृत्वकर्त्ता और पर्यवेक्षक का कार्य करते हैं।

→ खेल विधि के द्वारा विद्यार्थियों का मूल्याँकन करते हैं। मूल्याँकन का उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

ध्यान दीजिये मोन्टेसरी, किन्डरगार्टन शिक्षण विधि को खेल विधि के आधार पर विकसित किया गया था। हालाकि इस विधि की कुछ सीमाएं है जो निम्न प्रकार से है।

खेल विधि की सीमाएँ

- इस विधि को पूर्व–प्राथमिक और प्राथमिक स्तर के लिए उचित समझा जाता है।
- सभी विषयों के विषयवस्तुओं और अवधारणाओं को इस विधि द्वारा परिचित नहीं कराया जा सकता है।
- कभी–कभी कुछ बच्चे सिर्फ खेल खेलने में रूचि रखते हैं तथा खेल विधि से सीखने में रूचि नहीं रखते है।

अपनी प्रगति की जाँच के लिए निम्नांकित का उत्तर दीजिये –

SE - 4 खेल विधि की कौन सा सिद्धांत स्वअनुशासन के पोषण में सहायताकरता है?

SE - 5 विद्यालयी शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर में खेल विधि को क्यों उपयुक्त समझा जाता है?

5.4.2 प्रोजेक्ट विधि (Project method)

क्या आपने अपने विद्यालय में कभी प्रोजेक्ट कार्य किया है? आपने इसे कैसे किया? एक अध्यापक के रूप में क्या आप भी अपने विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट कार्य देते हैं? विद्यार्थी उसे किस प्रकार पूरा करते है?

क्या आप जानते हैं प्रोजेक्ट क्या हैं?

John Afford Stevenson के अनुसार ''एक प्रोजेक्ट एक समस्यात्मक कार्य है जिसे उसके वास्तविक परिस्थितियों में पूर्ण किया जाता है।'' Bafford इसे कुछ इस तरह से परिभाषित करते है – ''एक प्रोजेक्ट वास्तविक जीवन का एक टुकड़ा होता है जिसे विद्यालय में लाया जाता है'' जबकि Dr. William Head Kilpatrik इसे परिभाषित करते हैं – एक प्रोजेक्ट उद्देश्यपरक क्रियाकलाप है जिसे एक सामाजिक वातावरण में संपूर्ण हृदय से पूरा किया जाता है दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं –

एक प्रोजेक्ट एक शैक्षणिक विधि है जहाँ विद्यार्थी व्यक्तिगत रूप से या छोटे समूह में वास्तविक–जीवन के समस्या का विकास और विश्लेषण करते है या आज के समय के किसी प्रकरण को वर्तमान समय सीमा

के भीतर समझने और निष्कर्ष निकालने का प्रयास करते हैं कार्य का स्पष्ट रूप से विभाजन करके व्यक्तिगत रूप से कार्य करते हैं।

इन परिभाषाओं से आप अवलोकन कर सकते हैं कि –

- एक प्रोजेक्ट एक कार्य है या एक क्रियाकलाप है।
- इसका कुछ प्रयोजन होता है।
- इसका आयोजन सामाजिक और वास्तविक परिस्थितियों में किया जाता है।

प्रोजेक्ट विधि की विशेषताएं –

प्रोजेक्ट विधि की निम्नांकित विशेषताएं है :

समस्यात्मक : प्रत्येक प्रोजेक्ट किसी विद्यार्थी–विद्यार्थियों द्वारा अनुभूत एक समस्या का समाधान प्राप्त करने का लक्ष्य रखता है। समस्या के बारे में जागरूक होना प्रोजेक्ट निर्माण को प्रारम्भ करता है।

उद्‌देश्य : किसी प्रोजेक्ट की सफलता इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यार्थियों में इसके उद्‌देश्य को कितना समझा है। विद्यार्थियों द्वारा प्रोजेक्ट कार्य को पूरा करने का उद्‌देश्य उनके वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से अंतरंग रूप से जुड़े होते हैं और उनकी मन की कुछ इच्छाओं को पूरा करता है।

क्रियाकलाप : उद्‌देश्य को परिभाषित करने के पश्चात अब आपका कर्त्तव्य है कि आप अधिगम वातावरण की रचना करें। विद्यार्थी स्व योजना बनाकर, सामूहिक चर्चा के द्वारा और सामूहिक क्रियाकलाप के द्वारा सीखना प्रारम्भ करते हैं।

वास्तविकता : प्रभावकारी अधिगम के लिए वास्तविक जीवन के क्रियाकलापों की रचना करना आवश्यक है।

स्वतंत्रता : प्रोजेक्ट विधि में अधिगम स्वाभाविक रूप से होता है अतः विद्यार्थी स्वतंत्ररूप से क्रियाकलाप में भाग लेता है।

उपयोगिता : अर्जित ज्ञान विद्यार्थियों के वर्तमान जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला होना चाहिए।

समग्रता : चूँकि प्रोजेक्ट वास्तविक जीवन के समस्याओं पर आधारित होता है प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए वास्तविक अनुभव चाहिए और कोई भी वास्तविक अनुभव केवल एक ही विषय के ज्ञान को शामिल नहीं करता है वरन एक से अधिक विषयों के ज्ञान को जोड़कर किसी प्रोजेक्ट को सफलता पूर्वक पूरा किया जा सकता है।

विभिन्न विषयों के बारे में कक्षा मे अर्जित ज्ञान को मिलाकर उपयोग करना प्रोजेक्ट कार्य की मूलभूत आवश्यकता है।

प्रजातांत्रिक मूल्य : प्रोजेक्ट में कार्य करते समय समूह में कार्य करने वाले विद्यार्थियों को एक दूसरे की सहायता करना चाहिए, आदर करना चाहिए, विचारों को आपस में बांटना चाहिए तथा जिम्मेदारी लेना चाहिए। इस प्रकार के विशेषताओं का पोषण करने से विद्यार्थियों में प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास होता है। Kilpatrick के अनुसार एक प्रजातंत्र में यह सबसे उत्तम विधि है।

एक प्रोजेक्ट के आयोजन के चरणों का निगमन निम्नानुसार कर सकते हैं।

1. एक परिस्थति उपलब्ध कराना।
2. समस्या का चुनाव करना।

3. प्रोजेक्ट की योजना बनाना।
4. क्रियान्वीकरण।
5. मूल्याँकन करना।

प्रोजेक्ट के कुछ उदाहरण :

- विभिन्न शासकीय संस्थाओं का दौरा करके विद्यार्थी उनके कार्यों के बारे मे रिपोर्ट तैयार कर सकते है जैसे पोस्ट आफिस, अस्पताल, बैंक, पुलिस स्टेशन आदि।
- वे अपने स्थानीय लोगों के व्यवसाय के बारे में रिपोर्ट तैयार कर सकते हैं।
- अपने स्थानीय लोगों के खान–पान की आदतों के बारे में रिपोर्ट तैयार कर सकते हैं।

प्रोजेक्ट विधि के लाभ :

- प्रोजेक्ट विधि सक्रिय अधिगम के सिद्धांत पर आधारित है। इसमें विद्यार्थी पूर्ण रूप से संलग्न हो जाते हैं जिससे उनका ज्ञान, समझ और कौशल को बढ़ाता है जिसका वे वास्तविक जीवन के परिस्थितियों में उपयोग कर सकते हैं और उनके समग्र व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं।
- चूंकि सभी क्रियाकलाप वास्तविक जीवन के अनुभव से संबंधित होते हैं अतः प्रोजेक्ट के प्रत्येक क्रियाकलाप विद्यार्थियों के लिए अर्थपूर्ण होते हैं। इसलिए अर्थपूर्ण अधिगम, प्रोजेक्ट विधि के साथ सदैव जुड़ा रहता है।
- प्रोजेक्ट के आयोजन में बच्चों को पूर्ण स्वतंत्रता होती है, इससे उनके आत्मविश्वास बढ़ता है और विद्यार्थी के बीच जिम्मेदारी को भाव का विकास होता है।
- विद्यार्थी उन कार्यों के साथ परिचित होते हैं जिसे शायद वे भविष्य में करें। इस प्रकार प्रोजेक्ट विधि विद्यार्थियों को उनके भविष्य के जीवन के लिए तैयार करता हैं।
- विद्यार्थी कई प्रकार के सामाजिक गुणों को प्रोजेक्ट के द्वारा अपनाते है जैसे सहयोग, समूह में कार्य करना, समूह बंधन, और त्याग की भावना आदि।
- प्रोजेक्ट क्रियाकलापों के लिए रूचि और प्रेरणा स्वतः उत्पन्न होते हैं और कोई बाह्य बल या अनुनय–विनय की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
- प्रोजेक्ट की पूर्ण होने पर प्रोजेक्ट व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थी को उपलब्धि का अहसास दिलाता है इससे विद्यार्थी आगे सीखने के लिए उद्यत होते हैं।

SE - 6 प्रोजेक्ट विधि की कोई तीन सीमाओं का वर्णन कीजिए।

5.4.3 समस्या समाधान विधि (Problem solving method)

हम अपने दैनिक जीवन में कई समस्याओं का सामना करते हैं। आपको कब महसूस होता है कि कोई स्थिति समस्यात्मक बन गई है। इस प्रकार के समस्या का समाधान आप कैसे करते हैं?

समस्या समाधान विधि के चरण

हाँलाकि समस्या समाधान के कई माडल हैं। इसी प्रकार का एक माडल IDEAL MODEL OF BRANSFORD (Bransford & Stein, 1984) जिसके द्वारा समस्या समाधान किया जाता है इसके निम्न चरण है –

1. समस्या को पहचानना।
2. सोच विचार कर समस्या को परिभाषित करना और प्रासंगिक सूचना को छांटना।
3. विभिन्न वैकल्पिक समाधानों को ढूंढना, विचार मंथन करना, और विभिन्न विचारों की जाँच करना।
4. रणनीतियों पर कार्य करना।
5. पश्चावलोकन करें और अपने क्रियाकलाप के प्रभाव का मूल्याँकन करें।

इस प्रकार के माडल को इस धारणा पर विकसित किया जाता है कि अमूर्त समस्या समाधान कौशलों को सीखकर इन कौशलों को किसी भी स्थिति में स्थानान्तरिक किया जा सकता है (किसी भी अवधारणा को सीखना)। यह धारणा विद्यार्थियों के पूर्व के अनुभव पर विचार नहीं करता है। परन्तु 1980 से समस्या समाधान पर शोधकर्त्ताओं का झुकाव प्रसंग आधारित समस्याओं की ओर है। इसका अर्थ है कि विषयवस्तु का अध्ययन करते समय जिन समस्याओं का सामना विद्यार्थी करते हैं वे सदैव एक प्रसंग या एक परिस्थिति पर आधारित होते हैं। समस्या की प्रकृति अलग–अलग प्रसंग में अलग–अलग हो सकती है। 1983 में Mayer ने समस्या समाधान को एक बहुचरणीय प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है जहाँ पर समाधानकर्त्ता को अपने पूर्व के अनुभवों और वर्तमान समस्या के बीच संबंध को ढूंढना आवश्यक है और फिर उसके बाद समाधान प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

बार–बार उपयोग किये जाने वाले समस्या समाधान का माडल निम्नांकित आकृति में दिखाया गया है।

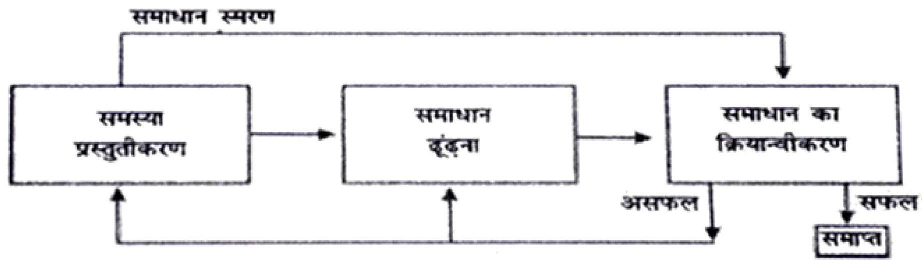

आकृति 5.3 समस्या समाधान प्रक्रिया का माडल
(स्रोत : Gick, 1986)

यह मॉडल समस्या समाधान की तीन संज्ञानात्मक क्रियाकलाप के मूलभूत क्रम की पहचान करता है।

- समस्या का प्रस्तुतीकरण (i) उपयुक्त प्रासंगिक ज्ञान का स्मरण करना (पूर्व ज्ञान) और (ii) लक्ष्य की पहचान और समस्या के लिए प्रासंगिक प्रारम्भिक स्थिति को पहचानना।
- समाधान ढूंढना : इसमें लक्ष्य का परिशुद्ध करना (वैकल्पिक हल/अभिधारणा) और लक्ष्य तक पहुंचने के लिए क्रियाओं की योजना का विकास करना शामिल है।
- समाधान का क्रियान्वीकरण : इसमें (i) योजना क्रिया को क्रियान्वित करना और (ii) परिणामों का मूल्याँकन करना शामिल है।

कक्षा अध्यापक के रूप में, समस्या समाधान विधि का अनुकरण करते समय, आपको निम्नांकित चरणों पर विचार करना चाहिए :

- समस्या पहचानना या अनुमान लगाना।
- विभिन्न स्रोत से सूचना उपयोग करके समस्या को स्पष्ट रूप से समझना और इसके जड़ तक पहुंचना।
- वैकल्पिक हल उत्पन्न करना।
- विकल्पों के सबल और निर्बध पक्षों का मूल्याँकन करना साथ ही साथ खतरा और लाभों तथा लघु और दीर्घ परिणामों को मूल्याँकन करना।
- एक ऐसे विकल्प का चुनाव करना जो कि लक्ष्य, प्रसंग और उपलब्ध संसाधनों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हो।
- समाधान या निर्णय के प्रभावीकरण का मूल्याँकन करने के लिए मापदंड स्थापित करना।

समस्या समाधान विधि में चिंतनात्मक सोच, तार्किक सोच और विशेष योग्यताओं, कौशलों और दृष्टिकोण के उपलब्धि के परिणाम शामिल हैं। आपको ऐसे परिस्थितियों या क्रियाकलाप उपलब्ध कराना चाहिए जिससे समस्या उत्पन्न हो। इसमें समस्या को विश्लेषण करने के लिए एक निश्चित प्रक्रिया, आगमनात्मक रूप से इसका हल ढूंढना और अंत में निगमनात्मक उपागम के द्वारा सामान्यीकरण के पूर्णता की जाँच करना शामिल है। जैसा कि इसमें चिंतनात्मक सोच और तर्क शामिल है इसलिए इसका उपयोग छोटी कक्षाओं के लिए नहीं किया जाता है।

5.4.4 अन्वेषण विधि (Heuristic method)

इस विधि को Heuristic Method के नाम से भी जाना जाता है। Huristic शब्द ग्रीम शब्द Heurisca से लिया गया जिसका अर्थ है ' पता लगाना'। इसे खोजबीन विधि भी कहते हैं। Prof. Henry Edwartl Arrnstrong के अनुसार जिन्होंने विज्ञान पढ़ाने के लिए इस विधि का परिचय कराया Heuristic विधि शिक्षण का एक विधि है जिसमें जितना संभव हो सके बच्चों को खोजकर्त्ता के मनोवृत्ति के स्तर पर लाना है। यह एक ऐसी विधि है जिसमें बच्चे स्वयं वस्तुओं की खोज और अन्वेषण करते हैं। उन्हें खोजकर्ता या अविष्कारक के स्थान पर रखा जाता है। आपको चाहिए कि आप अपने विद्यार्थियों को समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए कहें उन्हें व्याख्यान न दें। विद्यार्थियों को समस्या उपलब्ध कराया जाता है। विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती है कि निर्देशन के अनुसार अवलोकन और प्रयोग आयोजन करें। निष्कर्ष विद्यार्थियों द्वारा निकाला जता है और इस प्रकार उनको तार्किक कौशल का परिचयन स्वयं के अवलोकन और प्रयोग द्वारा हो जाता है।

अन्वेषण विधि के चरण : इसके निम्नांकित चरण है –

1. समस्या की पहचाना करना।
2. अवलोकन और प्रयोग करना।
3. समस्या समाधान।
4. मूल्याँकन।

अन्वेषण विधि की विशेषताएं –

- एक सुस्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य को कक्षा में प्रस्तुत करें और प्रत्येक बच्चे को स्वयं के लिए कुछ प्राप्त करने के लिए जिम्मेदार बनायें।
- प्रत्येक बच्चा विभिन्न स्रोतों से समस्या के बारे में सूचना प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। वह समस्या के बारे में अपने सहपाठियों और अध्यापक से बातचीत करने के लिए स्वतंत्र है।
- विद्यार्थी अपने अध्यापक से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है।
- विद्यार्थी की आवश्यकतानुसार सहायता उपलब्ध कराना चाहिए। हालांकि अध्यापक को चाहिए कि आगमनात्मक विधि के द्वारा बच्चों से समस्या का समाधान निकालने का प्रयास करें।
- जितना अधिक से अधिक प्रश्न बच्चों की तरफ से उठता है और कभी अध्यापक भी बच्चों से उनकी प्रेरित करने के लिए प्रश्न पूछें ताकि वे समस्या के बारे में अधिक जानकारी एकत्रित करें।

इस प्रकार, अवलोकन, प्रायोगिक, तार्किकता की क्षमता विद्यार्थियों में विकसित किया जाता है। वे आंकड़े, एकत्रित करना सीखते हैं, आंकड़ों की व्याख्या करना, प्रायोगिक हल तैयार करना और अपेक्षित निष्कर्ष पर पहुंचना सीखते हैं। इस विधि का उपयोग वहाँ पर किया जा सकता है जहाँ पर बच्चों को एक कारण को ढूंढ़ना होता है।

SE – 7 अन्वेषण विधि के चार लाभों का वर्णन करें

हालांकि आप कक्षा संचालन में अन्वेषण विधि का इस्तेमाल करते समय कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ सकता है। जैसे कि :

- सभी विद्यार्थी शिक्षण अधिगम परिस्थिति में शायद भाग न ले।
- दिये गये समस्या से संबंधित प्रश्न कुछ ही बच्चे पूछते हैं।
- कभी–कभी विद्यार्थी को और अधिक संदर्भ सामग्रियों की आवश्यकता होती है।
- कभी–कभी विद्यार्थियों को कुछ उपकरण/औजार की आवश्यकता, प्रयोग करने के लिए पड़ती है।
- कभी–कभी समस्या से संबंधित अभिधारणा विद्यार्थी नहीं बनाते हैं।

SE – 8 अन्वेषण विधि के बारे में कुछ कथन नीचे दिये गये है। सत्य कथन पर (T) और गलत कथन पर (F) लिखे, अपने उत्तर के चुनाव के लिए कारण बनाइये।

1. अन्वेषण विधि में अवलोकन और तार्किक शक्ति पर बल दिया जाता है।
2. यह विधि छोटी कक्षा के बच्चों के लिए उपयुक्त है।
3. अध्यापक सह विद्यार्थी के रूप में कार्य करता है।
4. गृहकार्य की जरूरत नहीं पड़ती हैं।
5. इस विधि में विद्यार्थी औपचारिक रूप से सीखते हैं।
6. अधिगम स्थायी होता है।
7. स्व क्रियाकलाप और स्व–निर्भरता की आदत का पोषण होता है।

5.5 प्रगति की जाँच के लिए आदर्श उत्तर

E - 1 जब व्यक्तिगत प्रयोग के लिए अपर्याप्त सामग्री होता है, प्रयोग को संभालना खतरनाक है, प्रयोग में अधिक समय व्यय होता है।

E - 2

आगमनात्मक विधि	निगमनात्मक विधि
•यह विशिष्ट से सामान्य मूर्त से अमूर्त की ओर अग्रसर होता है।	•यह समान्य से विशेष अमूर्त से मूर्त की ओर अग्रसर होता है।
•यह बच्चों की रूचि और आवश्यकताओं का ध्यान रखता है यह विकासात्मक प्रक्रिया है।	•इसमें बच्चे को सिद्धांत, नियम और तथ्यों के बारे में सूचना उपलब्ध कराया जाता है।
•यह अन्वेषण के लिए प्रोत्साहित करता है, सोचने की शक्ति का विकास करता है।	•यह वास्तविक जीवन के अवलोकन और पूर्व अर्जित ज्ञान के बीच संबंध स्थापित करता है।

आप अन्य अंतर पाठ्यपुस्तक पढ़कर लिख सकते हैं।

E-3 (क) D (ख) I (ग) I (घ) I (ङ) D (च) I

E-4 जिम्मेदारी का सिद्धांत।

E-5 खेल बच्चों का स्वाभाविक प्रवृत्ति है, छोटे बच्चों को खेल आनंद पहुंचाता है।

E-6 (i) पाठ्यक्रम के सभी क्षेत्रों में इसका इस्तेमाल सदैव संभव नहीं होता है।

(ii) एक औसत अध्यापक के लिए एक प्रोजेक्ट की योजना बनाना कठिन कार्य है और इसमें सभी विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित करना कठिन कार्य है।

(iii) प्रोजेक्ट विधि द्वारा अर्जित अनुभव/ज्ञान का समन्वीयकरण का अभाव होता है।

E-7 निम्न में से कोई चार

→ यह विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण व समालोचनीय दृष्टिकोण का विकास करता है।

→ यह धैर्यपूर्वक जाँच करने, सूक्ष्मता से अवलोकन करने, स्वच्छ रूप से स्पष्ट रूप से और जिम्मेदारी के साथ प्रयोग करने की कला का पोषण करता है।

→ यह स्व प्रयास, आत्म विश्वास, आत्मनिर्भरता और आत्म निर्धारण का विकास करता है ।

→ यह विधि जीवन के लिए तैयार करने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण उपलब्ध कराता है।

→ चूँकि विद्यार्थी स्वयं के मेहनत के द्वारा तथ्यों को सीखता है, अधिगम अधिक प्रभावकारी और स्थायी बन जाता है।

5.6 सारांश (Summary) :

- विधियाँ पढ़ाने का तरीका है बच्चों का प्रभावकारी अधिगम अध्यापक द्वारा अपनाये गये विधि पर आधारित होता है।

- शिक्षण और अधिगम की विधियाँ दो प्रकार की हो सकती है – अनुदेशात्मक विधि और विद्यार्थी अनुकूल विधि।
- अनुदेशात्मक विधि अध्यापक निर्देशित होता है जबकि विद्यार्थी अनुकूल विधि विद्यार्थी केंद्रित होता है।
- व्याख्यान, प्रदर्शन और आगमन–निगमन अनुदेशात्मक विधि के कुछ उदाहरण है।
- खेल विधि, प्रोजेक्ट, समस्या–समाधान, और अन्वेषण आदि विद्यार्थी अनुकूल विधि के उदाहरण है।
- व्याख्यान विधि में अध्यापक तथ्यों, सूचना, अवधारणा नियम आदि की व्याख्या अपने गति से करता है। इसमें यह गारंटी नहीं होता है कि विद्यार्थी ध्यानशील है या नहीं अध्यापक जो कुछ कह रहे हैं उसे वे सुन रहे या समझ रहे हैं या नहीं।
- आगमनात्मक विधि विशिष्ट से सामान्य की ओर अग्रसर होता है, मूर्त से अमूर्त की ओर अग्रसर होता है। जबकि निगमनात्मक विधि सामान्य से विशिष्ट, अमूर्त से मूर्त की ओर अग्रसर होता है।
- प्रदर्शन विधि में अध्यापक प्रयोग का प्रदर्शन या चार्ट, माडल आदि का प्रदर्शन कक्षा में करता है साथ में व्याख्या भी करता है।
- खेल के द्वारा विद्यार्थी कई अवधारणा को सीखते हैं। अध्यापक अवधारणा को खेल में इस प्रकार जोड़ता है कि बच्चे अनौपचारिक रूप से अवधारणा को सीखते हैं और वे स्थायी अधिगम बन जाता है।
- प्रोजेक्ट विधि में अध्यापक बच्चों को एक परिस्थिति उपलब्ध कराता है। उस परिस्थिति से वे स्वयं योजना बनाते हैं, क्रियान्वित करते हैं, और प्रोजेक्ट का मूल्याँकन करते हैं। और अंत में प्रोजेक्ट पर एक रिपोर्ट तैयार करते हैं।
- समस्या समाधान में अध्यापक एक प्रश्न पूछता है जिसे बच्चों को हल करना होता है। वे समस्या का समाधान आकड़े एकत्रित करके, अभिधारणाओं का निर्माण करके, उनके जाँच करके तथा निष्कर्ष निकाल कर करते हैं। चूंकि इस विधि में चिंतनात्मक सोच व तार्किकता का सम्मिलन होने के कारण यह उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त है।
- अन्वेषण विधि वहाँ पर उपयोग किया जाता है जहाँ विद्यार्थी वैज्ञानिक कारणों का पता लगाते हैं। अध्यापक एक समस्या विद्यार्थियों को देता है और विद्यार्थी कारण का पता आंकड़े एकत्रित करके करते हैं ये आकड़े प्रश्न पूछ कर या संदर्भ सामग्री को पढ़कर एकत्रित किये जाते है। इसके पश्चात आकड़ों की व्याख्या करते हैं, प्रारम्भिक, अभिगृहीत का निर्माण और अंत में निष्कर्ष पर पहुंचते हैं।
- शिक्षण और अधिगम की विभिन्न विधियाँ है।
- अनुदेशात्मक विधियों के उदाहरण – व्याकरण विधि, आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियाँ, बातचीत विधि, व्याख्यान–प्रदर्शन विधि है।
- प्रदर्शन विधि के चरण – योजना, परिचय, प्रदर्शन, श्यामपट उपयोग, अवधारणाओं का संग्रह है।
- प्रदर्शन विधि के दौरान विद्यार्थियों को निम्नांतिक अवसर प्राप्त होते हैं –

♦ अवलोकन, ♦ नोट बनाने में, ♦ आलेख बनाने में, ♦ प्रयोग में भागीदारी

- खेल विधि के सिद्धान्त –
  - ♦ अन्तःशक्तियों का अभिव्यक्तिकरण का सिद्धांत
  - ♦ नैसर्गिक स्वभाव का सिद्धांत
  - ♦ पूर्ण स्वतंत्रता का नियम
  - ♦ क्रियाकलाप का सिद्धांत
  - ♦ इच्छापूर्ति का सिद्धांत
  - ♦ आनन्द का सिद्धांत
  - ♦ सृजनात्मकता का सिद्धांत
  - ♦ जिम्मेदारी का सिद्धांत
- प्रोजेक्ट विधि की विशेषताएँ है –
  - ♦ समस्यात्मक ♦ उद्देश्य ♦ क्रियाकलाप ♦ वास्तविकता ♦ स्वतंत्रता ♦ उपयोगिता
  - ♦ समग्रता ♦ प्रजातांत्रिक मूल्य
- अन्वेषण विधि के चरण –
  - ♦ समस्या की पहचान करना
  - ♦ अवलोकन और प्रयोग करना
  - ♦ समस्या समाधान
  - ♦ मूल्यांकन
- समस्या विधि के चरण –
  - ♦ समस्या को पहचानना
  - ♦ समस्या को परिभाषित करना
  - ♦ विभिन्न वैकल्पिक समाधानों को ढूंढना
  - ♦ रणनीतियों पर कार्य करना
  - ♦ प्रभाव का मूल्यांकन करना

5.7 अभ्यास के प्रश्न

1 शिक्षण और अधिगम की विधियों का वर्णन कीजिए।

2 अनुदेशात्मक विधि और विद्यार्थी केन्द्रित विधि का पृथक–पृथक उदाहरण देकर तुलना कीजिए।

3 प्रोजेक्ट विधि से आप क्या समझते है ? किसी ज्वलन्त मुद्दे पर प्रोजेक्ट का निर्माण कीजिए।

4 कक्षा एवं कक्षा के बाहर किसी एक खेल का आयोजन कीजिए और खेल विधि के सिद्धान्तों को खोजकर उसकी व्याख्या कीजिए?

5 एक–एक उदाहरण लेकर अगमनात्मक और निगमनात्मक विधि को समझाइए?

6 प्रदर्शन विधि को समझाइए प्रदर्शन व्याख्यान विधि के चरणों को स्पष्ट कीजिए?

●●●

इकाई – 6

शिक्षार्थी और अधिगम–केंद्रित उपागम

(Learners and Learning - Focused approach)

6.0 प्रस्तावना विषय (Introduction)

अध्यापक के रूप में आपको बच्चे के अधिगम को सुगम बनाना है। दूसरा शब्दों में अध्यापक के रूप में आपके सभी प्रयासों का केन्द्र बिन्दु शिक्षार्थी और उसका अधिगम है।

शिक्षार्थी पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए यह इकाई शिक्षार्थी केन्द्रित उपागमों जैसे सहकारी और Collabora tive अधिगम उपागम जो कि शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को सुगम बनाने तथा विद्यार्थी के सीखने के लिए सक्रिय भागीदारी के लिए बेहतर अवसर प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त क्रियाकलाप आधारित उपागम, जिससे आप शायद पहले से भी परिचित हैं, के विषय पर चर्चा की जायेगी यह आपके अधिगम क्रियाकलाप के प्रकृति और इसके अवयवों व गुणों के बारे में ज्ञान को समृद्ध करेगा और इसके साथ–साथ आपकी कक्षा में क्रियाकलाप आधारित विधियों को अभ्यास करने के नियमों को भी सृदृढ़ता प्रदान करेगा।

इस इकाई को पूरा करने के लिए आपको लगभग 20 घंटे का अध्ययन समय की आवयश्यकता है।

6.1 अधिगम उद्देश्य (Learning objectives)

इस इकाई को पूरा करने के पश्चात आप योग्य होंगेः

- विद्यार्थी और अधिगम केन्द्रित उपागमों के बीच अंतर करने में
- सहकारी और सहभागी विधियों का उपयोग और वर्णन करने में
- अधिगम क्रियाकलाप के अवयवों को पहचानने में
- कक्षाकक्ष में उपयोग के लिए अधिगम क्रियाकलपों के नियोजन करने में
- कक्षाकक्ष परिस्थितियों में क्रियाकलाप–आधारित उपागम का आयोजन करने में

6.2 अधिगम उपागम (Learning approach)

परिस्थिति 1–जब विनय कक्षा में अध्यापन कार्य करते समय कुछ वर्णन करते हैं, विभिन्न अवधारणाओं व विचारों की व्याख्या करते हैं तथा कुछ चुनिंदा विद्यार्थियों से ही प्रश्न पूछते हैं। उनका पूरा प्रयास सिर्फ पाठ्यक्रम को समय पर समाप्त करने पर केंद्रित होता है। अतः उनके पास विद्यार्थियों की आवश्यकता और रूचियों का ध्यान रखने के लिए बहुत ही कम समय होता है। वह केवल अपने अध्यापन के बारे में चिंता करते हैं।

विद्यार्थी केवल निष्क्रिय होकर अध्यापक को सुन रहे होते हैं और कभी–कभी कोई एक विद्यार्थी कुछ प्रश्न पूछ लेता है। विनय कक्षा में अनुशासन बनाने का प्रयास करता है ताकि वह बाधारहित वातावरण में अपना अध्यापन कार्य जारी रख सकें। समयाभाव के कारण वह अपने कक्षाकक्ष को विद्यार्थियों के लिए रूचिकर बनाने के लिए सीमित प्रयास करता है। पाठ अध्यापन के पश्चात वह विद्यार्थियों के अधिगम का मूल्यांकन करने के लिए दो–तीन प्रश्न पूछता है।

आओ निम्न परिस्थिति पर विचार करें–

इस तरह के अध्यापक–केंद्रित कक्षा परिस्थिति में विद्यार्थी कक्षाकक्ष में अध्यापक द्वारा किये जा रहे कार्य में कम रूचि रखते है।

SE-1 अध्यापक केंद्रित कक्षा के कोई तीन विशेषतायें बताइये।

आइये एक और परिस्थिति का विश्लेषण करते हैं –

परिस्थिति 2 –

- समीता प्रारम्भिक स्तर के कक्षा में विज्ञान विषय पढ़ा रही है। वह पाठ्यपुस्तक नहीं पढ़ रही है।
- संपूर्ण कक्षा को 5–6 के समूह में बांटती है।
- विद्यार्थियों को एक पौधा लाने को कहती है और प्रत्येक समूह को इसका अवलोकन करने के लिए कहती है।
- उन्हें समूह में पौधे के बारे में विस्तृत चर्चा करने के लिए उत्साहित करती है।
- सामूहिक चर्चा को बढ़ावा देती है और प्रत्येक विद्यार्थी की भागीदारी को सुनिश्चित करती है।
- प्रत्येक विद्यार्थी को उसके अनुभव का उपयोग करने और अन्वेषण क्षमता का उपयोग करने के लिए अवसर उपलब्ध कराती है।
- प्रत्येक विद्यार्थी को उनके कापी पर पौधे का चित्र बनाकर नामांकित करने के लिए कहती है।
- प्रत्येक विद्यार्थी को अपने कार्य को एक दूसरे से बांटने के लिए कहती है तथा सामूहिक चर्चा को बढ़ावा देती है।

इस परिस्थिति में समीता एक परंपरागत अध्यापक न होकर वह सहज सुगम प्रदर्शक के रूप में विद्यार्थियों के सम्मुख विभिन्न भूमिकाओं का प्रदर्शन करती है।

SE-2 नीचे कुछ कथन दिये हुये है, उनमें से, विद्यार्थियों की आवश्यकता को अधिक महत्व दिया है, उसे सही (✓) के निशान से चिन्तित करें।

(क) अध्यापक शब्दकोष का उपयोग करके विद्यार्थियों को कठिन शब्दों का अर्थ समझाता है।

(ख) विद्यार्थी अपने शंकाओं का समाधान अध्यापक से प्रश्न पूछकर करते हैं।

(ग) अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी को सामने बुलाता है तथा दीवार पर टंगे हुए मानचित्र? पर विभिन्न स्थानों को इंगित करता है।

(घ) अध्यापक प्रयोगशाला में एक प्रयोग करता है और विद्यार्थियों को देखने के लिए कहता है।

(ङ) विद्यार्थियों को कक्षा में कुछ समय के लिए बाहर जाकर प्रकृति का अवलोकन करने के लिए कहता है तथा अपने भाषा में किन्हीं तीन अवलोकित चीजों का वर्णन करने के लिए कहता है।

6.2.1 विद्यार्थी–केन्द्रित उपागम (Child centred approach) –

विद्यार्थी, विद्यार्थी केन्द्रित उपागम के सभी क्रियाकलापों का केन्द्र होता है। अध्यापक अधिगम प्रक्रिया को सहज व सुगम बनाने का कार्य करता है और अधिगम परिस्थिति का आयोजक होता है जो विद्यार्थियों में स्वतंत्र चिंतन और जिज्ञासा को जागृत करता है, समस्या समाधान कौशल का विकास करता है, प्रोजेक्ट की रूपरेखा और क्रियान्वीकरण को बढ़ावा देता है, तथा स्वअधिगम का विकास करते हुए तथ्यों का अवलोकन

करके ज्ञानार्जन करना व सृजनात्मक चिंतन व क्रियाकलपों के द्वारा ज्ञानार्जन करने के लिए प्रोत्साहित करता है। (प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम–एक रूपरेखा, 1987 पेज–6)। जैसा कि आप जानते हैं कि एक विद्यार्थी अपने साथ अपना पूर्व अनुभव व ज्ञान लेकर विद्यालय में आता है जो कि कक्षा के अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करता है। विद्यार्थी केन्द्रित उपागम में, विद्यार्थी के विकासात्मक स्तरों, परिपक्वता, अधिगम, युक्तियों, पूर्व ज्ञान व अनुभवों, रूचियों, सामाजिक संदर्भ और संस्कृति पर ध्यान दिया जाता है। एक अध्यापक के रूप में विद्यार्थी–केन्द्रित उपागमों को क्रियान्वित करने के लिए, आपको विद्यार्थियों को और उनके अधिगम तरीकों को समझना अत्यंत आवश्यक है। यह आवश्यक है कि आप अपने कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी के विशेषताओं के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी रखें।

विद्यार्थी को समझना – विद्यार्थी केंद्रित उपागमों को अपनाने के लिए आपको अपने कक्षा के विद्यार्थी के विभिन्न पहलुओं को समझना आवश्यक है, जैसे कि –

(क) स्वास्थ्य व शारीरिक विकास

(ख) मानसिक योग्यतायें

(ग) व्यक्तित्व

(घ) अधिगम के तरीके

(ङ) प्रेरणा

(च) घर और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

(क) स्वास्थ्य और शारीरिक विकास–विद्यार्थी की सीखने की योग्यता उसके स्वास्थ्य और शारीरिक विकास के स्तर पर निर्भर करता है। अधिगम अनुभवों का चुनाव करते समय विद्यार्थियों के विकास के भिन्नात्मक गतिविधियों को ध्यान रखना आपके लिए आवश्यक है। नियमित रूप से विद्यार्थियों की स्वास्थ परीक्षण कराने में उनके स्वास्थ्य और शारीरिक विकास के बारे में आपको जानकारी प्राप्त हो सकती है।

(ख) मानसिक योग्यतायें–विद्यार्थियों के विशिष्ट मानसिक योग्यताओं को जानकर आप उनके विशिष्ट जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। सामान्यतः एक व्यक्ति की बुद्धिमता को उसकी मानसिक योग्यता समझा जाता है। Gardner (1985) द्वारा प्रस्तुत सात प्रकार के बुद्धिमत्ता को ध्यान में रखकर एक व्यक्ति की मानसिक योग्यताओं का चित्रण किया जा सकता है। ये इस प्रकार है–

भाषा–एक व्यक्ति को संप्रेषण के योग्य बनाता है और अपने आस–पास के दुनिया को भाषा के माध्यम से सुनिश्चित करता है।

गणितीय तर्क–व्यक्ति को अमूर्त गणितीय संबंधों को उपयोग करने के योग्य बनाता है।

दृष्टि–स्थानिक–व्यक्ति को दृष्यांकन, परिवर्तित करने और स्थानिक सूचनाओं का उपयोग करने के योग्य बनाता है।

शारीरिक गतिशीलता–व्यक्ति को उच्च स्तरीय शारीरिक चालन, नियंत्रण और अभिव्यक्ति का इस्तेमाल करने के योग्य बनाता है।

संगीतमय–व्यक्ति को ध्वनि निर्माण, संप्रेषण और अर्थ समझने के योग्य बनाता है।

अंतरा–व्यैक्तिक–व्यक्ति को दूसरों के भाव, इच्छा को पहचानने तथा उनमें अंतर जानने में सहायता करता है।

अंत–व्यैक्तिक–स्वयं तथा दूसरों को चिंतानात्मक दृष्टिकोण से समझने की क्षमता के विकास में सहायक होता है।

Gardner के विशिष्ट मानसिक योग्यताओं के विश्लेषण से यह प्रस्तावित है कि शिक्षार्थी के विभिन्न प्रकार से मानसिक योग्यता और शक्तियां होती है। और उनहीं के अनुसार इसको विकसित करने के लिए

आपको विभिन्न प्रकार के अधिगम क्रियाओं का चयन करना होगा आप शिक्षार्थी के सीखने की गुणवक्ता को प्रभावित कर सकते हैं तथा उनके बौद्धिक क्षमताओं में वृद्धि कर सकते हैं। निम्नांकित स्थिति पर विचार करें–

परिस्थिति 3–जब गुड्डी दो वर्ष की थीं तब वह सभी पतंगों को चिड़िया कहती थी। पतंग के बारे में उसकी संपूर्ण समझ व अवबोधन मुख्यतः उसके पूर्व ज्ञान ''एक छोटी वस्तु जो हवा में उड़ती है'' के द्वारा प्रभावित था। बाद में उसने धीरे–धीरे यह अवलोकन किया कि पतंग का आकार चिड़िया के आकार से अधिक समरूप है, एक पतंग चिड़िया की अपेक्षा अलग ढंग से उड़ती है, जब पतंग उड़ती है तो सनसनाहट की ध्वनि सुनाई देता है और एक रस्सी जो इससे बंधी होती है शायद इसको नियंत्रित करती है। उसकी समझ और अवबोधन जिसमें सिर्फ 'छोटी चीज जो उड़ती है' की ही विशेषता भी अब उसमें नये विशेषतायें और जुड़ गयी है जिसके कारण अब वह चिड़िया और पतंग में अंतर महसूस करने लगी है। इस परिवर्तन के कारण उसके 'छोटी उड़ने वाली चीज' के अवबोध व समझ में अब दो वस्तुऐ चिड़िया और पतंग शामिल है। संक्षेप में वह अपने पूर्व में अवबोधन और समझ में नये अवधारणा जोड़कर उसके परिवर्तित करती है।

गुड्डी अब आठ वर्ष की हो चुकी है और आप कल्पना कर सकते है कि उसके छोटी उड़ने वाली चीज के समझ में कितनी पेचीदगी उत्पन्न हो गयी है। अब वह कई प्रकार के हवाई जहाजों, पैराशूट, राकेट, उपग्रहों, चमगादड़ों के बारे में जानती है। वह यह भी जानती है कि ऐसी भी चिड़िया होती है जो उड़ती नहीं है।

(ग) व्यक्तित्व–शिक्षार्थी के व्यक्तित्व को समझने से आपको व्यक्तिगत भिन्नता के प्रतिमान को पहचानने में सहायता मिलेगी तथा शिक्षार्थी के व्यक्तित्व व अधिगम तरीके के अनुभव उनके लिये अधिगम युक्तियों के चुनाव करने में सहायता मिलेगी।

(घ) अधिगम तरीका–किसी भी व्यक्ति का सीखने की एक विशिष्ट शैली होती है। शिक्षार्थी के सीखने के तरीके में कई प्रकार के बदलाव भी हो सकता है यह बदलाव शिक्षार्थी के ऊपर निर्भर करता है। अधिगम तरीके के कई प्रारूप है, इनमें से एक महत्वपूर्ण प्रारूप David Kolb का है जो कि अनुभूतिमूलक अधिगम पर आधारित है।

David Kolb के अधिगम माडल के अनुसार चार प्रकार के अधिगम तरीके हैं जो कि दो ग्राह्य अनुभति के दो उपागमों पर आधारित है। ये है मूर्त अनुभव (Concreta Experience-CE) और अमूर्त अवधारणात्मक (Abstract conceptuadization-AC) इसके अतिरिक्त परिवर्तनीय अनुभव पर आधारित दो उपागम है चिंतनात्मक अवलोकन (Reflective observation-RO) और **सक्रिय प्रयोग** (Active experimentation-AE)। ये चार अधिगम तरीके इस प्रकार से है –

– **अभिसारी (देखना और महसूस करना CE/RO)**–विभिन्न प्रकार के अधिगम तरीके से सीखने वाले शिक्षार्थी संवेदनशील होते हैं और चीजों को कई पहलुओं से देखने के योग्य होते हैं। ये करने की अपेक्षा देखना अधिक पसंद करते हैं और सूचना एकत्रित करते हैं तथा कल्पना–शक्ति का उपयोग करके समस्या समाधान करते हैं। ये शिक्षार्थी समूह में कार्य करने का चुनाव करते हैं, ये खुले दिमाग से बात सुनते हैं तथा व्यक्तिगत प्रतिपुष्टि प्राप्त करते हैं।

– **आत्मसातकरण (देखना व सोचना AC/RO)**–जो शिक्षार्थी आत्मसात करने के तरीके से सीखते हैं वे व्यक्तियों पर अधिक ध्यान नहीं देते हैं तथा विचारों और अमूर्त अवधारणाओं में अधिक रूचि रखते हैं। वे व्यावहारिक मूल्यों पर आधारित उपागमों की अपेक्षा तार्किक सिद्धांतों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। वे पढ़ना, व्याख्या, अन्वेषण, विश्लेषण माडल को अधिक पसंद करते है तथा उनके पास गहन विचार के समय होता है।

– **अभिसारी (करना और सोचना AC/AE)**– वे शिक्षार्थी जो अभिसारी अधिगम तरीके से सीखते हैं वे समस्या समाधान कर सकते हैं तथा अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग वे व्यावहारिक मुद्दों

का हल निकालने में करते हैं। वे तकनीकी कार्यों में रूचि रखते हैं तथा व्यक्तियों और अंतर्वैयक्तिक पहलुओं पर कम ध्यान देते हैं। वे नये विचारों के साथ प्रयोग करते हैं तथा व्यावहारिक अनुप्रयोग के साथ कार्य करते हैं।

– **सामंजस्यीकरण (करना और महसूस करना CE/AE)**–सामंजस्य अधिगम तरीके से सीखने वाले शिक्षार्थी तर्क की अपेक्षा स्वअनुभव पर निर्भर करते हैं। ये दूसरों के विश्लेषण का इस्तेमाल करते हैं तथा व्यावहारिक, अनुभूतिमूलक उपागम को पसंद करते हैं। वे नये चुनौती की ओर आकर्षित होते हैं तथा अपनी योजना को क्रियान्वित करते हैं। ये कार्य पूरा करने के लिए समूह में कार्य करते हैं। वे लक्ष्य निर्धारित करके सक्रिय रूप से विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं।

अधिगम तरीके, अधिगम स्थिति, अनुभव और प्रेरणा के द्वारा प्रभावित होता है तथा इन्हें शिक्षार्थी के व्यक्तित्व व संज्ञानात्मक व्यवहार के बीच एक संबंध के रूप में देखा जा सकता है।

SE-3 शिक्षार्थी–केंद्रित उपागम शिक्षार्थी को समझना क्यों महत्वपूर्ण समझा जाता है कोई दो उदाहरण दीजिये।

SE-4 अभिसारी और अपसारी अधिगम तरीकों के बीच दो अंतर का वर्णन कीजिए।

(ङ) प्रेरणा – क्या शिक्षार्थी को उपलब्ध कराये गये अधिगम अनुभव और उनके व्यक्तित्व तथा अधिगम तरीकों के बीच समानता है या नहीं? प्रेरणा इसी से संबंधित है, यदि शिक्षार्थी को उसके वर्तमान कौशल, ज्ञान और समझ को चुनौती देने वाला अधिगम कार्य दिया जाये तो शिक्षार्थी ऐसे कार्य को करने के लिए प्रेरित होता है। परंतु यदि चुनौती का स्तर उसके ज्ञान कौशल और समझ से कम या अधिक होता है तो वह इस प्रकार के कार्य में अधिक रूचि नहीं लेता है। अतः अध्यापक को चाहिए कि वे प्रत्येक शिक्षार्थी की क्षमताओं योग्यताओं, रूचियों को समझे तथा साथ–साथ उनको अपने विषय के बारे में गहन ज्ञान और कौशल का होना अति आवश्यक है ताकि शिक्षार्थी को प्रभावकारी अधिगम अनुभव उपलब्ध करा कर प्रेरित किया जा सके।

(च) घर और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि–विद्यालय,घर, साथी और सामाजिक परिवेश बच्चे के शिक्षा को प्रभावित करते हैं। अधिगम को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भाषा का माध्यम, और अधिगम अभिवृत्ति प्रभावित करता है।

सांस्कृतिक अनुभव–शिक्षार्थी के पूर्व ज्ञान को शिक्षार्थी के सामाजिक परिवेश की संस्कृति, ज्ञान, मूल्य और विचार गहन रूप से प्रभावित करते हैं। ये नये अवधारणा को समझने के लिए रूपरेखा का कार्य करते हैं तथा उसके नये अधिगम को प्रभावित करता है।

भाषा–सोचने और सीखने का माध्यम भाषा है। भाषा सांस्कृतिक उपकरण को शामिल करता है जिसके द्वारा नये अनुभवों की व्याख्या और मध्यस्ता की जाती है जब शिक्षार्थी समाज और समुदाय से अंतःक्रिया करता है। भाषा एक सांस्कृतिक उपकरण के रूप में नवीन अधिगम को प्रभावित करता है।

अधिगम अभिवृत्ति–अधिगम अभिवृत्ति, वातावरण, विशिष्ट व्यस्कों और साथियों के साथ बातचीत के अनुभवों से प्राप्त तथा प्रभावित होता है। यह नोट किया गया है कि जब बच्चा किसी क्रियाकलाप के उद्देश्य को समझता है तो वह उसमें सक्रिय रूप से भाग लेता है और क्रियाकलाप के नियमों और तर्कों को समझना शुरू कर देता है। इससे उसे क्रियाकलाप में सम्मिलित अवधारणा को सीखने में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए शकीन के लिए लाभ, हानि और अखबार की कीमत ज्ञात करना सिर्फ पाठ्यपुस्तक के अभ्यास के लिये नहीं हैं परन्तु वह अखबार एजेंट से अखबार खरीदकर अधिक से अधिक अखबार बेचने का प्रयास करता है क्योंकि उसके परिवार को पैसों की आवश्यकता है। इसके विपरीत कक्षा पंचम में पढ़ने वाली 12 वर्ष की नीतू को जब उसके अध्यापिका ने एक प्रश्न–एक दुकानदार 10 पेंसिल, 1 रू. 50 पैसे प्रति पेंसिल

के हिसाब से खरीदता है और यदि वह 2 रूपये प्रति पेंसिल के हिसाब से उसे बेचता है तो बताओ उसे कुल कितना लाभ होगा? काफी देर सोचने के बाद नीतू ने पूछा क्या मैं इसे जोड़ करूं या गुणा करूं? यदि आप बतायेंगे तो मैं प्रश्न हल कर सकती हूँ।

यह स्पष्ट है कि शकील और नीतू का सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भिन्न है तथा ये उन दोनों के अधिगम अभिवृत्ति को प्रभावित कर रहा है। बच्चों की अभिवृत्ति की विशेषता यह है कि वे वातावरण के प्रति संवदेनशील हैं अर्थात् वे अपने परिवेश में वयस्कों और साथियों से सतत बातचीत करते हैं तथा उनके द्वारा बच्चों की अभिवृत्तियों का निर्माण होता है, या उनके अभिवृत्तियों को सबल या निर्बल करते हैं। परिवार का भावनात्मक पूंजी अधिगम को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है। पारिवातिक पृष्ठभूमि में काफी भिन्नतायें होती हैं जो कि बच्चे के अधिगम को प्रभावित करता है।

सहपाठी – अधिगम अनुभव की डिजाइन करते समय बच्चे के ऊपर उनके सहपाठियों का प्रभाव का भी ध्यान–रखना अत्यंत आवश्यक है। सहपाठियों के सामूहिक संस्कृति एक शिक्षार्थी को विद्यालय जीवन को अपनाने में सहायता करता है वे अपने समूह में सीखते हैं मनोविनोद करते हैं। माध्यमिक विद्यालय के सभी स्तर के लड़के और लड़कियां अपना अलग सामाजिक समूह बनाने के लिए प्रवृत्त होते हैं।

विद्यालय के भीतर या एक कक्षा के बच्चे उप–समूह भाषा, क्षेत्र धर्म जाति, सामाजिक स्तर, और शैक्षणिक उपलब्धियों के आधार पर बनाते हैं। इस प्रकार के सहपाठी समूह एक विद्यार्थी के आत्म–सम्मान और उपलब्धियों को प्रभावित करता है। कुछ सहपाठी समूह विद्यालय में अध्यापक के सकारात्मक शिक्षण–अधिगम उपागम को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं जबकि कुछ समूह वैकल्पिक मूल्यों से सीखते हैं और ऐसे विद्यार्थी समूह विद्यानलय से अधिक अपेक्षा नहीं रखते हैं। ये विद्यार्थी अधिगम सामग्री से सीखने का प्रयास करते हैं परन्तु ये शायद अध्यापक द्वारा लक्षित प्रकार के नहीं होते हैं।

विद्यालय–प्रत्येक विद्यालय की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है परन्तु सूक्ष्म अवलोकन करने पर पाया जाता है कि विद्यालय में कई उप–संस्कृति है। विद्यालय में अध्यापकों और विद्यार्थियों की ये सांस्कृतिक समूह, क्षेत्र, भाषा, धर्म, जाति, और सामाजिक स्तर पर आधारित हो सकते हैं तथा ये कक्षाकक्ष क्रियाकलाप और शिक्षार्थी के अधिगम उपलब्धि को प्रभावित करते हैं।

SE-6 नये अनुभव अर्जित करने में सहपाठी के महत्व का वर्णन कीजिए।

शिक्षार्थी केंद्रित उपागम में अध्यापक की भूमिका

शिक्षार्थी केंद्रित उपागम में हम निम्नांकित प्रतिमानों पर विचार करते हैं।

- विद्यार्थियों के अधिगम तरीके अलग–अलग होते हैं (अनुदेश में इसका सामंजस्य होना चाहिए)
- विद्यालय में बच्चे की अंतनिर्हित जिज्ञासा और निरंतर स्व–अन्वेषण करने के व्यवहार को सीखने का आधार बनाना चाहिए। इसका अर्थ है कि बच्चे की रूचि के अनुसार जितनी गहराई से व जितने समय तक वह अपने कार्य को संतोषजनक पाता है तब तक उसे ऐसे अवसर विद्यालय में कराना चाहिए।
- एक बच्चा प्रायः अप्रत्याशित तरीकों से सीखता है (और अनुदेश में ऐसे परिस्थितियों को स्थान देना चाहिए)
- बच्चे अपने अधिगम क्षेत्र में बुद्धिमत्तपूर्ण ढंग से निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं।
- विद्यालय का कार्य है कि वे शिक्षार्थी को सीखने में इस प्रकार सहायता करें कि वह जीवनपर्यंत शिक्षार्थी बना रहे।

- खुले दिल–दिमाग से, विश्वास से, और परस्पर सम्मान की भावना अधिगम को सुदृढ़ करता है और विद्यालय में स्वीकृति का भाव तथा सकारात्मक भावना का वातावरण उपलब्ध कराना चाहिए। अतः एक अध्यापक के रूप में, शिक्षार्थी – केंद्रित उपागम में, निम्नांकित तीन महत्वपूर्ण भूमिकायें आपको निभाने हैं।

शिक्षार्थी का अवलोकनकर्त्ता और निदानकर्त्ता – शिक्षार्थी के व्यवहार और क्रियाकलापों को कक्षा के भीतर व बाहर आपको लगातार अवलोकन करना है ताकि उसके अधिगम अभिवृत्ति, अधिगम जरूरतों, सबलता और निर्बलता का अनुमान व पहचान किया जा सके। यह आपको शिक्षार्थी के लिए उचित अधिगम वातावरण तैयार करने और अधिगम क्रियाकलाप की संरचना करने में सहायता करेगा।

अधिगम के लिए वातावरण उपलब्ध कराने वाला – एक बार आप शिक्षार्थियों के अधिगम जरूरतों को पहचान लेते हैं तब आपका मुख्य कार्य होता है एक ऐसे अधिगम वातावरण तैयार करना जिसमें प्रत्येक शिक्षार्थी को सीखने के लिए तथा अपने अधिगम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूर्ण अवसर मिले।

अधिगम सहजकर्ता – शिक्षार्थी जब अधिगम क्रियाकलाप में संलग्न रहता है तब आप उनकी सतर्क होकर सहायता करें। प्रत्यक्ष शिक्षण से यह अधिक चुनौतीपूर्ण होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रत्येक शिक्षार्थी के सीखने का तरीका तथा अधिगम अभिवृत्तियाँ, भिन्न–भिन्न होती है अतः उनके अधिगम समयावधि ा में उचित परिस्थिति में हमें उन्हें उचित सहायता उपलब्ध कराना है। इसके अतिरिक्त जब भी आप शिक्षार्थी को निष्क्रिय पाते हैं उन्हें अधिगम क्रियाकलाप में भाग लेने के लिए प्रेरित करें।

SE-7	शिक्षार्थी–केंद्रित कक्षा में अध्यापक की तीन भूमिकाओं का वर्णन करें।

6.2.2 अधिगम केंद्रित उपागम (Learning centred approach) –

अधिगम–केंद्रित शिक्षा अधिगम प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाता है यद्यपि विद्यार्थियों का अधिगम प्रमुख स्थान रखता है, अधिगम, केंद्रित शिक्षा में, शिक्षा से जुड़े सभी व्यक्तियों जैसे अध्यापक भी विद्यार्थियों के साथ सह–शिक्षार्थी होता है। प्रमुख रूप से शिक्षार्थी–केंद्रित होता है परन्तु कक्षा परिस्थिति में अध्यापक अधिगम प्रक्रिया में शामिल होता है। शोध से पता चला है कि अधिगम केंद्रित शिक्षा विद्यार्थियों को कौशलीय दक्षता अर्जित करने में सहायता करता है तथा जीवन पर्यंत शिक्षार्थी बनाता है।

उदाहरण के लिए, जब आप अपने विद्यार्थियों को शैक्षणिक भ्रमण पर किसी कारखाने या बांध दिखाने के लिए लेकर जाते हैं तो केवल विद्यार्थी ही नहीं सीखते परन्तु आप भी बहुत सी नई बातें वहां के तकनीकी विशेषज्ञों, कर्मचारियों से बातचीत करके कारखाने के संचालन, निर्माण, उपयोगिता आदि के बारे में बहुत सी जानकारी प्राप्त करते है, इन एकत्रित जानकारियों को विद्यार्थियों के साथ बातचीत करके आप उनके अधिगम क्षमता को और अधिक सुदृढ़ बना सकते है।

अधिगम–केंद्रित शिक्षा में विद्यार्थी को शिक्षा का केंद्र बिंदु माना जाता है। यह विद्यार्थी के उस शैक्षणिक संदर्भ, जहाँ से विद्यार्थी आता है, को समझने की प्रक्रिया से शुरू होता है ताकि अध्यापक द्वारा समझने की प्रक्रिया विद्यार्थी के अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति की मूल्यांकन करते समय भी चलता रहता है। विद्यार्थियों को सीखने के लिए मूलभूत कौशल प्राप्त करने के लिए सहायता करके हम विद्यार्थियों को जीवनपर्यन्त ज्ञानार्जन करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। अतः वास्तव में अधिगम की जिम्मेदारी विद्यार्थी के ऊपर होती है और अध्यापक विद्यार्थी की शिक्षा को सहज, सुगम बनाने की जिम्मेदारी लेता है। यह उपागम, व्यक्तिवादी, लचीला, दक्षता–आधारित विभिन्न प्रकार की विधियों का उपयोग करने का प्रयास करता है तथा हमेशा किसी स्थान या समय से बंधा हुआ नहीं है। दूसरे शब्दों में यह उपागम विद्यार्थी आधारित शिक्षण–अधिगम वातावरण को प्रोत्साहित करता है जिसमें एक दूसरे के सहयोग से और विषय वस्तु की खोज–बीन से ज्ञान की सार्थकता को जाना जाता है। अध्यापक विद्यार्थी की उत्पादकता, ज्ञानार्जन, क्षमता, कौशलों को

सतत उच्चतर बनाने का प्रयास करता है तथा उसके व्यक्तिगत और व्यावसायिक क्षमताओं को विकसित करने के लिए भी प्रयास करता है। अध्यापक इसके लिए विभिन्न प्रकार के अनुदेशानात्मक विधियों उपकरणों का इस्तेमाल कर सकता है तथा लचीला समय व स्थान की व्यवस्था भी कर सकता है।

शिक्षार्थी अपने चुनाव के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार होता है तथा उसके पास अपने अधिगम पर नियंत्रण करने के लिए अवसर उपलब्ध होता है। इसके परिणामस्वरूप बच्चे के अधिगम से संबंधित सभी हितधारकों के मध्य एक सहयोगात्मक साझेदारी होता है।

अधिगम केंद्रित शैक्षणिक अभ्यासों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से है –

- कक्षा के भीतर व बाहर सहयोगात्मक सामूहिक अधिगम
- व्यक्तिगत विद्यार्थी का अन्वेषण और पूछताछ
- विद्यार्थी और अध्यापक दोनों के द्वारा अन्वेषण और पूछताछ
- समस्या आधारित खोज–बीन अधिगम
- समकालिक अंतःक्रियात्मक दूरस्थ अधिगम
- स्वयं के द्वारा अनुभूतिमूलक अधिगम क्रियाकलाप
- अधिगम कार्यों का स्वनिर्धारित प्रदर्शन

अधिगम–केंद्रित शिक्षा की विशेषताएं –

मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है –

- विद्यार्थी सूचना संग्रहण और संश्लेषित करके ज्ञान संरचना करते हैं और उसे सामान्य कौशलों जैसे खोजबीन, संप्रेषण, गहन चिंतन, समस्या समाधान आदि के साथ जोड़ते हैं।
- प्रभावकारी ढंग से ज्ञान संप्रेषण का उपयोग करते हुए उभरते और Enduring मुद्दों और वास्तविक जीवन की समस्याओं को हल करने पर बल दिया जाता है।
- अध्यापक की भूमिका पथ प्रदर्शक और अधिगम को सहज बनाना है।
- अध्यापक और विद्यार्थी मिलकर अधिगम का मूल्यांकन करते हैं।
- अध्यापन और आकलन एक दूसरे में गुंथे हुए हैं।
- आकलन का उपयोग अधिगम को बढ़ाने और निदान करने के लिए किया जाता है।
- त्रुटियों से सीखने और बेहतर प्रश्न उत्पन्न करने पर बल दिया जाता है।
- अपेक्षित अधिगम का आकलन प्रत्यक्ष रूप से पेपर पेंसिल, प्रोजेक्ट, प्रदर्शन पोर्टफोलियों आदि के द्वारा किया जाता है।
- अंतर्विषयी अन्वेषण के साथ उपागम सुसंगत है।
- संस्कृति सहकारी और सहयोगात्मक होता है।
- अध्यापक और विद्यार्थी साथ–साथ सीखते हैं।

Weimer (2002) के अनुसार अधिगम–केंद्रित शिक्षा प्राप्ति के लिए 5 अभ्यासों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है–

(i) विषय–वस्तु का कार्य–ज्ञान का आधार निर्माण करने के अतिरिक्त विषयवस्तु विद्यार्थियों को निम्नांकित पहलुओं पर भी सहयोग करता है।

- विषयविशेष के बारे में सोचने और अन्वेषण का अभ्यास कराने में।
- वास्तविक समस्याओं का हल करने में।
- विषय वस्तु के कार्य को समझने में और क्यों इस विषयवस्तु को सीखा।
- विषयविशेष के लिए अधिगम विधियां बनाने में।
- विषयवस्तु के विशिष्टमूल्य को समझने में।
- विषयवस्तु के द्वारा सीखने के तरीके विकसित करने में और उसके अर्थ तलाशने में।

(ii) अध्यापक की भूमिका–अध्यापक एक ऐसे वातावरण का सृजन करता है जो कि –

- विद्यार्थियों के अधिगम निर्माण करता है।
- विभिन्न प्रकार के अधिगम तरीकों में सामंजस्य स्थापित करता है।
- विद्यार्थियों को सीखने के लिए जिम्मेदारी स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है।
- अधिगम उद्देश्य अधिगम विधियों और मूल्यांकन का सतत संगत आयोजन करता है।
- विद्यार्थियों के अधिगम लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के अधिगम तकनीकों का उपयोग करता है।
- ऐसे क्रियाकलापों का डिजाईन करता है जिसमें विद्यार्थी और अध्यापक दोनों सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।
- विद्यार्थियों को स्वध्याय के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करता है।

(iii) अधिगम की जिम्मेदारी–हांलाकि अधिगम की जिम्मेदारी अध्यापक और विद्यार्थी दोनों की होती है लेकिन विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती है कि वे अधिगम और मूल्यांकन की जिम्मेदारी करें इसके फलस्वरूप विद्यार्थी–

- आगे के अधिगम के लिए अधिगम कौशलों का विकास करता है ।
- स्वनिर्देशित जीवनपर्यंत शिक्षार्थी बनता है।
- अपने अधिगम का स्वमूल्यांकन करता है और कर सकता है।
- साक्षरता सूचना कौशलों में सिद्धहस्त बनता है।

(iv) मूल्यांकन प्रक्रिया और उद्देश्य–अधिगम केंद्रित शिक्षा में मूल्यांकन अधिक समग्र और अधिगम के साथ जुड़ा होता है। इसमें शामिल है –

- समाकलित मूल्यांकन।
- संरचनात्मक अनुवर्तन के साथ रचनात्मक मूल्यांकन।
- सहपाठी और स्वयं के द्वारा मूल्यांकन।
- सीखने और विशेषज्ञता प्रदर्शन के लिए कई अवसर।

– विद्यार्थी अपने उत्तरों को न्यायोचित ठहराने के लिए प्रोत्साहित होता है।

– विद्यार्थी और अध्यापक अनुवर्तन के लिए समय निर्धारित करने में सहमत होते हैं।

– पूरे समय विशुद्ध मूल्यांकन का उपयोग किया जाता है।

(v) शक्ति संतुलन–अध्यापक से अधिक, विद्यार्थी अपने अधिगम पर नियंत्रण रखता है। इसलिए अध्यापक को सतर्कता के साथ विद्यार्थी को अपने अधिगम को नियंत्रित करने के लिए जिम्मेदारी ग्रहण करने के लिए अधिकार देने की प्रयास करने की आवश्यकता है।

– विद्यार्थियों को अतिरिक्त विषयवस्तु की खोज–बीन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

– उचित समय पर वैकल्पिक दृष्टिकोण अभिव्यक्ति के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाता है।

– कान्ट्रेक्ट ग्रेडिंग या दक्षता ग्रेडिंग का इस्तेमाल किया जाता है।

– मूल्यांकन मुक्त–अन्त्य होता है।

– विद्यार्थी सीखने के अवसर का लाभ उठाते हैं।

6.2.3 सहकारी अधिगम (Cooperative learning)

सहकारी अधिगम माडल का विकास कम से कम तीन मुख्य अनुदेशात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया गया है। ये लक्ष्य है शैक्षणिक उपलब्धि, विभिन्नता की स्वीकृति और सामाजिक कौशल का विकास। यह एक विशेष छोटी समूह उपागम है जिसमें प्रजातांत्रिक प्रक्रिया, व्यक्तिगत जिम्मेदारी, समान अवसर व सामूहिक पारितोषक निहित है। आज के कक्षा में कई प्रकार के सहकारी अधिगम क्रियाकलपों और माडल और उपयोग किया जाता है जैसे विद्यार्थी टीम का उपलब्धि विभाजन, जिग्सा और सामूहिक अन्वेषण। सभी सहकारी अधिगम पाठों में हांलाकि निम्नांकित मुख्य विशेषतायें होती है–

– शैक्षणिक सामग्रियों में सिद्धहस्त होने के लिए विद्यार्थी समूह में कार्य करते हैं।

– समूह उच्च, औसत और निम्न उपलब्धि वाले विद्यार्थियों को मिलाकर बनाते हैं।

– जहां तक संभव हो समूह में विभिन्न जाति लिंग और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों का समावेश होती है।

– परितोष पुरस्कार नियम व्यक्तिगत आधारित न होकर समूह आधारित होता है।

अध्ययनों से पता चला है कि सहकारी उपागम शैक्षणिक उपलब्धि, सहयोगात्मक व्यवहार, अंतः सांस्कृतिक समझ व संबंध तथा विकलांग विद्यार्थियों के प्रति दृष्टिकोण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सहकारीअधिगम के पांच मूलभूत और आवश्यक तत्व होते हैं (Borwn and Ciuffetelli parker, 2009) :

1. सकारात्मक अंतःनिर्भरता :

– विद्यार्थी पूर्ण रूप से सक्रिय भागीदारी करें और समूह के भीतर अपना योगदान दें।

– समूह के प्रत्येक सदस्य की एक कार्य–भूमिका / जिम्मेदारी है अतः उन्हें ये विश्वास करना चाहिए कि वे अपने व समूह के अधिगम के प्रति जिम्मेदार है।

2. आमने–सामने बातचीत करने को बढ़ावा देते हैं

– सदस्य एक दूसरे की सफलता को बढ़ावा देते हैं।

– विद्यार्थी एक दूसरे को बताते हैं कि वे क्या सीख रहे हैं या उनके पास क्या है तथा अपने साथियों को दत्तकार्य को समझने और पूरा करने में सहयोग देते हैं।

3. व्यक्तिगत जिम्मेदारी

– प्रत्येक विद्यार्थी अध्ययन किये जा रहे विषयवस्तु का प्रदर्शन करने में सिद्धहस्त होता है।

– प्रत्येक विद्यार्थी अपने अधिगम और कार्य के प्रति जबाव देह होता है।

4. सामाजिक कौशलें

– सफल सहकारी अधिगम के लिए सामाजिक कौशलों का होना आवश्यक है।

– सामाजिक कौशलों में शामिल है प्रभावकारी संवाद, अंतवैक्तिक और सामूहिक कौशल जैसे (i) नेतृत्व क्षमता (ii) निर्णय लेना (iii) विश्वसनीय (iv) संप्रेषण (v) विवाद प्रबंधन क्षमता

5. सामूहिक प्रसंस्करण

प्रत्येक समूह अपने प्रभावशीलता का मूल्यांकन करें और निर्णय लें कि किस प्रकार से इसे बेहतर बनाया जा सकता है। विद्यार्थी उपलब्धि को विचारणीय रूप से बेहतर बनाने के लिए दो विशेषताओं का होना आवश्यक है।

(क) विद्यार्थी समूह के लक्ष्य या पहचान के लिए कार्य करता है।

(ख) सफलता प्रत्येक शिक्षार्थी के अधिगम के ऊपर निर्भर है। सहकारी अधिगम कार्य और पुरस्कार संरचना की डिजाइन करते समय व्यक्तिगत जिम्मेदारी व जवाबदेही की पहचान करना चाहिए। व्यक्ति को यह मालूम होना चाहिए कि उसकी जिम्मेदारी क्या है और समूह के लक्ष्य प्राप्ति के लिए उनकी एक निश्चित उत्तरदायित्व है। समूह के कार्य के लिए विद्यार्थियों के मध्य आपस में सकारात्मक अंतःनिर्भरता होना चाहिए और उसके अधिगम प्रक्रिया में यह स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ना चाहिए। समूह कार्य को पूर्ण करने के लिए समूह के सभी सदस्यों की सक्रिय भागीदारी होना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक है कि समूह के प्रत्येक सदस्य के पास एक कार्य को पूरा करने की जिम्मेदारी ले जिसे समूह के अन्य सदस्यों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता है।

सहकारी अधिगम के उपयोग के लिए दिशा–निर्देश

– समूह के आकार को 3 से 5 विद्यार्थियों तक सीमित रखें।

– समूह के विभिन्न शैक्षणिक योग्यताओं, लिंग, जाति वाले विद्यार्थियों का सम्मिश्रण होना चाहिए।

– समूह के प्रत्येक सदस्य को एक निश्चित कार्य, जिम्मेदारी या भूमिका सौंपा जाना चाहिए जिससे समूह की सफलता में उनका योगदान हो।

– सहकारी अधिगम का उपयोग एक संपूरकता क्रियाकलाप के रूप में समीक्षा, समृद्धिकरण और अभ्यास के लिए करें जो कि समूह के सदस्यों को आपस में सामग्री को समझने के लिए एक दूसरे की सहायता करना चाहिए।

– सहकारी अधिगम की योजना बनाते समय कक्षा प्रबंधन, कार्य–सामग्रियों और समय प्रबंधन का ध्यान रखना चाहिए।

– व्यक्तिगत विद्यार्थी के योगदान को ग्रेड दें।

– समूह के विद्यार्थियों को एक समूह पुरस्कार उपलब्ध कराने पर विचार करना चाहिए।

– समूह के सदस्यों में परिवर्तन करना चाहिए ताकि कोई विद्यार्थी यह महसूस न करें कि वे 'धीमी' समूह का सदस्य है और सभी विद्यार्थियों को यह अवसर मिले कि वे विद्यालय वर्ष में कक्षा के अन्य सभी विद्यार्थियों के साथ कार्य करें।

– सहकारी अधिगम समूह को प्रभावकारी से कार्य करने के लिए सहयोगात्मक सामाजिक कौशलों को सीखाना, माडल बनाना और नियमित रूप से पुनर्बलन प्रदान किया जाना चाहिए।

सहकारी अधिगम के विभिन्न चरणों में अध्यापक की भूमिका का सारांश टेबल 4.2 में दिखाया गया है।

सारणी 4.2 सहकारी अधिगम माडल में अध्यापक की भूमिका

चरण	अध्यापक की भूमिका
चरण 1 – लक्ष्य व अधिगम सेट की प्रस्तुति	अध्यापक पाठ के उद्देश्यों को समझता है और अधिगम सेट की स्थापना करता है।
चरण 2 – सूचना प्रस्तुति	अध्यापक विद्यार्थियों को मौखिक या लिखित सामग्री के द्वारा सूचना उपलब्ध कराता है।
चरण 3 – अधिगम टीम केलिए विद्यार्थियों का संगठन	अध्यापक विद्यार्थियों को बताता है कि अधिगम समूह कैसे बनाना है और प्रभावकारी रूपांतरण से सहयोग देता है।
चरण 4 – समूह कार्य और अध्ययन में सहयोग	अध्यापक अधिगम समूह को उनके कार्य संपादन में सहयोग देता है।
चरण 5 – सामग्री परीक्षण	अध्यापक अधिगम सामग्री की ज्ञान की सूची बनाता है या समूह अपने कार्य का परिणाम प्रस्तुत करते हैं।
चरण 6 – पहचान दिलाना	अध्यापक व्यक्तिगत और समूह के प्रयास और उपलब्धि को पहचान दिलाने के तरीके तलाशते हैं।

सहकारी अधिगम के लाभ व सीमायें

सहकारी अधिगम पर किये गये शोध कार्यों में इसके सकारात्मक परिणाम प्रदर्शित हुए हैं। सहकारी अधिगम में विद्यार्थियों को सामूहिक क्रियाकलाप में संलग्न होने की आवश्यकता होती है जिसमें अधिगम में वृद्धि होती है और अन्य महत्वपूर्ण अधिगम पहलुएं जुड़ जाती हैं। सकारात्मक परिणाम में शामिल है–शैक्षणिक लाभ, बेहतर अंतर्वैक्तिक संबंध और व्यक्तिगत व सामाजिक विकास में वृद्धि। उपागम के कुछ मुख्य लाभ जो व्यापक शोध के पश्चात उद्भासित हुये हैं इस प्रकार से है–

– विद्यार्थी शैक्षणिक उपलब्धि का प्रदर्शन करते हैं।

– सहकारी अधिगम विधि प्रायः सभी क्षमता स्तरों पर समान रूप से प्रभावकारी हैं।

– सहकारी अधिगम सभी प्रकार के समूह के लिए प्रभावकारी है।

– जब विद्यार्थी को एक दूसरे के साथ कार्य करने का अवसर दिया जाता है तो वे एक दूसरे को बेहतर ढंग से समझते हैं।

- सहकारी अधिगम शिक्षार्थी के आत्म–सम्मान और स्व–अवधारणा में वृद्धि करता है।
- शिक्षार्थियों के मध्य, जाति, लिंग, सामाजिक स्तर और शारीरिक तथा मानसिक विकलांगता के कारण जो असमानता होती है वे सभी बाधायें सहकारी अधिगम में टूट जाते हैं तथा सकारात्मक अंतःक्रिया और मित्रता के भाव का उदय होता है।

हालांकि सहकारी अधिगम की बहुत सी सीमाएं भी हैं जिसके कारण यह प्रक्रिया जितना समझा जाता है उससे अधिक जटिल हो सकता है। सहकारी अधिगम में लगातार परिवर्तन होने के कारण यह संभव है कि अध्यापक शंकित हो सकती है और इस विधि को पूर्ण रूप से न समझ पाये। जो अध्यापक इस विधि को लागू कर रहे हैं शायद उनके विद्यार्थियों को गुस्से का सामना करना पड़े जो होशियार हैं, निपुण हैं क्योंकि कमजोर विद्यार्थियों के कारण उनकी प्रगति रूक सकती है और अपने समूह में उपेक्षित और तिरस्कृत भी अनुभव करते है।

SE-9 सहकारी अधिगम किस प्रकार शिक्षार्थी के आत्म–विश्वास को बढ़ाता है?

6.2.4 सहयोगात्मक अधिगम (Collaborative learning)

सहयोगात्मक अधिगम, सहकारी अधिगम उपागम से अधिक सामान्यीकृत उपागम है। इस उपागम में दो या उससे अधिक व्यक्तियों को सीखने में या एक साथ सीखने के लिए प्रयासरत होने के लिए अवसर उपलब्ध कराता है। व्यक्तिगत अधिगम से भिन्न इस अधिगम उपागम में व्यक्ति एक दूसरे के संसाधन और कौशलों का लाभ उठाते हुए सीखते हैं (जैसे सूचना के लिए एक दूसरे से पूछना, एक दूसरे के विचारों का मूल्यांकन और एक दूसरे के कार्य का निरीक्षण करना) विशिष्ट रूप से कहें तो सहयोगात्मक अधिगम का आधार है कि व्यक्तियों के समूह में ज्ञान का सृजन, सदस्यों द्वारा पारस्परिक अंतःक्रिया करके, अनुभवों को बांटकर, तथा सक्रिय भूमिका निभाकर, किया जा सकता है। इस प्रकार सहयोगात्मक अधिगम, एक शिक्षण–अधिगम विधि है जिसमें अध्यापक और विद्यार्थी दोनों मिलकर एक महत्त्वपूर्ण समस्या का अन्वेषण करते हैं या कोई अर्थपूर्ण प्रोजेक्ट का निर्माण करते हैं। विद्यार्थियों का एक समूह व्याख्यान पर चर्चा करते हैं या विभिन्न विद्यालय के विद्यार्थी इंटरनेट पर मिलकर साझा दत्तकार्य करते हैं ये दोनों सहयोगात्मक अधिगम के उदाहरण है।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सहयोगात्मक अधिगम एक विधि और वातावरण की ओर इंगित करता है जिसमें शिक्षार्थी किसी उभयनिष्ठ कार्य संपादन में संलग्न सहते हैं जहां पर प्रत्येक शिक्षार्थी एक दूसरे को खोजते हैं और उनके प्रति जवाबदेह भी होते हैं। इस विधि में कम्प्यूटर का इस्तेमाल करके आमने–सामने बातचीत कर सकते हैं (जैसे आनलाइन फोरम, चौट रूम आदि)। सहयोगात्मक अधिगम प्रक्रिया के परीक्षण में संवाद विश्लेषण और सांख्यिकी व्याख्यान विश्लेषण शामिल है। सहयोगात्मक व सहकारी अधिगम परंपरागत शिक्षण उपागमों से भिन्न है, इसमें विद्यार्थी व्यक्तिगतरूप से एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा नहीं करते हैं वरन एक साथ मिलजुलकर कार्य करते हैं। सहकारी और सहयोगात्मक उपागमों के मध्य सूक्ष्म अंतर, सहयोगात्मक अधिगम की प्रकृति को प्रदर्शित करेगा।

- सहयोगात्मक अधिगम किसी भी समय हो सकता है, उदाहरण के लिए गृहकार्य पूर्ण करने में विद्यार्थी एक दूसरे की सहायता करते हुए कार्य करते हैं। सहयोगात्मक अधिगम तब होता है जब विद्यार्थी एक स्थान पर मिलकर किसी संरचित प्रोजेक्ट पर छोटे समूह में कार्य करते हैं।

- सहयोगात्मक अधिगम अधिक गुणात्मक उपागम है जैसे, विद्यार्थी के बातचीत, साहित्य में किसी स्थान या इतिहास में मुख्य स्रोत के संदर्भ में, का विश्लेषण करना। दूसरी ओर सहकारी अधिगम में परिमाणात्मक विधियों का उपयोग होता है जो कि उपलब्धि की ओर देखता है। (अधिगम के उत्पाद पर)
- सहयोगात्मक अधिगम में एक बार कार्य निर्धारित करने के पश्चात, जो कि मुक्त–अन्त्य होते हैं, अध्यापक सभी अधिकार समूह को स्थानान्तरित कर देता है। यह समूह के ऊपर निर्भर करता है कि किस तरह से वे कार्य को मिलजुलकर पूरा करने की योजना बनाते हैं। सहकारी अधिगम उपागम में अधिकार व कार्य का स्वामित्व अध्यापक के पास होता है। तथा अध्यापक समस्या समाधान कराने के लिए समूह को लगातार दिशा–निर्देश, देखरेख व सुधारात्मक सुझाव देता है।
- सहयोगात्मक अधिगम वास्तव में विद्यार्थियों को सशक्त बनाता है जबकि सहकारी अधिगम में ऐसा नहीं होता है। इसके बजाय सहकारी अधिगम में विद्यार्थियों को अध्यापक की इच्छानुसार कार्य करना पड़ता है और सही या स्वीकार्य उत्तर देने के लिए कहा जाता है।
- शिक्षा में सहयोग अध्यापक, विद्यार्थी और पाठ्यक्रम के बीच एक बातचीत में विद्यार्थी को एक समस्या हल कर्ता के रूप में देखा जाता है। और समस्या समाधान व अन्वेषण उपागम को संज्ञानात्मक कौशलों पर बल देने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह उपागम शिक्षण को एक बातचीत के रूप में देखती है जिसमें अध्यापक व विद्यार्थी दोनों पाठ्यक्रम को negotiation करने की एक प्रक्रिया के माध्यम से सीखते हैं तथा विश्व के बारे में एक साझा दृष्टिकोण का विकास करते हैं। सहकारी अधिगम मूलभूत ज्ञान में दक्षता हासिल करने के उत्तम तरीके को प्रदर्शित करता है। एक बार जब विद्यार्थी एक दूसरे से अच्छी तरह से परिचित हो जाते हैं तो वे सहयोग के लिए, चर्चा के लिए और मूल्यांकन के लिए तैयार हो जाते हैं।

सहयोगात्मक अधिगम के लाभ–

- **विभिन्नताओं का समारोह** – विद्यार्थी सभी प्रकार के व्यक्तियों के साथ सीखता है। उन्हें चिंतन के लिए कई अवसर मिलते हैं तथा उठाये गये प्रश्नों के सहपाठियों द्वारा दिये गये विभिन्न उत्तरों के संदर्भ में जवाब देते हैं। छोटे समूह में विद्यार्थियों को किसी मुद्दे पर, विभिन्नताओं के आधार पर, अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर मिलता है। इस प्रकार के आदान–प्रदान में निश्चित रूप से विद्यार्थियों को दूसरों के संस्कृति और दृष्टिकोण को बेहतर ढंग से समझने में सहायता करता है।
- **व्यक्तिगत भिन्नताओं की स्वीकृति** – जब प्रश्न उठाये जाते हैं तो अलग–अलग विद्यार्थी के पास विभिन्न प्रकार के जवाब होते हैं। प्रत्येक जवाब समूह को एक ऐसे उत्पाद तैयार करने में सहायता करता है जो विस्तृत रूप से भिन्न दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है और इस प्रकार अधिक पूर्ण और व्यापक होता है।

- **अन्तर्वैक्तिक विकास**–विद्यार्थी अपने सहपाठियों और अन्य शिक्षार्थियों के साथ समूह में कार्य करते हुए अपने आपको जोड़ना सीखते है। यह उन विद्यार्थियों के लिए विशेषकर सहायक है जिनमें सामाजिक कौशलों का अभाव होता है। वे दूसरों के साथ संरचित अंतःक्रिया करके लाभ उठा सकते हैं।

- **अधिगम में विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी**–छोटे समूह में प्रत्येक सदस्य के पास अपना योगदान देने के लिए अवसर होता है। विद्यार्थी अपनी सामग्रियों को अधिक अपना मानते हैं तथा टीम में कार्य करते हुए संदर्भित मुद्दे पर गहन विचार विमर्श करते हैं।

- **व्यक्तिगत अनुवर्तन के लिए अधिक अवसर**–छोटे समूह में विचार आदान–प्रदान के लिए अधिक अवसर उपलब्ध होने के कारण विद्यार्थी अपने विचार व जवाब के बारे में व्यक्तिगत रूप से अनुवर्तन प्राप्त करते हैं। बड़े–समूह में इस प्रकार के अनुवर्तन प्रायः संभव नहीं होता है, इसमें एक या दो विद्यार्थी अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। तथा बाकी सब विद्यार्थी सुनते हैं।

SE-10 सहकारी और सहयोगात्मक अधिगम के बीच किन्हीं दो अंतरों का वर्णन कीजिये।

6.3 क्रियाकलाप–आधारित उपागम (Activity based approach)

क्रियाकलाप क्या है? क्या यह विद्यार्थियों द्वारा किया जाने कार्य है? एक अध्यापक के रूप में क्या क्रियाकलाप आधारित कक्षा में विद्यार्थियों की अपेक्षा आपकी भूमिका कम होगी? इस प्रकार के प्रश्न आपके मस्तिष्क में होने चाहिए।

हम जानते हैं कि कक्षा शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के तीन मुख्य तत्त्व हैं, अध्यापक, शिक्षार्थी, विषय या पाठ्यक्रम में सम्मिलित अनुभव। हम चर्चा कर चुके हैं कि शिक्षार्थी–केंद्रित उपागम, शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के लिए अधिक उपयुक्त है। शिक्षार्थी केंद्रित उपागम, में शिक्षार्थी की आवश्यकता, रूचि, मानसिक क्षमता और सामाजिक संदर्भ का ध्यान रखा जाता है। क्रियाकलाप आधारित उपागम में उस शिक्षार्थी को महत्त्व दिया जाता है जो अपने वातावरण में क्रियाकलाप में संलग्न रह कर नवीन ज्ञान प्राप्त करता है।

6.3.1 अधिगम क्रियाकलाप और इसके तत्त्व (Learning activity and its element)

हालांकि हम सब शिक्षण प्रक्रिया से परिचित हैं, क्रियाकलाप के बारे में हमारा दृष्टिकोण भिन्न है। क्रियाकलाप के संदर्भ में कुछ सामान्य दृष्टिकोण निम्न है–

- गीत गाना, नाचना, भूमिकायें निभाना, कहानी कहना, एकांकी अभिनय आदि।
- जो कार्य आनंददायक है वह क्रियाकलाप है।
- क्रियाकलाप में कुछ शारीरिक कार्य शामिल होता है।
- प्रत्येक क्रियाकलाप में शिक्षण सामग्री का होना आवश्यक है।
- क्रियाकलाप खेल, कहानी, भूमिका अभिनय, या गाने हो सकते हैं। हांलाकि यही एक तरीका नहीं है। क्रियाकलाप उपरोक्त लिखित विभिन्न तरीकों से भी आयोजित किया जा सकता है।
- प्रत्येक बच्चे को क्रियाकलाप में अवसर मिल सकता है।

- क्रियाकलाप व्यक्तिगत या समूह में आयोजित किया जा सकता है। प्रत्येक क्रियाकलाप में शारीरिक अभ्यास हो सकता है या नहीं भी हो सकता है लेकिन मानसिक अभ्यास जैसे चिंतन, श्रेणी में व्यवस्थापन, वैभिन्नयता समस्या समाधान कौशलों का विकास का होना आवश्यक है।
- एक विद्यार्थी को प्रत्येक क्रियाकलाप में संलग्न रहने व भाग लेने में संतुष्टि का अहसास होता है।
- एक क्रियाकलाप में कुछ छोटे परिवर्तन करके एक नये उद्देश्य प्राप्ति के लिए उपयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार क्रियाकलाप एक उद्देश्य oriented कार्य है जिसमें शिक्षार्थी Spontaneasly संलग्न होकर आनंदपूर्वक अधिगम उद्देश्य को प्राप्त करता है।

क्रियाकलाप के तत्व

जब आप क्रियाकलाप आधारित कक्षाकक्ष में प्रवेश करते हैं तो ऐसे कौन से पहलू हैं जो आपको विश्वस्त करता है कि क्रियाकलाप उचित ढंग से चल रहा है? आपको निम्नांकित पर ध्यान देना चाहिए। बच्चे आपकी उपस्थिति से व्यथित हुए बिना अपने कार्य में पूर्ण रूप से संलग्न रहते है। वे आपस में बातचीत कर रहे है, सामग्रियों का (Manipulation) समस्या समाधान के विभिन्न तरीके और व्यवस्था करने के लिए प्रयासरत है। यदि आप उनसे पूछते है कि वे क्या कर रहे है तो वे स्पष्ट रूप से वर्णन कर सके कि इस क्रियाकलाप को करने के क्या कारण है और इसका उद्देश्य क्या है।

दूसरे शब्दों में क्रियाकलाप रूचिकर होता है विद्यार्थियों को अधिगम उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है। हांलाकि क्या विद्यार्थी के लिए क्रियाकलाप अधिक कठिन या बहुत ही सरल होना चाहिए? यदि क्रियाकलाप आसान होगा तो विद्यार्थी में उसमें रूचि नहीं लेगा और यदि बहुत कठिन हुआ तो विद्यार्थी उस क्रियाकलाप में भाग लेने से बचने की कोशिश करेगा। विद्यार्थी उस क्रियाकलाप में भाग लेते हैं जहां पर वे कार्य संपादन करने के योग्य हैं। क्रियाकलाप को इस प्रकार डिजाइन करना चाहिए कि विद्यार्थी व्यक्तिगतरूप से या अपने सहपाठियों से बातचीत करके या अध्यापक की सहायता लेकर कार्य को पूरा करने का प्रयास करता है। कार्य में स्वतः अंतर्भागिता का सृजन करना अधिगम क्रियाकलाप का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। यह पाया गया है कि यदि एक विद्यार्थी एक क्रियाकलाप में आनंद प्राप्त करता है तो वह कार्य करता है और वह क्रियाकलाप को चुनौतीरूप में स्वीकार करके इसमें अधिक से अधिक संलग्न हो जाता है। यदि वह कार्य करने में आनंदित नहीं होता है और कार्य को बोझ समझता है तो कार्य को यात्रिकरूप से पूरा करने का प्रयास करेगा परिणामस्वरूप असफल हो जाता है। इसलिए क्रियाकलाप एक ऐसे कार्य के रूप में होना चाहिए जिसमें विद्यार्थी आनंद का अनुरूप करता हो।

अतः एक प्रभावकारी अधिगम क्रियाकलाप के चार मुख्य तत्व हैं। ये निम्न प्रकार से हैं :–

ध्यान केंद्रित–अधिगम क्रियाकलाप सदैव लक्ष्य निर्धारित होता है और इस प्रकार डिजाइन किया होता है कि प्रतिभागी विद्यार्थी समस्या समाधान करने में या लक्ष्य प्राप्ति के लिए ध्यान केंद्रित रखते हैं और आसानी से उनका ध्यान भंग नहीं होता है।

चुनौतीपूर्ण–एक प्रभावकारी क्रियाकलाप विद्यार्थियों के समक्ष एक चुनौती प्रस्तुत करता है। यह न तो इतना आसान होता है कि इसकी उपेक्षा की जा सकती है और इतना कठिन भी नहीं होता है कि हल करने का प्रयास न किया जाए। यह औसतरूप से कठिन होता है जो कि विद्यार्थियों के क्षमताओं के भीतर होता है परन्तु ध्यानकेंद्रित करके और कुछ अधिक प्रयास करके समस्या को हल कर सकते हैं।

स्वतः अंतर्भागिता–एक अच्छा क्रियाकलाप इस प्रकार होता है कि इससे शुरू होते ही विद्यार्थी इसके और तुरंत आकर्षित होते हैं और वे इस क्रियाकलाप में बिना किसी दबाव के या किसी अनुनय विनय के अपनी इच्छानुसार भाग लेते हैं।

आनंददायक–क्रियाकलाप के प्रभावशीलता का परीक्षण तब होता है जब विद्यार्थी इसके पूर्ण होने पर संतुष्टि का अनुभव प्राप्त करता है। एक अच्छे क्रियाकलाप की यह प्रकृति होती हैं कि इसका आयोजन विद्यार्थी के लिए रूचिकर होता है और यह उपलब्धि का भाव लाता है, आनंद उपलब्ध कराता है जो कि अंततः विद्यार्थी को अगले चुनौतीपूर्ण क्रियाकलाप में भाग लेने के लिए अंतः प्रेरित करने का स्रोत बनता है।

ये तत्व एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं है ये परस्पर अतः आश्रित है। आकृति में क्रियाकलाप के योजना की रूपरेखा दी गई है।

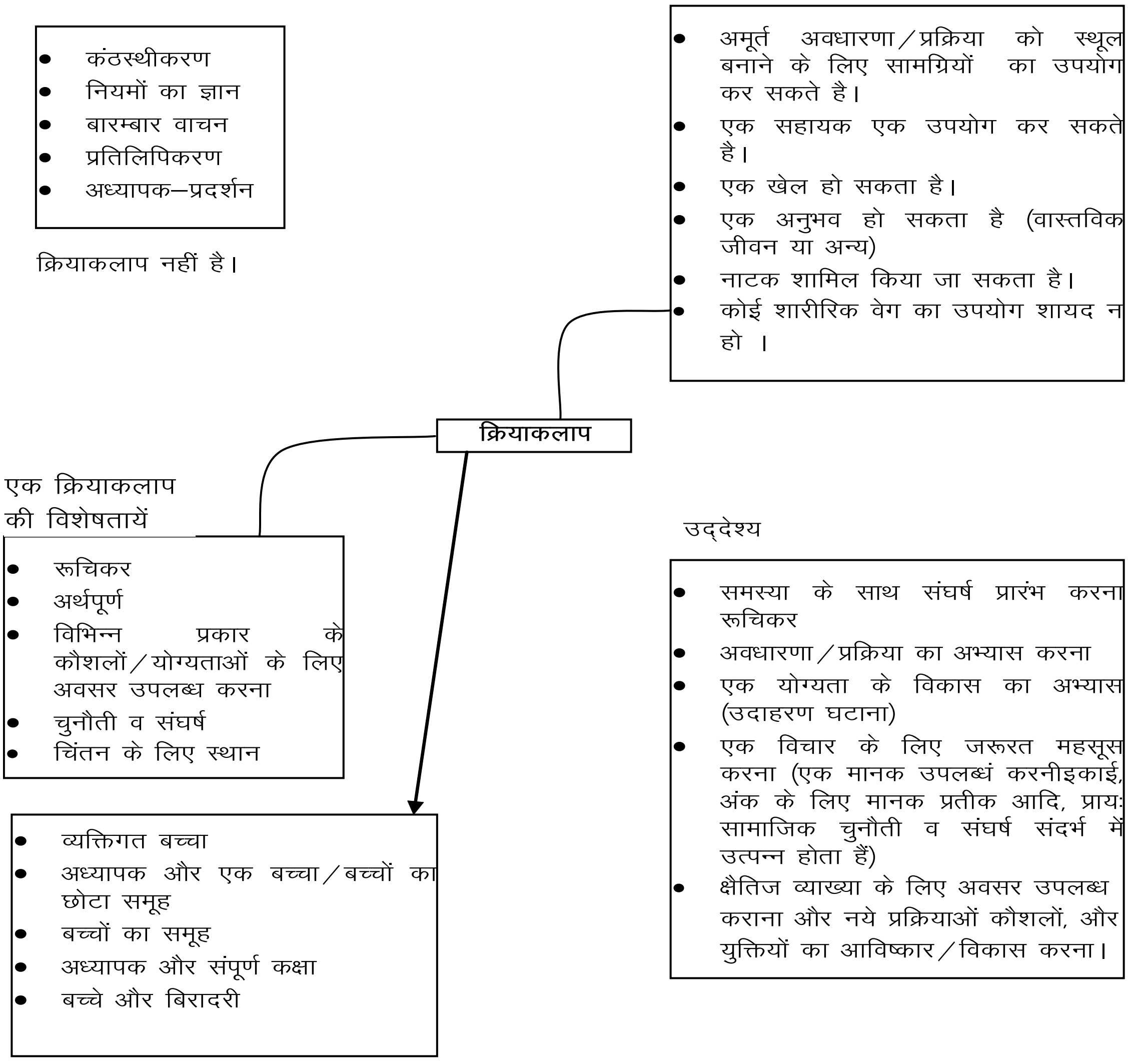

आकृति 1.–क्रियाकलाप के लिए योजना की रूपरेखा

(SOURCE: IGNOULMT-01 BLOCK 2, 2000 P. 63)

निम्नांकित प्रश्नों का उत्तर दीजिए –

SE-6 अधिकांश अध्यापक विद्यार्थी केन्द्रित उपागम का अनुसरण क्यों नहीं करते हैं? निम्नांकित में से कौन से उत्तर उपरोक्त प्रश्न का सही उत्तर है।

(i) कक्षा में इस उपागम का उपयोग करने के लिए उनके पास आवश्यक ज्ञान और कक्षा संचालन के लिए योजना बनाने के लिए कौशल योग्यताओं का अभाव होता है।

(ii) वे परम्परागत उपागम की आदत को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं।

(iii) विद्यार्थी केन्द्रित उपागम का अनुसरण करना कठिन है।

6.4 योग्यता आधारित उपागम (Competency based approach)

कक्षा में जब आप कोई भी पाठ पढ़ा रहे होते हैं तब आप स्वयं से पूछें क्या विद्यार्थियों ने पाठ की अवधारणाओं को समझकर अपेक्षित ज्ञान, समझ और कौशल अर्जित किया है। यदि अपेक्षित अधिगम परिणाम को मूर्तरूप से परिभाषित कर लिया है तो न केवल विद्यार्थियों को किस तरह से पढ़ाया जाये या सुविधा उपलब्ध करायी जाये ताकि लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके– के लिए योजना बनायी जा सकती है परन्तु उपरोक्त प्रश्न का मूल्यांकन व उत्तर भी प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के परिणाम आधारित उपागम को प्रायः योग्यता आधारित शिक्षा कहा जाता है परन्तु योग्यता क्या है?

– इस शब्द की कोई विशेष अद्वितीय परिभाषा नहीं है। नीचे कुछ कथन दिए गये हैं इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

– योग्यता एक आवश्यक कौशल, ज्ञान, दृष्टिकोण और व्यवहार है जिसकी वास्तविक जगत के कार्यो या गतिविधियों के सम्पादन के लिए आवश्यकता पड़ती है।

– योग्यता एक कौशल है जिसकी आवश्यकता एक सफल विद्याथी को पड़ती है।

– योग्यता एक कौशल है जिसका सम्पादन एक विशिष्ट स्थिति में एक विशिष्ट मापदंड के अधीन किया जाता है।

– योग्यता किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में समाहित आधारभूत विशेषता है जिसका उपयोग करके वह सफल प्रदर्शन करता है।

– एक योग्यता एक व्यक्ति द्वारा पूर्ण किया गया क्रियाकलाप है जिसको स्पष्ट परिभाषित व मापा जा सकता है (संबंधित ज्ञान और कौशलों का संग्रह)

इन कथनों के माध्यम से योग्यता के प्रकृति के बारे में क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है?

– योग्यता कुछ विशिष्ट कौशल, ज्ञान, दृष्टिकोण और व्यवहार है जिसे एक व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। सफल प्रदर्शन के लिए यह एक विशेषता या क्षमता है जिसे एक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में समाहित कर सकता है। (प्राप्त योग्य)

– यह सुस्पष्ट रुप से परिभाषित है। अतः मापने योग्य है। (माप योग्य)

– योग्यता के कथनों के शब्द इस प्रकार के होते हैं कि इसे अध्यापक व विद्यार्थियों तथा अन्य संबंधितों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। (संप्रेषण योग्य)

- इसके कई प्रकार के मापदंड या स्तर हो सकते हैं जो कि विद्यार्थी के स्तरों के विशेषताओं के ऊपर निर्भर करता है (उपयुक्तता)

प्रशासनिक स्तर पर योग्यताओं के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से है।

भाषायी योग्यताएं :–

- सही उच्चारण के साथ बोलना
- हस्तलिखित और छपे हुए शब्दों को स्पष्ट रुप से पढ़ना
- सभी विराम का सही इस्तेमाल करते हुए इमला लिखना
- पाठ को पढ़ने के पश्चात क्योंकि और या, चूँकि शब्द का उपयोग करके पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर देने योग्य होना

गणितीय योग्यतायें :–

- वस्तुओं और चित्रों का उपयोग करके 1–20 तक गिनना
- दैनिक जीवन की साधारण समस्या का हल इकाई विधि का उपयोग करके करना
- दिये गये आंकड़ों से औसत ज्ञात करना
- चाँदे की सहायता से विभिन्न मापों का कोण बनाना

पर्यावरण अध्ययन योग्यतायें :–

- अपने घर परिवार में संबंधियों और पड़ोसियों के साथ उचित व्यवहार का प्रदर्शन करना
- दैनिक जरूरतों की पूर्ति हेतु विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन से संबंधित व्यवसायों की सूची बनाना
- मानचित्र में मुख्य भौगोलिक विशेषताओं की पहचान करना व वर्णन करना
- पीने के पानी को साफ करने के साधारण प्रयोग करना

क्या आप योग्यता आधारित शिक्षा से संबंधित दो शब्द कौशल और योग्यता के इस्तेमाल से सहमत हैं?

कौशल सामान्यतः एक कार्य या कार्य समूह का सम्पादन एक विशेष स्तर के कुशलता पर करना। है इसमें मोटर का उपयोग और उपकरणों और औजारों का हस्त कौशल साधन करने की आवश्यकता होती है। कुल कौशल यद्यपि, जैसे–सही व शीघ्रता से जोड़ना और घर, विद्यालय और सार्वजनिक स्थानों पर उचित व्यवहार करने की आवश्यकता की प्रशंसा करना ज्ञान व दृष्टिकोण आधारित है।

योग्यता प्राप्ति के लिए केवल कौशल की प्राप्ति पर्याप्त नहीं हैं इसके लिए किसी व्यक्ति को एक निर्धारित कुशलता स्तर पर प्रदर्शन करना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति को अपने कौशल पर सिद्धहस्त होना (उच्चस्तरीय प्रदर्शन) आवश्यक है, यदि वह उस कौशल में योग्यता हासिल करना चाहता है। उदाहरण के लिए कक्षा तृतीय के विद्यार्थियों के लिए हम एक मापदंड दो अंकीय संख्याओं के योग के लिए निर्धारित कर सकते हैं। जैसे दो अंकीय संख्याओं को बिना हासिल के जोड़ करना। निर्धारित समय सीमा के भीतर कम से कम कार्य सटीकता से पूर्ण करना। यदि इस प्रकार के जोड़ के 20 प्रश्न (प्रत्येक प्रश्न के 1 अंक) विद्यार्थियों को दिये जाये तो कम से कम 16 प्रश्न सही ढंग से हल करता है (या 16 अंक अर्जित करता है। उसे हम कह सकते हैं कि उसने उस विशेष कौशल में दक्षता हासिल (या योग्यता) कर लिया है।

परंपरागत अध्यापक केन्द्रित उपागम में जहाँ पर निर्धारित समय के भीतर पाठ्यक्रम को पूरा करने पर बल दिया जाता है। जबकि योग्यता आधारित उपागम में इकाई की प्रगति का अर्थ है विशेष ज्ञान और कौशल में सिद्धहस्त होना। यह विद्यार्थी केन्द्रित उपागम के समान है क्योंकि यह कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी के ज्ञानार्जन में सिद्धहस्त होने पर बल दिया जाता है।

यदि आप योग्यता आधारित उपागम को अपनाने का निर्णय लेते हैं, आपको निम्नांकित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

किसी पाठ को शुरु करने से पहले (किसी कक्षा विशेष के लिए और किसी विशेष विषय के लिए) उन योग्यता कथनों की सूची बनाये जिसे प्राप्त करना है। कथनों की रचना सावधानीपूर्वक करना चाहिए ताकि शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया और मूल्यांकन को सुनिश्चित तरीके से आयोजित किया जा सके।

इन योग्यताओं को जो आपस में एक दूसरे से संबंधित है इस प्रकार से व्यवस्थित करें कि इनके कठिनाई का स्तर सतत् उच्च हो। अधिगम एक सतत प्रक्रिया है जिसमें अधिगम इकाई को स्तरीय रूप से व्यवस्थित किया जाता है और एक विद्यार्थी क्रमिक रूप से निम्न से उच्च स्तर की ओर योग्यता को प्राप्त करते हुए प्रगति करता है। एक विद्यार्थी जब तक एक योग्यता को प्राप्त नहीं कर लेगा वह दूसरी योग्यता की ओर नहीं बढ़ सकता है। उपलब्धि का मूल्यांकन के लिए उपयोग किये जाने वाले मापदंडों का निर्धारण करना चाहिए इसके अतिरिक्त उन स्थितियों का निर्धारण करें जिसके अन्तर्गत उपलब्धि का मूल्यांकन किया जायेगा इसके साथ दक्षता स्तर का भी सुस्पष्टता के साथ निर्धारण करें।

विभिन्न प्रकार के अनुदेशात्मक तकनीकों और समूह क्रियाकलापों का इस्तेमाल, विद्यार्थियों को योग्यता प्राप्ति के लिए करें। इस प्रकार अनुदेशात्मक कार्यक्रम व्यक्तिगत विकास और निर्धारित योग्यताओं का मूल्यांकन करने के अवसर प्रदान करता है। यहाँ पर लक्ष्य है योग्यताओं को प्राप्त करना। इसलिए विभिन्न विधियों या सामग्रियों का इस्तेमाल करना चाहिए जिससे विद्यार्थी योग्यता अर्जित करने में सिद्धहस्त हो जाये।

पाठ्य पैराग्राफ, संचार, कोई अन्य साधन और वास्तविक जीवन के सामग्रियों का इस्तेमाल योग्यता अर्जन करने के लिए करना चाहिए। प्रतिभागी के ज्ञान और दृष्टिकोण का ध्यान योग्यता का मूल्यांकन करते समय अवश्य रखें, परन्तु यह याद रहे कि विद्यार्थी को योग्यता आधारित प्रदर्शन उसके मूल्यांकन के प्रमाण का प्रमुख स्रोत है। अनुदेशात्मक कार्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थियों को उनके अपने गति से प्रगति करने का अवसर दें इसके लिए आप निर्दिष्ट योग्यता उपलब्धि हेतु उपयुक्त प्रदर्शन करें।

प्रदर्शन के मूल्यांकन की प्रति पुष्टि विद्यार्थियों को तुरंत उपलब्ध कराये ताकि विद्यार्थी अपनी गल्तियों को सुधार कर या अतिरिक्त प्रयास करके योग्यता के दक्षता स्तर को प्राप्त कर सके।

विद्यार्थी को उसके योग्यता के दक्षता स्तर को प्रदर्शित करने के लिए अवसर उपलब्ध करायें और यह प्रक्रिया तब तक जारी रखें जब तक वह दक्षता स्तर का प्रदर्शन न करें।

योग्यता आधारित उपागम की उपयोगिता

- योग्यता आधारित उपागम विद्यार्थी को रटकर याद करने की पद्धति से दूर रखता है।
- विद्यार्थी ने आज जो कुछ सीखा है उसे वह कल भूल नहीं सकता है क्योंकि विद्यार्थी आपके दिशा निर्देशन में योग्यता के दक्षता स्तर को प्राप्त करता है।
- योग्यताओं का मूल्यांकन का संबंध प्रत्यक्ष रूप से अधिगम अनुभव के उद्देश्य से होता है और यह अपेक्षा की जाती है कि यह सतत और योग्यता आधारित होगा ।
- मूल्यांकन परिणाम का उपयोग विद्यार्थी के प्रदर्शन में सुधार के लिए किया जाता है। निम्न उपलब्धिकर्ता के लिए नैदानिक कोचिंग ओर उच्च उपलब्धिकर्ता के लिए समृद्धिकरण कार्यक्रम का आयोजन सहायता करता है चूंकि यह प्रत्येक विद्यार्थी के दक्षता स्तर की प्राप्ति को लक्षित करता है अतः यह प्रत्येक श्रेणी की अधिगम आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।
- उपयुक्त क्रियाकलापों जैसे कहानी सुनाना, भूमिका प्रदर्शन, संवाद, पहेली अभ्यास, शब्द खेल, जादू, क्विज आदि विद्यार्थियों की योग्यताओं को उपलब्ध करने में सहायता करता है।
- इस उपागम में शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया आनंददायक और रूचिकर होता है।

सीमायें :–

अध्यापक को विषयवस्तु के बारे में गहन ज्ञान रखने की अति आवश्यकता होती है क्योंकि विद्यार्थी आपके सहयोग से उपलब्धि प्राप्त करेगा यदि अध्यापक विषयवस्तु में कुशल नहीं है तो उस स्थिति में यह उपागम शायद कार्य न करें।

सभी विद्यालयों का अधिगम वातावरण, श्रेष्ठ तरीके से ज्ञानार्जन के लिए बराबर नहीं होते हैं और इस प्रकार निर्धारित समय में याोग्यताओं की प्राप्ति प्रभावकारी नहीं होती है।

चूंकि विद्यार्थियों की सीखने की गति अलग–अलग होती है इसलिए निर्धारित समय में योग्यतओं की उपलब्धि विद्यार्थियों को कराना अध्यापक के लिए कठिन होता है।

निम्न उपलब्धि प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को उचित नैदानिक कोचिंग उपलब्ध कराने के लिए सभी अध्यापक समान रूप से सक्षम नहीं है। विद्यार्थियों के लिए योग्यताओं की दक्षता स्तर हासिल करना कठिन होता है विशेषकर प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थियों के लिए।

योग्यताओं को विस्तृत रुप से सह–योग्यताओं में बांटा जाता है और यह देखा गया है कि मूल्यांकन में सभी विवरण को स्थान नहीं मिलता है।

योग्यताओं / सह–योग्यताओं की विस्तृत सूची के लिए क्रियाकलाप और परीक्षण बिंदु। तैयार करना सदैव व्यावहारिक नहीं होता है।

6.5 संरचनात्मक उपागम (Structural approach)

क्या आप सोचते हैं कि बच्चे सिर्फ विद्यालय में सीखते हैं?

6.5 संरचनात्मक उपागम –

(i) विद्यार्थी का पूर्व ज्ञान नये ज्ञान की संरचना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(ii) अधिगम एक सक्रिय अर्थसृजन करने की प्रक्रिया है।

(iii) एक विद्यार्थी की तेज स्मरणशक्ति ज्ञान की संरचना करने का आधार है।

जब विद्यार्थी कक्षा में समूह में कार्य करते हैं, उन पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ता है तथा अध्यापक की भूमिका एक सहायक की होती है। विद्यार्थी अपने पुराने अनुभवों को नये अनुभवों से जोड़ते हैं। जब तक वे समूह में कार्य करते है एक दूसरे के विचारों का आदान–प्रदान होता रहता है।

सम्पूर्ण प्रक्रिया ज्ञान सृजन के उद्देश्यों पर आधारित होती है अतः अपनाये गये उपागम को रचनावाद उपागम कहते हैं। शिक्षण और अधिगम का रचनावाद उपागम जिस सिद्धान्त पर आधारित है उसे रचनावादी अधिगम सिद्धान्त कहते हैं। इसके अनुसार ज्ञान का नर्माण अधिगमकर्ता के पूर्व ज्ञान पर आधारित होता है। गतिविधियों से ही सक्रिय रूप से पुराने अनुभवों को नये विचारों से जोड़ते हुए ज्ञान का सृजन करना है।

रचनावाद

रचनावाद् दर्शनशास्त्र का एक विद्यालय है वर्तमान में यह स्विस मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे (1896–1980) एवं रशियन मनोवैज्ञानिक लेव वायगोटस्की (1896–1934) के योगदान से बहुत विस्तृत रुप में शिक्षा दर्शन के रुप में विकसित हो चुका है।

तत्व रचनावाद पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त पर आधारित है इसके अनुसार ज्ञान अधिगमकर्ता द्वारा सक्रिय रहकर सृजन होता है न कि निष्क्रिय रहकर वातावरण द्वारा प्राप्त किया जाता है। 'जानने के लिए आना'' अपनाने की एक प्रक्रिया है जो कि बालक के अनुभाविक संसार एवं उसमें निरंतर सुधारों पर आधारित है।

वायगोटस्की ने समाज रचनावाद से प्रभावित संज्ञानात्मक विकास पर कार्य किया जो कि व्यक्तिगत रूप से सामाजिक अनुक्रिया की सहायता से वातावरण द्वारा ज्ञान के निर्माण पर बल देता है।

6.6 सारांश (Summary) :

कक्षाकक्ष परिस्थिति में, सम्पूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी शिक्षक एवं पाठ्य वस्तु सम्मिलित होकर शिक्षण एवं अधिगम उपागम का निर्माण करते है। प्रत्येक उपागम की उपयोगिता एवं सीमाएं है और इस बात पर भी निर्भर करता है कि हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में उपागम किस प्रकार से सहायता करता है। इस इकाई में शिक्षण एवं अधिगम से संबंधित उपागमों शिक्षक–केन्द्रित उपागम, विषय–केन्द्रित उपागम, विद्यार्थी केन्द्रित उपागम, गतिविधि आधारित उपागम, दक्षता आधारित उपागम और रचनावादी उपागम की चर्चा की गई –

- परंपरागत शिक्षक केन्द्रित उपागम पूर्ण रुप से शिक्षक के अधिकार में होता है जिसमें पाठ वस्तु के निर्माण, कक्षा में संपादन एवं अधिगम से संबंधित प्रत्येक पहलु में शिक्षक की भूमिका निर्णायक होती है।
- विद्यार्थी केन्द्रित उपागम में विद्यार्थियों में स्वतंत्र चिन्तन और जिज्ञासा को जागृत करता है समस्या समाधान कौशल का विकास करता है, प्रोजेक्ट की रूपरेखा और क्रियान्वीकरणा को बढ़ावा देता है सृजनात्मक चिन्तन को बढ़ावा देता है।
- अधिगम केन्द्रित उपागम प्रमुख रूप से शिक्षार्थी केन्द्रित होता है, विद्यार्थियों को कौशलीय दक्षता अर्जित करने में सहायता करता है।
- सहकारी अधिगम शैक्षणिक उपलब्धि, विभिन्नता की स्वीकृति और सामाजिक कौशल का विकास करता है।
- सहयोगात्मक अधिगम में दो या उससे अधिक व्यक्तियों को सीखने में या एक साथ सीखने के लिए प्रयासरत होने के लिए अवसर उपलब्ध करता है।
- क्रियाकलाप–आधारित उपागम में शिक्षार्थी को महत्व दिया जाता है जो अपने वातावरण में क्रियाकलाप में संलग्न रह कर नवीन ज्ञान प्राप्त करता है।

6.7 अभ्यास के प्रश्न

1 विद्यार्थी केन्द्रित उपागम में अपने कक्षा के विद्यार्थियों के विभिन्न पहलुओं को समझना क्यों आवश्यक है ?

2 सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में सहपाठियों की भूमिका को समझाइए ?

3 अधिगम केन्द्रित शिक्षा की विशेषताएं लिखिए।

4 सहकारी अधिगम मॉडल से आप क्या समझते हैं।

5 शिक्षक केन्द्रित उपागम और शिक्षार्थी केन्द्रित उपागम से आप क्या समझते हैं कक्षा शिक्षण में किस उपागम से बच्चों को सीखने, समझने, अर्थ गढ़ने एवं निर्णय लेने तथा विभिन्न संदर्भों से अर्जित ज्ञान को जोड़ने का मौका मिलता है।

6. क्रियाकलाप आधारित उपागम से सम्बन्धित मुद्दे व विचार से आप क्या समझते हैं समझाइएँ?

इकाई – 7

अधिगम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का प्रबंधन

(Management of Teaching, learning process)

7.0 प्रस्तावना (Introduction)

अधिगम प्रक्रिया, अधिगम एवं शिक्षण की विभिन्न विधियां तथा उपागम, अधिगम केंद्रित उपागम विशेष रूप से क्रियाकलाप आधारित उपागम के बारे में जानना तथा इन्हें कक्षा–कक्ष में लागू करना ही पर्याप्त नहीं है। आपकों केवल विभिन्न विधियों और उपागमों का ज्ञान होना ही आवश्यक नहीं है, लेकिन वास्तविक कक्षा–कक्ष की परिस्थिति में ज्ञान के उपयोग का कौशल भी आवश्यक है। क्या आप यह कल्पना कर सकते है कि जब आप कक्षा–कक्ष में किसी ऐच्छिक विधि/व्यूह रचना का उपयोग करते हैं तब आप किस प्रकार की कठिनाईयों का सामना करते हैं?

निम्नलिखित परिस्थिति को पढ़िए –

परिस्थिति–1 : अब श्रीमान विवेक ने कक्षा VI में भूगोल पढ़ाने के लिए, सभी आवश्यक सामग्री को भली प्रकार से तैयार क्रियाकलाप के साथ, प्रवेश किया तब उन्होंने एक शोरगुल वाली कक्षा का सामना किया। दो बच्चे आपस में झगड़ रहे थे और चिल्ला रहे थे तथा वे झगड़ने वाले बच्चों को भड़का रहे थे। कागज, किताब व कापियां, कक्षा में चारो ओर फैले हुए थे। बारिश का पानी, छत के छेद से टपक रहा था। कक्षा पूरी तरह से अस्त व्यस्त अवस्था में थी। उसने विद्यार्थियों को शांत करने और कमरे को व्यवस्थित करने की कोशिश की तभी कुछ बच्चों ने कमरा गीला होने तथा बैठने की जगह को भींग जाने की शिकायत की। कुछ विद्यार्थियों ने श्रीमान विवेक को भूगोल पढ़ाने के बजाय कहानी सुनाने के लिए कहा।

जैसे कि आप कल्पना कर सकते हैं कि श्रीमान विवेक वहां पर किस प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहे थे –

- विद्यार्थियों के बीच में अनुशासनहीनता
- कक्षा में भौतिक सुरक्षा और आराम में कमी, तथा
- विद्यार्थियों की भूगोल में अरूचि।

इस प्रकार की बहुत सी समस्याएं हो सकती हैं। विभिन्न मूलभूत आवश्यकताओं की कमियां जैसे सुनिश्चितता, सुरक्षित एवं सहानुभूतिपूर्ण वातावरण, पर्याप्त शिक्षण, अधिगम सामग्री, अच्छे, विद्यार्थी–विद्यार्थी और विद्यार्थी–शिक्षक संबंध, रूचिपूर्ण शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया एवं विद्यार्थियों के बीच अनुशासन, कक्षा–कक्ष की प्रक्रिया में विघटन पैदा कर सकता है। एक, 40 विद्यार्थियों की कक्षा में उनकी अधिगम आवश्यकताओं पर आधारित अनेकों समस्याएं जैसे मस्तिष्क का संवेगात्मक पक्ष, कक्षा–कक्ष के अंदर व बाहर का तनाव एवं इस प्रकार की अन्य समस्याएं हो सकती है। वास्तव में प्रत्येक कक्षा में शिक्षक को अनेकों अजीबो गरीब समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो कक्षा–कक्ष के वातावरण को विघटित करती है तथा यहां तक कि बहुत अच्छी प्रकार से तैयार की गयी तिथियों एवं व्यूह रचना को भी बाधित करती है।

अपनी कक्षा के बारे में सोचते हुए कक्षा को अक्सर बाधित करने वाले दो तथ्यों को लिखिए। विषय की पाठ्यवस्तु और शिक्षण की प्रक्रिया में, दक्षता के साथ–साथ प्रबंधन कौशल भी आवश्यक है। कक्षा में प्रत्येक बच्चे के द्वारा प्रभावपूर्ण अधिगम के लिए, कक्षा शिक्षण नेतृत्व की सफलता शिक्षक द्वारा प्रभावशाली कक्षा प्रबंधन पर निर्भर करता है। एक शिक्षक के रूप में, आपको कक्षा प्रबंधन का कौशल विकसित करना है जिससे

प्रत्येक बच्चे को सीखने एवं विकास करने का अवसर प्राप्त हो। प्रभावशाली कक्षा प्रबंधन के विभिन्न पहलू हैं जैसे – अधिगम के लिए सहानुभूति पूर्ण वातावरण का निर्माण करना, प्रत्येक विद्यार्थी को सहभागिता के लिए प्रोत्साहित करना, कक्षा में परस्पर क्रिया को बढ़ावा देना, स्वस्थ अन्तव्यैक्तिक संबंधों को सम्भालना अधिगम के प्रकरण पर, ध्यान केंद्रित रखना, अनुशासनहीनता की समस्याओं का समाधान करना आदि। दूसरे शब्दों में, कक्षा में कक्षा प्रबंधन के लिए योजना, नियंत्रण एवं परस्पर क्रिया की सुविधा प्रदान करने की योग्यता की आवश्यकता होती है, जो क्रियाकलाप एवं अधिगम में वृद्धि के लिए उपयुक्त होती है और प्रत्येक बच्चे की विभिन्न आवश्यकताओं एवं योग्यताओं का ध्यान रखती हैं आओ इस इकाई में कक्षा प्रबंधन के तीन पहलुओं के बारे में जाने –

→ प्रत्येक बच्चे के अधिगम स्तर को बढ़ाने के लिए एवं उसे प्रोत्साहित करने के लिए कक्षा की भौतिक अवस्था में सुधार करना।

→ बच्चों को अधिगम पर ध्यान केंद्रित करने के योग्य बनाने के लिए कक्षा में उपलब्ध समय और स्थान का उपयोग करना।

→ कक्षा में बच्चों को प्रोत्साहित करने के तरीकों एवं अनुशासन आदि से उनकी ऊर्जा को अधिगम में बढ़ोत्तरी की ओर केंद्रित करना।

7.1 अधिगम उद्देश्य (Learning objectives)

इस इकाई को पूरा करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- आप, अपने बच्चों के अधिगम के लिए कक्षा के वातावरण को सहानुभूतिपूर्ण बना सकेंगे।
- कक्षा में प्रभावशाली अधिगम को बढ़ाने के लिए उपयुक्त रूप से विद्यार्थियों का समूहीकरण कर सकेंगे।
- कक्षा में व्यक्तिगत रूप से एवं सामूहिक रूप से अधिगम को सुविधा उपलब्ध कर सकेंगे।
- बच्चों के अधिगम के लिए कक्षा में उपलब्ध स्थान व समय के समुचित उपयोग की योजना बना सकेंगे।
- अधिगम क्रियाकलाप को सुचारू रूप से चलाने के लिए बच्चों को अनुशासन एवं अधिगम के लिए प्रोत्साहित कर सकेंगे।

7.2 अधिगम परिस्थितियों का प्रबंधन (Management of learning situation)

एक अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कक्षा में प्रत्येक छात्र के अधिगम को उत्साहित करने के लिए अवसर व परिस्थितियों का सृजन करें। जब आप अधिगम के लिए उसके पक्ष में परिस्थिति के सृजन के बारे में सोच रहे हैं तो तब अपनी कक्षा की ओर देखिए और कक्षा के वातावरण के घटकों की पहचान करने की कोशिश कीजिए।

एक कक्षा का निर्माण लगभग समान आयु के विद्यार्थियों के समूह द्वारा होता है, और शिक्षक बच्चों को शिक्षण एवं उनके अधिगम में सुविधा प्रदान करता है। एक शिक्षक अपनी कक्षा के सभी बच्चों की भली–भाँति जानकारी रखता है। अक्सर विद्यालय में एक कमरे में विशेष रूप से एक कक्षा की ही रचना की जाती है, जिसे कक्षा–कक्ष कहते हैं। फिर भी विभिन्न विद्यालयों में आपने देखा होगा कि कक्षाओं की संख्या कमरों की संख्या से अधिक होती है। इस प्रकार के विद्यालयों में एक कमरा एक से अधिक कक्षाओं के लिए उपयोग किया जाता है। (इकाई–7, अनेक कक्षाओं के लिए संदर्भित) एक शिक्षक एवं विद्यार्थी के अतिरिक्त और कौन–कौन से घटक कक्षा के वातावरण का निर्माण करते हैं, इसके बारे में आप क्या सोचते हैं?

परिस्थिति–1, पर विचार करते हैं – जिस कक्षा में श्रीमान विवेक शिक्षण के लिए गये, जहां छत टपक रही है, बैठने का स्थान और फर्श भींगा हुआ है, डेस्क और अन्य सामग्री कक्षा में चारों ओर बिखरी हुई पड़ी है। निश्चित रूप से यह स्थिति बच्चों का ध्यान किसी क्रियाकलाप पर केंद्रित करने के अनुकूल नहीं है। यदि आप श्रीमान विवेक के स्थान पर है तो आप क्या करेंगे? निश्चित रूप से आपको सुरक्षित, अनुकूल एवं आरामदायक स्थिति वाला कदम कक्षा की व्यवस्था को सुधारने के लिए उठाना पड़ेगा। इसका संबंध कक्षा की भौतिक अवस्था से है जिससे बच्चे को सुरक्षा एवं आराम की आवश्यकता होती है। कक्षा के भौतिक वातावरण में उपलब्ध संसाधन, सामग्री भी शामिल होते हैं जिनका उपयोग अधिगम को सुविधा प्रदान करने के लिए बच्चों एवं शिक्षक दोनों के द्वारा किया जाता है।

मान लीजिए कि आपकी कक्षा अच्छी भौतिक दशा वाली तथा पर्याप्त आवश्यक सामग्री से परिपूर्ण है, जिनके उपयोग की आवश्यकता आपको तथा आपके विद्यार्थियों को है। ऐसी अनुकूल परिस्थिति होने के बाद भी आप अवलोकन करते हैं कि कक्षा में बच्चे आपस में झगड़ रहे हैं और आप इस सबसे निराश हैं। निश्चित रूप से आपकी कक्षा का उस क्षण का वातावरण शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को जारी रखने के अनुकूल नहीं है। इसलिए, आपको विद्यार्थी केंद्रित वातावरण का निर्माण करने के लिए तीन पहलुओं को अपनाना होगा।

SE - 1 कक्षा के वातावरण के तीन मूलभूत घटकों को नाम लिखिए एवं उन्हें प्रतिबिंबित कीजिए।

7.2.1 अध्येता स्नेही वातावरण का सृजन (Creation of learning friendly environment)

कक्षा का वातावरण ऐसा होना चाहिए कि प्रत्येक बच्चा खुश रहें, आरामदायक महसूस करें और अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा का उपयोग करने के लिए अपने आप को प्रोत्साहित महसूस करें।

कक्षा प्रबंधन की दृष्टि से, कक्षा की तीन संभव श्रेणी या वर्ग हो सकते हैं – दुष्क्रिया, पर्याप्त और व्यवस्थित।

- दुष्क्रिया कक्षा वातावरण – ऐसी कक्षाओं में बहुत शोर रहता है। अध्यापक लगातार कक्षा को नियंत्रित करने में परिश्रम करता रहता है। ऐसी परिस्थितियों में बहुत कम अधिगम हो पाता है। वास्तव में इस प्रकार की कक्षाओं में अधिगम ना होने के बराबर ही होता है।
- पर्याप्त कक्षा वातावरण – ऐसी कक्षा में कुछ तो अनुशासन होता है और कुछ प्रयत्न, अनुशासन बनाये रखने के लिए अध्यापक को करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में कभी–कभी कुछ अधिगम हो जाता है।
- व्यवस्थित कक्षा वातावरण – यह दो प्रकार का होता है – 1 नियंत्रित 2 मित्रतापूर्ण

→ व्यवस्थित नियंत्रित वातावरण के द्वारा कक्षा में पूर्णरूप से नियंत्रण किया जाता है। जहां पर एक उच्च कोटि को संरचना का रख–रखाव किया जाता है, नियमों का कठोरता से पालन किया जाता है और बहुत कम अनुदेशनात्मक व्यूह रचनाओं का उपयोग होता है। ऐसी अवस्था में सख्ती से नियमों का पालन करते हुए अनुशासन बनाये रखना ही अध्यापक का मुख्य कर्त्तव्य है।

→ व्यवस्थित मित्रवत अधिगम वातावरण में कक्षाएं अधिक सुचारू रूप से संचालित होती है, कुछ ढीली संरचना की तुलना में। ऐसी कक्षाओं में शिक्षक अधिगम विधियों एवं अनुदेशनात्मक युक्तियों का उपयोग करता है और छात्र के लिए विषयवस्तु को अर्थपूर्ण बनाने पर बल देता है।

ऊपर की चर्चा के आधार पर निम्न प्रश्नों का उत्तर दें।

SE - 2 किस प्रकार का कक्षा वातावरण छात्रों के अधिगम के लिए अधिक मित्रवत व प्रभावशाली है? और क्यों?

एक मित्रवत अधिगम वातावरण का सृजन करने के लिए, आपको अपनी कक्षा के लिए किस प्रकार की उपयुक्त, आरामदायक भौतिक दशाओं की आवश्यकता होती है।

- **कक्षा का भौतिक वातावरण** – कक्षा का भौतिक वातावरण अध्यापक एवं विद्यार्थी दोनों के लिए घर जैसा होता हे। यह सुरक्षित, अनुकूल, आकर्षक और क्रियात्मक होना चाहिए, बच्चों की आयु व उनके स्तर को ध्यान में रखकर बनाना चाहिए, शिक्षक तथा विद्यार्थी द्वारा लिये जाने वाले क्रियाकलापों के प्रकार को ध्यान में रखकर बनाना चाहिए। एक अच्छी कक्षा का वातावरण कक्षा की आवश्यकता के अनुरूप होना चाहिए। कक्षा के भौतिक वातावरण से विद्यार्थियों व शिक्षक की प्रकृति की झलक मिलनी चाहिए।

  जैसा कि ऊपर बताया गया है, कि कक्षा के भौतिक वातावरण के दो महत्वपूर्ण घटक हैं – भौतिक अवस्था और कक्षा में उपलब्ध संसाधन व सामग्री।

- **कक्षा की भौतिक अवस्था** – कक्षा की भौतिक अवस्थाओं से तात्पर्य पर्याप्त ढांचागत सुविधाएं और उनका समुचित रखरखाव से है। कक्षा एक पक्की इमारत का हिस्सा होनी चाहिए जिसकी छत टपकती ना हो। दीवारें और फर्श पर समुचित रूप से प्लास्टर लगा होना चाहिए। दीवारों के किनारे सपाट होने चाहिए जिसे कोई बच्चा चोटिल ना हो। कमरा हवादार, प्रकाश युक्त एवं एक से अधिक दरवाजे व खिड़की वाला होना चाहिए। कमरे में हवा आर–पार होनी चाहिए तथा कमरे का वातावरण खुशनुमा और आरामदायक होना चाहिए। इनके अभाव में बच्चा अपना ध्यान केंद्रित नहीं कर पायेगा। कक्षा के बाहर पौधे हवा की गुणवत्ता को उत्कृष्ट रूप से बढ़ाते है और कक्षा से देखने पर बाहर का नजारा अच्छा दिखाई देता है। किसी सामूहिक क्रियाकलाप के लिए कक्षा में पर्याप्त स्थान होना चाहिए। ये हमेशा याद रखना होता है कि कक्षा का वातावरण बच्चों के लिए सुरक्षित एवं सहानुभूति पूर्ण होनी चाहिए।

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि हम कक्षा की भौतिक अवस्था के समुचित रखरखाव पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते हैं। जब कभी फर्श या दीवारों पर कोई मरम्मत का कार्य दिखायी देता है तो उसे तुरन्त मरम्मत की आवश्यकता होती है। कक्षा को सदैव साफ एवं स्वच्छ होना चाहिए। इससे केवल एक स्वस्थ कक्षा वातावरण ही सुनिश्चित नहीं होती बल्कि आगे चलकर उससे हमारी व्यक्तिगत स्वास्थ्य संबंधी आदतों का भी विकास होता है। बच्चों को शामिल करते हुए कक्षा की साफ–सफाई को निरंतर बनाये रखना आपकी एक महत्वपूर्ण जिम्मेवारी बन सकती है। कक्षा के दौरान आपको बेकार सामग्री जैसे कागज के टुकड़े, पत्तियां, फूल, चाय और टूटी हुई तिल्लीयां आदि का भी अवलोकन करना चाहिए। इनमें से बच्चों के द्वारा कमरे में इधर उधर फेंकी गयी कौर सी सामग्री का अधिगम क्रियाकलापों में उपयोग किया जा सकता था। यदि आप कक्षा के अंदर कोई डिब्बा या कागज से बना कार्टून रखते है और बेकार सामग्री उस डिब्बे में डालने के लिए उनकी आदत को विकसित करते हैं और बेकार सामग्री उस डिब्बे में डालने के लिए उनकी आदत को विकसित करते है, जिसको कि प्रतिदिन विद्यालय समय के पश्चात एक कूड़े के गड्ढे में दबा दिया जाता है, इस प्रकार के अभ्यास से केवल कक्षा का वातावरण ही साफ–सुथरा नहीं होगा वरन् विद्यार्थियों के बीच में एक अच्छी साफ–सफाई की आदत का विकास होगा जिससे वे अपने घर के वातावरण को भी साफ–सुथरा करना सीखेंगे।

कक्षा का स्थान जैसे दीवार और फर्श विद्यार्थी स्नेही ढंग से सजी होनी चाहिए। ऐसी सजावट कक्षा की सुंदरता को बढ़ाती है और बच्चों को अपनी ओर आकर्षित करती है जिससे अन्ततः विद्यार्थी अधिगम में सुविधा प्रदान करती है। (भाग 7.3.2 स्थान प्रबंधन से संदर्भित)। बैठने की व्यवस्था एक क्रमबद्ध तरीके से डिजाईन होनी चाहिए जिससे कि बच्चे सीटों के इस प्रकार के संगठन के द्वारा आपस में और अधिक मेल–मिलाप महसूस कर सकें। (विस्तृत चर्चा के लिए 7.3.3 संदर्भित) जब आप कक्षा के शिक्षण अधिगम के प्रबंधन में व्यस्त होते हैं, तब आपको बड़ी संख्या में सामग्री जैसे – श्यामपट्ट, डिस्प्ले बोर्ड, डेस्क और शिक्षण अधिगम सामग्री के साथ–साथ स्टोर कमरा आदि की आवश्यकता होती है। उनका स्थान, स्टोर और कक्षा

में उनका उपयोग आपके और आपके विद्यार्थियों दोनों के लिए कक्षा के भौतिक वातावरण के निर्माण में इन सबका एक महत्वपूर्ण भाग है।

एक छात्र के रूप में या एक अध्यापक के रूप में आपने यह अनुभव अवश्य किया होगा कि कुछ ऐसे अध्यापक होते हैं जिनके साथ कक्षा के बच्चे अधिक जुड़े हुए होते हैं, विद्यार्थी उनसे बातें करना, उनसे प्रश्न करना, उनके साथ अधिक से अधिक समय बिताना, प्यार से उनकी आज्ञा का पालन करना, उनका सम्मान करना, और जो कुछ भी शिक्षक उनसे कहते है उसे करना पसंद करते हैं। इस प्रकार के शिक्षक बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं, वे बच्चों के सुख–दुख बांटते हैं, और हमेशा व्यक्तिगत रूप से बच्चों की सहायता के लिए उनकी कठिनाई में तैयार रहते हैं। आपने यह भी अवलोकन किया होगा कि ऐसी कक्षा में बच्चे आपस में बहुत अच्छे संबंध बनाकर रहते हैं और अन्य विषयों की तुलना में ऐसे शिक्षक द्वारा पढ़ाये गये विषय में अधिक अच्छा प्रदर्शन करते हैं।

अतः हमने देखा कि अध्यापक व विद्यार्थी के बीच आपसी संबंध मानवीय संबंधों की गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं। किसी भी कक्षा में दो प्रकार के संबंध होते हैं : अध्यापक–विद्यार्थी, विद्यार्थी–विद्यार्थी। यदि यह संबंध सद्भावनापूर्ण, सहयोगपूर्ण व मैत्रीपूर्ण है, तो अध्यापक के लिए कक्षा प्रबंधन सुविधाजनक हो जाता है और वह कक्षा–क्रियाकलापों को अच्छी विधि से क्रियान्वित कर लेता है। एक विद्यार्थी स्नेही मानवीय वातावरण बनाने के लिए आपको निम्न बातों का ध्यान रखना है –

ध्यान देने योग्य बातें – (क्या करें)

- विद्यार्थियों की भावनात्मक और शैक्षिक आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशीलता।
- विद्यार्थियों के कल्याण का हमेशा ध्यान करें।
- कक्षा में जब समस्यात्मक बच्चे के साथ व्यवहार करें तो शांत व संवेदनशील रहें।
- विद्यालय के सभी क्रियाकलापों में विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित करें। मिल–जुलकर कार्य करने से सभी में आपसी प्यार व संबंध मजबूत होते हैं।
- अनुशासन वाले क्रियाकलाप कराते समय मीठे शब्दों का प्रयोग करें।
- सहयोगी पूर्ण व मिलजुलकर कार्य करने के लिए बच्चों को प्रोत्सासहित करें।
- सामूहिक क्रियाकलापों में बच्चों को स्वस्थ बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित करें।
- बच्चे सामूहिक क्रियाकलापों में पूरे मनोयोग से भाग लें, ये सुनिश्चित करें।
- विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक वे परियोजना आधारित क्रियाकलाप करें जिससे कि प्रत्येक बच्चे की योग्यता को उबरने का अवसर मिले।

ध्यान देने योग्य बातें – (क्या ना करें)

- एक को उत्साहित करना और दूसरे को निरुत्साहित करना, ऐसा ना करें। निरुत्साहित करने वाले शब्दों का प्रयोग ना करें।
- कक्षा में गलत शब्दों का प्रयोग ना करें और ना ही प्रयोग करने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित करें।
- बच्चों के बीच अस्वस्थ प्रतियोगिता को प्रोत्साहित ना करें।
- कभी भी कक्षा में कमजोर प्रदर्शन करने वाले बच्चों को हतोत्साहित ना करें। उन्हें अन्य विकल्पों के द्वारा अच्छा प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित करें।

7.2.2 व्यक्तिगत अधिगम का प्रबंधन (Management of personal learning) –

अध्यापक होने के नाते हमें व्याख्यान विधि से पूरी कक्षा को पढ़ाने का अभ्यास है। इस विधि में सम्प्रेषण एकल मार्ग तकनीक पर आधारित होता है – शिक्षक से विद्यार्थी की ओर। जिसमें अनुदेशन की प्रक्रिया पर पूर्ण नियंत्रण शिक्षक का होता है। यदि अध्यापक की इच्छा है, तो उसकी अनुमति से बच्चे प्रश्न पूछ सकते हैं या आपस में चर्चा कर सकते हैं। जो कि प्रायः कम देखने में आता है क्योंकि शिक्षक के ऊपर अपना पाठ्यक्रम समय पर पूर्ण करने का दबाव होता है। विद्यार्थी–शिक्षक संवाद कम होता है और विद्यार्थी–विद्यार्थी संवाद का कोई स्थान ही नहीं होता है। यह भी साबित हो चुका है कि बहुत ही कम बच्चों को प्राथमिक स्तर पर इस विधि से अधिगम लाभ मिला है।

शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्तिगत छात्र को योग्य विद्यार्थी बनाना है और जैसा कि व्यक्तिगत निजी अधिगम सभी शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं का अंतिम उद्देश्य है ताकि प्रत्येक विद्यार्थी अधिगम अनुभव ग्रहण करने में आत्मनिर्भर हो सके। व्यक्तिगत अधिगम में प्रत्येक व्यक्ति अपनी गति से अपने ही प्रयत्नों व रूचि से किसी कार्य को करता है। अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी को बहुत स्पष्ट अनुदेशों से निर्धारित अधिगम क्रियाकलापों को अपनी गति से सफलतापूर्वक पूरा करवाता है। अतः अध्यापक होने के नाते आप प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी गति से क्रियाकलाप करने के लिए सुअवसर प्रदान करने चाहिए।

व्यक्तिगत अधिगम के लिए आप तकनीकी सुविधाएं जैसे – कम्प्यूटर या कुछ निजी अधिगम सामग्री का उपयोग व दत्त कार्य आदि का प्रयोग कर सकते हैं। बी.एफ. स्किनर के यांत्रिक अधिगम सिद्धांत के अनुसार, क्रियाशील सामग्री का निजी अधिगम में 1960 से 1970 के दौरान बहुत सीमित उपयोग हुआ है। पाठ्य पुस्तकें, सहायक पुस्तकें व विशेष रूप से निर्माण की गयी सहायक सामग्री का बहुत से विद्यालयों में प्रयोग किया जा रहा है और दूर–शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी विद्यार्थी इसे व्यक्तिगत रूप से उपयोग कर रहे हैं। सामान्य कक्षाओं में सबसे अधिक प्रयोग में आने वाली निजी–अधिगम विधि प्रदत्त कार्य का अभ्यास ही है।

कक्षा में प्रदत्त कार्य – प्रायः प्रतिदिन आप अपने विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से दत्त कार्य करने के लिए देते हैं। इनमें से कुछ कार्य लम्बे होते हैं और कुछ कार्य छोटे , किसी को करने में अधिक समय लगता है और किसी में कम। ऐसे दत्त कार्य विद्यार्थियों को अवधारणा को समझने, व्यक्तिगत रूप से अपनी कमियों को सुधारने का अवसर प्रदान करते हैं। नियमपूर्वक व्यक्तिगत क्रियाकलाप करने से विद्यार्थियों के अधिगम स्तर को बढ़ाने में मदद मिलती है। जब कक्षा में व्यक्तिगत अधिगम परिस्थिति का सृजन करते है तो निम्नलिखित निर्देशित बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाता है :

प्रदत्त कार्य/क्रियाकलाप का संप्रेषण – प्रत्येक विद्यार्थी को ये समझ होनी चाहिए कि वह क्या करने जा रहा है। यदि आवश्यक लगे तो उदाहरण के द्वारा उसे समझाना चाहिए।

विद्यार्थी को दिये कार्य का दिशा निर्देशन करना – जब क्रियाकलाप चल रहा होता है तब आपको कक्षा में चारों ओर घूमकर ये देखना होगा कि किसी विद्यार्थी को आपकी मदद की आवश्यकता तो नहीं है। उन्हें अन्यथा परेशन ना करें, नहीं तो वे हतोत्साहित महसूस कर सकते हैं।

विद्यार्थियों को दिये दत्त कार्य की जांच करना – विद्यार्थी विभिन्न गति से कार्य को करेंगे इसलिए कक्षा एक समय पर दिये कार्य को पूरा नहीं करेंगी। बड़ी संख्या वाली कक्षाओं में विद्यार्थियों की जांच करना एक चुनौतिपूर्ण कार्य है। कभी–कभी इसको विद्यार्थियों के द्वारा, एक दूसरे के कार्य की जांच करके, पूरा कराया जाता है। यह उन परिस्थितियों में अधिक उपयुक्त है जब कुछ प्रश्नों के उत्तर पहल से सुनिश्चित किये गये हैं। लेकिन कुछ दिये गये कार्य की ध्यानपूर्वक जांच करनी पड़ती है।

उपर्युक्त पृष्ठपोषण प्रदान करना – जब विद्यार्थी दिये गये दत्त कार्य के प्रदर्शन के आधार पर पृष्ठपोषण प्राप्त करता है तब अधिगम में वृद्धि होती है। सभी प्रदत्त कार्यों में सुधार की आवश्यकता होती है

इसीलिए उन्हें पृष्ठपोषण दिया जाना चाहिए। प्रदत्त कार्य को विद्यार्थियों को सौंपने के बाद पृष्ठपोषण शीघ्रातिशीघ्र दिया जाना चाहिए।

अपनी प्रगति की जांच के लिए निम्नलिखित के उत्तर दीजिए –

SE-3 व्यक्तिगत अधिगम क्यों महत्त्वपूर्ण है? अपने उत्तर को 5 या 6 वाक्यों में दीजिए।

SE-4 निम्नलिखित में से कौन सा कथन व्यक्तिगत अधिगम के लिए सत्य है??

(a) विद्यार्थी प्रदत्त कार्य को अपनी गति से करते हैं।

(b) विद्यार्थी, अध्यापक के निर्देशों का ध्यानपूर्वक पालन करते हैं।

(c) विद्यार्थी अन्य लोगों से अपने विचारों को बांटते हैं।

7.2.3 सामूहिक अधिगम का प्रबंधन (Management of group learning) –

आपने शायद ध्यान दिया होगा कि कक्षा अधिगम व व्यक्तिगत अधिगम में एक मुख्य रूकावट है कि विद्यार्थी आपस में स्वतंत्रता से वाद–विवाद नहीं कर सकते। इस प्रकार के स्वतंत्र वाद–विवाद की महत्ता को संतुलित शिक्षा प्रदान करने में मानवीय मनोविज्ञानी कार्य रोजर्स–1960 ने बल दिया। उनका मानना था कि अधिगम प्रायः स्वभाव से सामाजिक है अतः सामाजिक वातावरण में उन्हें पढ़ाने से भविष्य में वे अच्छे नागरिक बनते हैं। ऐसा सामाजिक वातावरण कक्षा में निर्मित किया जा सकता है, जहां पर विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से बातचीत करने के अवसर प्रदान किये गये। सामूहिक अधिगम विशेष रूप से छोटे समूह अधिगम व्यूह रचना इस उद्देश्य के लिए एक उपयुक्त विचार है। कक्षा अधिगम क्रियाकलापों में समूह अधिगम विधि के उपयोग से उत्तरोत्त बढ़ोत्तरी 1980 के बाद से देखी गयी है। बातचीत की इस प्रक्रिया के दौरान 'अर्थ' को आपस में बांटा जाता है तथा 'सूचनाओं' का आदान–प्रदान किया जाता है। इस प्रकार से ज्ञान को बांटन और बढ़ाने का साधन कक्षा का सामाजिक वातावरण बन जाता है। अपनी समझ का दूसरों की समझ के साथ तुलना करने से, अपने ज्ञान का दूसरों के ज्ञान के खिलाफ परीक्षण करने से, विद्यार्थी एक नयी समझ विकसित करता है। उदाहरण के तौर पर – जब समस्या को आपस में मिलजुलकर हल करते हैं, के विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों से बीतचीत करते है, वाद–विवाद करते हैं, कारण जानते हैं, और समस्या को हल करने की प्रक्रिया में निष्कर्ष तक पहुंचते हैं।

सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह उपागम बहुत सारे शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशेषतया उच्च संज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जैसे कि समस्या समाधान, निर्णय करना और अन्य जटिल जीवन कौशलों के विकास आदि। उससे सृजनात्मक चिंतन और दूसरी विभिन्न विधियों से सोचने की क्षमताओं का भी विकास होता है। इसके द्वारा सभी प्रकार की प्रभावित करने वाली और अन्तव्यैक्तिक उद्देश्यों की प्रभावकारी उपलब्धियों के द्वारा सम्पूर्ण संसार में, विद्यार्थियों में सामाजिक भावना का विकास करने में उनकी सहायता करती है जैसा कि मुक्त–मस्तिष्क की भावना और अन्य लोगों के दृष्टिकोणों को सुनने की इच्छा और संप्रेषण कौशल को विकसित करना एवं सामान्य अन्तव्यैक्तिक कौशलों को विकसित करना आदि। समूह अधिगम के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न हैं –

- एक की अपेक्षा बहुत से बच्चे इसमें अधिक समय/प्रयास/उपलब्ध संसाधन प्रदान कर सकते है।
- विस्तृत ज्ञान/कौशल/अनुभव आपसी विचारों के लेन–देन से प्राप्त हो जाता है।
- गलतियों को आसानी से पकड़ा जाता है एवं तुरंत सुधारा जाता है।
- सहभागिता से निजी जिम्मेदारी की अनुभूति होती है।
- सामूहिक चर्चा से बहुत से विभिन्न प्रकार के वैकल्पिक विचारों का सृजन होता है।

समूह–अधिगम के साथ विभिन्न प्रकार की कठिनाईयां भी जुड़ी हुई है। समूह क्रियाकलापों के प्रबंधन और योजना के निर्माण के समय उनसे सावधान रहने की आवश्यकता है :–

- बच्चों में पर्याप्त तालमेल में कमी होना।
- भागीदारी में बराबरी का ना होना। कुछ अधिक प्रभावशाली हो जाते है और कुछ चुपचाप बैठे रहते हैं।
- व्यक्तिगत विद्यार्थी के ऊर्जा अनुरूप होने का आंतरिक व बाह्य दबाव का होना। (जब समूह में किसी मुद्दे पर चर्चा की जाती है।)
- कार्य में व्यवस्थित उपागम का उपयोग ना होना।
- परिवर्तन–शीलता/अस्पष्टता/निर्णय करने की विधि को बदलना।
- परिणामों के तुरंत मूल्यांकन का कभी–कभी अपरिपक्व होना।

कक्षा में समूह अधिगम का आयोजन करते समय एक शिक्षक की भूमिका मुख्य रूप से मार्ग दर्शक और साधन उपलब्ध कराने वाले की होती है। विषयवस्तु या समस्या, जिसका समाधान किया जाना है, का चुनाव करने के बाद एक अध्यापक के मुख्य रूप से तीन कार्य होते हैं – समूह का निर्माण, समूह में संप्रेषण की सुविधा प्रदान करना, और समूह में अधिगम परिणामों को संचित करना/समेकित करना।

विद्यार्थियों को मुख्य रूप में चार प्रकार से समूह बद्ध किया जा सकता है – योग्यता के आधार पर, रूचि के आधार पर, इच्छा के आधार पर और मिश्रित समूह (संयोगिक विद्यार्थी समूह)।

- योग्यता के आधार पर समूहीकरण (समरूप समूहीरूप) – योग्यता के आधार पर समूहीकरण में प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्ति रूप से योग्यता के आधार पर चुना जाता है और समान योग्यता वाले विद्यार्थियों के समूह का निर्माण किया जाता है। जैसे – यदि विद्यार्थी गणित के प्रदर्शन में निम्न श्रेणियों उच्च, औसत और औसत से कम, मे आते हैं तो उनके तीन अलग–अलग समूह बनते हैं। आप उच्च योग्यता वाले समूह को अधिक चुनौतिपूर्ण कार्य दे सकते हैं, वही क्रम योग्यता वाले समूह को सामान्य कार्य दिया जाता है, कार्य का विभाजन उनकी समझ, गणितीय, अवधारणाओं और संक्रियाओं में उनके कौशल के आधार पर किया जाता है। यह विद्यार्थियों को सामूहिक प्रयासों के साथ अपने विचारों को आगे रखने का अवसर प्रदान करता है और वे अपनी योग्यता के स्तर के निसंकोच रूप से आपके व्यक्तिगत ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के समूहीकरण को संवर्धन या उपचारात्मक उद्देश्यों के लिए भी घटित किया जा सकता है। कभी–कभी इस प्रकार से समूहीकरण करने से विद्यार्थियों के ऊपर उत्कृष्ट या कमजोर का लेबल लग जाता है। ये इस विधि की एक कमी है। कमजोर विद्यार्थियों का मनोबल गिरता है जो सीधे–सीधे उनके आत्मविश्वास को प्रभावित कर सकता है।

- रूचि के आधार पर विद्यार्थियों का समूहीकरण – एक कक्षा के बारे में सोचिए, जहांपर शिक्षक एक ही समय में विभिन्न प्रकार के क्रियाकलाप कराने की योजना तैयार करता है। क्रियाकलाप निम्न प्रकार है – ड्राईंग, क्ले मॉडलिंग, और ग्लास पेंटिंग। शिक्षक अपने विद्यार्थियों की रूचि के बारे में जानता है। अध्यापक विद्यार्थियों से उनकी रूचि से विभिन्न समूहों में बैठने के लिए कहता है। इसी प्रकार से विद्यार्थी अपने–अपने समूह में वितरित हो जाते हैं। एक समूह ड्राईंग में लग जाता है, दूसरा समूह क्ले मॉडलिंग में और तीसरा ग्लास पेंटिंग में लग जाता है। प्रत्येक समूह उनके मित्रों के साथ एकमत होकर क्रियाकलाप को करते हैं। अपनी रूचि के अनुसार बना विद्यार्थियों का समूह मददगार होता है। इस विधि का ये फायदा है कि एक समान रूचि वाले

विद्यार्थी साथ मिलकर अच्छा कार्य कर सकते हैं। वे एक–दूसरे से सीख सकते हैं, इससे उनके कौशल/प्रदर्शन का विकास होगा। इस विधि की यह कमी है कि विद्यार्थियों की रूचि केवल एक या दो क्षेत्रों तक सीमित होती है अतः अभिव्यक्ति की कमी के कारण वे तथ्यों को रटकर प्राप्त कर लेते हैं।

- विद्यार्थियों की इच्छानुसार समूहीकरण – विद्यार्थियों को उनकी इच्छानुसार सहयोगी का चुनाव करने की छूट इस प्रकार के समूहीकरण में प्रदान की जाती है। इस प्रकार के समूहीकरण में, विद्यार्थी को एक सहयोगी या सहयोगियों के समूह को चुनने की छूट दी जाती है। जिनके साथ वह स्वेच्छा से कार्य करना चाहता है। इस समूह में विद्यार्थी मिल जुलकर तालमेल के साथ अधिक प्रभावपूर्ण कार्य संपूर्ण कर लेता है, क्योंकि उसने अपने साथ कार्य करने वाले सार्थियों को स्वयं चुना है। चुनाव की स्वतंत्रता देने की वजह से, इस प्रकार के समूह की मूलभूत विशेषता एक अच्छी समझ और एक अच्छा टीम कार्य का होना है। जब विद्यार्थियों को अपने सहयोगी चुनने की छूट मिल जाती है तो इनमें से कुछ ऐसे विद्यार्थी छूट जाते हैं। चुनाव की स्वतंत्रता के कारण, विद्यार्थी बेकार के कार्यों में, गपशप करने में, या किसी अन्य कार्य में व्यस्त हो जाते हैं, और दिये गये मुख्य क्रियाकलाप का परिणाम शून्य हो जाता है।

- संयोगिक विद्यार्थी समूह (विषय योग्यता) – संयोगिक विद्यार्थी समूह विद्यार्थियों को किसी प्रकार के स्तर जैसे – अच्छा, औसत या औसत से कम आदि से बचाने में उनकी सहायता करता है। संयोगिक विद्यार्थी समूह का निर्माण लाटरी से, रोल नं. से या अन्य किसी विधि से किया जा सकता है।

इस समूह का ये लाभ है कि इसमें अच्छे और कमजोर दोनों प्रकार के बच्चे एक दूसरे से अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं और सीखते हैं विद्यार्थी एक दूसरे की सहायता बिना किसी घबराहट के करते हैं, और एक दूसरे की गलतियां सुधारते हैं। दोष केवल इस विधि में इतना है कि मेधावी विद्यार्थी, कमजोर विद्यार्थी की प्रगति में बाधा डाल सकते हैं। अधिक योग्य विद्यार्थी तीव्र गति से सीखते हैं और कमजोर विद्यार्थी पिछड़ जाते हैं।

SE – 5 समूह का निर्माण करते समय आपके मस्तिष्क में कौन–कौन सी महत्वपूर्ण बाते आती है?

समूह में कार्य करते हुए विद्यार्थियों के साथ स्वतंत्र रूप से पारस्परिक क्रियाकलाप करने के लिए, आपको विद्यार्थियों से प्रभावपूर्ण तरीके से बातचीत करने की आवश्यकता होती है। इससे समूह को ऊर्जा के साथ उद्देश्यपूर्ण कार्य करने में ही सहायता नहीं मिलेगी बल्कि अन्य अनेकों उद्देश्यों जैसे–कार्य करते समय विद्यार्थियों के आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी, समूह के सदस्यों और अन्य समूहों के बीच बेहतर आपसी समझ का विकास, की भी पूर्ति होगी। आपके पास समूह से बातचीत करने के दो संभव तरीके है जिन्हें आकृति 7.1 मे दर्शाया गया है। पहली स्थिति में (आकृति 7.1a) आप एक शिक्षक के रूप में विद्यार्थियों से सीधे बातचीत करते हैं, यह एक छोटा समूह है और विद्यार्थियों के पास आपस में बातचीत करने का कोई अवसर नहीं है। और दूसरी स्थिति में (आकृति 7.1b), आप समूह में समूह के सदस्यों की तरह से बातचीत करते हैं। इस स्थिति में, आप समूह में समूह के बाकी सदस्यों की तरह से समान रूप से भागीदारी करते है, जहां पर प्रत्येक (शिक्षक सहित) को अन्य सदस्यों से बातचीत करते हैं। इस स्थिति में, आप समूह में समूह के बाकी सदस्यों की तरह से समान रूप से भागीदारी करते हैं, जहां पर प्रत्येक (शिक्षक सहित) को अन्य सदस्यों से बातचीत करने की स्वतंत्रता होती है। अब, पहली स्थिति में शिक्षक, बातचीत की पूरी प्रक्रिया को नियंत्रित करता है और वहीं दूसरी स्थिति में पूरी प्रक्रिया को 'समूह' नियंत्रित करता है।

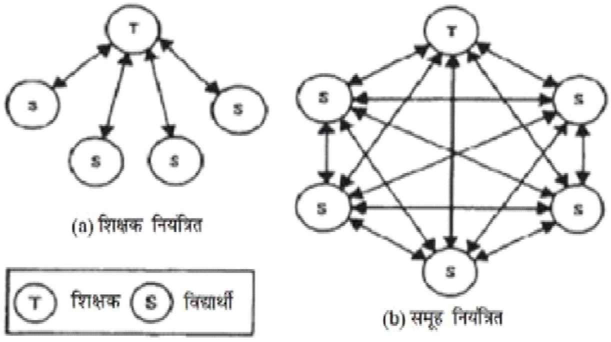

आकृति 7.1 समूह अधिगम स्थिति में संप्रेषण के दो तरीकें

(स्रोत एलिंगटन एण्ड अर्ल . 1996)

मान लीजिए कि आप अपनी कक्षा के कुछ विद्यार्थियों, जो विशिष्ट अधिगम समस्या से ग्रस्त है जैसे – अंग्रेजी शब्दों का उपयुक्त उच्चारण या समय व कार्य पर आधारित समस्या को हल करना, का अवलोकन करते हैं। इस स्थिति में, आपको समूह पर पूर्ण नियंत्रण करने की आवश्यकता होती है, और उनकी समस्याओं के बारे में प्रत्येक विद्यार्थी से प्रत्यक्ष रूप से बातचीत की आवश्यकता होती है। लेकिन अन्य उद्देश्यों के लिए दूसरे प्रकार का संप्रेषण अच्छा परिणाम प्रदान करता है।

जब आप अपने पाठ की योजना तैयार करते हैं, तो एक पूर्ण कक्षा के रूप में विद्यार्थियों को साथ–साथ शिक्षण करने की अपेक्षा, उन्हें छोटे–छोटे समूह में बांटना, और समूह कार्य में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना अधिग प्रभावशाली होगा। समूह निर्माण में अधिक महत्वपूर्ण यह सुनिश्चित करना है कि समूह में विद्यार्थी साथ–साथ कार्य करने के योग्य है और उनके बीच में अधिक से अधिक बातचीत होती है।

एक शिक्षक के रूप में आपको अपने विद्यार्थियों को यह बताना आवश्यक है कि समूह में प्रभावपूर्ण तरीके से कैसे कार्य करते है। आपको अपने विद्यार्थियों के लिए ऐसे अवसर उपलब्ध कराने की भी आवश्यकता है कि वे कैसे अर्थपूर्ण और उत्पादक तरीके से साथ–साथ कार्य करें। यह इस संदर्भ में है, कि विद्यार्थी अपने सहयोगात्मक कौशल को निखार सकता है और विकसित कर सकता है।

कक्षा में समूह अधिगम के प्रबंधन के निम्नलिखित सिद्धांतों पर विचार कीजिए।

- समूह का आधार 4 से 6 विद्यार्थियों का रखें।
- जब तक कोई विशेष आवश्यकता ना हो, तब तक विषम योग्यता वाले विद्यार्थियों को प्राथमिकता दें, क्योंकि इससे समूह अधिगम को बढ़ावा मिलता है।
- समूह में विविधता हो ताकि विद्यार्थी आपस में किसी प्रकार की हीन भावना महसूस ना करें। इसकी अपेक्षा कक्षा में सभी विद्यार्थियों का आपस में एक साथ कार्य करने का अवसर प्रदान करें।
- समूह के एक नेता का चयन करें और कार्य के आधार पर उसे बदलते रहें।
- कार्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता के अनुकूल हो।
- स्पष्ट आदेश दें व समय सीमा निर्धारित करें जो कि प्रायः थोड़ी सी लचीली हो।
- समूह के प्रत्येक सदस्य को विशिष्ट जिम्मेदारी जो कि पूरे समूह की सफलता में योगदान दे। समूह में प्रत्येक विद्यार्थी की सहभागिता को सुनिश्चित करें।
- वाद–विवाद के लिए स्वतंत्र एवं आरामदायक वातावरण प्रदान करें।
- विद्यार्थियों को समस्या को हल करने में एक दूसरे की सहायता करने दें।
- सुझावों को सुनें और उन पर अपनी प्रतिक्रिया दें।

SE – 6 समूह कार्य के किन्हीं दो लाभों का वर्णन कीजिए।

7.3 कक्षा–अधिगम के लिए समय व स्थान का प्रबंधन

समय प्रबंधन, प्रभावशाली कक्षा प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। कक्षा में जो क्रियाकलाप कराये जाते हैं, उनके संगठन तथा प्राथमिकता की अनुसूची तैयार करना और उसका अनुकरण करना ही, समय प्रबंधन है।

समय प्रबंधन के अतिरिक्त, विद्यार्थियों के अधिगम के लिए उपलब्ध स्थान की गुणवत्ता जानना भी आपके लिए महत्वपूर्ण है। एक सुसंगठित व सुसज्जित कक्षा वातावरण में न केवल सभी वस्तुएं विधिवत व पहुंच के अंदर होती हैं अपितु विविध अधिगम परिस्थितियों को करने में भी सुगमता प्रदान करती हैं। इस भाग में, हम अध्ययन–अध्यापन के साथ समय–स्थान के प्रभावशाली प्रबंधन की युक्तियों के बारे में समझने का प्रयत्न करेंगे।

7.3.1 समय का प्रबंधन (Management of time)

किसी भी विद्यालय दिवस में एक कक्षा कालांश में प्रायः जो क्रियाकलाप आप करते हैं, उनका पुनः स्मरण करें। शायद आप अपनी पाठ योजना के अनुसार अपने विद्यार्थियों की बैठने की व्यवस्था करते हैं, सहायक शिक्षण सामग्री एकत्रित करते हैं, अवधारणा की व्याख्या करते हैं, प्रश्न पूछते हैं और उनके द्वारा दिये उत्तरों को सुधारते हैं, अवधारणा और प्रक्रिया का प्रदर्शन सहायक शिक्षण सामग्री के द्वारा करते हैं, श्यामपट्ट पर लिखते हैं एवं आकृतियां बनाते हैं, समूह क्रियाकलाप कराते हैं, अधिगम क्रियाकलापों के परिणामों को संचित करते हैं, पाठ के संपूर्ण प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए कुछ कार्य देते हैं आदि। आप ये सब क्रियाकलाप अधिक से अधिक 40 से 45 मिनट के कालांश में करते हैं। आपने ये अवश्य महसूस किया होगा कि कक्षा में समय का प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, भले ही यह आसान प्रतीत होता हो। यह केवल अनुदेशनात्मक क्रियाकलापों की सावधानी से योजना बनाना ही नहीं है, अपितु कक्षा के समय का किस प्रकार से सदुपयोग करना है, इस बात पर भी बारीकी से ध्यान देना है। क्या अधिगम समय और विद्यार्थियों के अधिगम एवं विकास के बीच कोई संबंध है? बहुत से शोध अध्ययनों से निम्न दो परिणाम निकले हैं।

1. विद्यार्थियों की उपलब्धि में वृद्धि होती है जब वे अधिगम क्रियाकलापों जैसे प्रयोग करना, अवलोकन, अभ्यास कार्य, वाद–विवाद, समस्या समाधान और पढ़ना आदि में अधिक समय व्यतीत करते हैं।
2. सभी विद्यार्थियों का अधिगम क्रियाओं में व्यतीत हुआ समय, सभी कक्षाओं में अलग–अलग होता है।

शिक्षा का अधिकार कानून–2009 के अनुसार, कक्षा 1 से 5 के लिए प्रत्येक शैक्षणिक सत्र में 800 अनुदेशनात्मक कालांश और कक्षा 6 से 8 के लिए प्रत्येक शैक्षणिक सत्र में 1000 अनुदेशनात्मक कालांश, प्रत्येक विद्यालय के लिए निर्धारित किये गये हैं।

एक विषय को अधिक समय देकर आप विद्यार्थियों के अधिगम अवसर को बढ़ा सकते हैं। कक्षा अधिगम का सार यही है कि समय खराब न करें। यह समय का भाग आपके विद्यार्थियों के पास वास्तव में किसी प्रदत्त क्रियाकलाप को करने के लिए है जैसे – लिखित दत्त कार्य कर काम करना, समूह में किसी समस्या पर सक्रियता से चर्चा करना, बिना बोले पढ़ना, और ध्यानपूर्वक सुनना जब आप किसी विषय की व्याख्या कर रहे होते हैं।

वास्तव में आपकी कक्षा का पूरा समय अधिगम कार्यों में व्यतीत नहीं होता है। कुछ समय हाजिरी लेने में व्यतीत हो जाता है या एक क्रियाकलाप से दूसरे क्रियाकलाप के बीच में कुछ समय व्यतीत हो जाता है। आपका कुछ समय विद्यार्थियों की कुछ अनर्गल बातों का समाधान करने में निकल जाता है।

आप अपनी स्वयं की कक्षा के बारे में सोचिए। आपके विद्यार्थी अध्ययन के लिए तैयार होने में कितना समय व्यतीत कर देते हैं? क्या उन्हें आपकी ओर, ध्यान देने के लिए प्रतीक्षा की आवश्यकता हैं? क्या कालांश के समाप्त होने से पहले वे बेचैन है? लिखित दत्त कार्य को एकत्रित करने में कितना समय व्यतीत होता है?

इस प्रतीक्षा के समय में बच्चों के पास करने के लिए कुछ नहीं होता है लेकिन प्रायः वे आपस में इस समय में बातें करके, खेल कर आदि कार्यों से अपना मनोरंजन करते है। अगले अधिगम के लिए पुनः विद्यार्थियों का ध्यान केंद्रित करने के प्रयास में आपका अतिरिक्त कीमती समय बर्बाद हो जाता है।

आपके कक्षा प्रबंधन की विधि से बच्चे सजीव, सजग और व्यस्त होने चाहिए। आप निम्न तरीके से समय की बचत कर सकते हैं –

- कक्षा के क्रियाकलाप के लिए स्वयं को तैयार कीजिए। ये सुनिश्चित कीजिए आप क्रियाकलाप के आने वाले अगले चरण के बारे में अच्छी प्रकार से जानते हैं।
- सभी सामग्रियों को तैयार रखिए और बच्चों को ये स्मरण कराइए कि जब आप एक क्रियाकलाप से दूसरे क्रियाकलाप पर जाते है तब आप बच्चों से क्या अपेक्षा करते हैं।
- शाब्दिक निर्देश देते समय साफ शुद्ध उच्चारण का प्रयोग करें।
- कक्षा को व्यवस्थित कीजिए ताकि एक नया क्रियाकलाप शुरू करने के दौरान बच्चों को अपनी सीट छोड़कर इधर–उधर ना जाना पड़े।
- अपने पाठ को जितना संभव हो शीघ्रता से शुरू करें। ये सत्य है कि आपके कुछ बच्चे इतनी शीघ्रता से तैयार नहीं हो सकते हैं। ऐसे में एक निर्णायक उत्तेजक शुरूआत के द्वारा आप कमजोर बच्चों को प्रोत्साहित करेंगे। आपकी अच्छी प्रकार से बनी हुई पाठ योजना आपका समय बचाने में आपकी सहायता करेंगी।
- एक नये क्रियाकलाप को शुरू करने से पहले यह सुनिश्चित करें कि अधिक से अधिक बच्चे इस अवसर से लाभ उठायें।
- विद्यार्थियों को क्रियाकलाप पूरा होने के पहले ये जानकारी होनी चाहिए कि वे अपने पूरे किये गये लिखित कार्य या परियोजना (विषय वार) को अपने नाम को लेबल लगाकर कहां पर रखनी है।
- यदि एक शैक्षणिक क्रियाकलाप जैसे–पढ़ना, समस्या समाधान करना या प्रयोगात्मक कार्य करना, से अशैक्षणिक क्रियाकलाप जैसे : मध्याहन अवकाश, खेल या अभ्यास की ओर परिवर्तन होता है तो आपके विद्यार्थी यह समझेंगे कि जब वे कक्षा छोड़ते हैं तो उन्हें क्या और कैसे करना है।
- कमरे में शोरगुल से बचने के लिए बच्चों के बैठने की व्यवस्था को पुनः सुव्यवस्थित कीजिए।
- नया क्रियाकलाप शुरू करने से पहले अपने बच्चों को एक छोटा लिखित क्रियाकलाप करने को दीजिए। श्यामपट्ट पर कोई प्रश्न या दिमागी कसरत वाला क्रियाकलाप लिख दीजिए। इससे आपको नये क्रियाकलाप की सामग्री को व्यवस्थित करने का समय मिल जायेगा।

7.3.2 कक्षा–कक्ष के स्थान का प्रबंधन (Mangement of place of classroom) –

सुसंगठित और सुसज्जित कक्षा विद्यार्थियों को अधिगम के लिए प्रोत्साहित करती है। इससे ये संदेश मिलता है कि आप अपने बच्चों की परवाह करते हैं। कक्षा के वातावरण को अधिगम के लिए सकारात्मक बनाना और बच्चों के कक्षा में प्रवेश करने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि सभी आवश्यक सामान कक्षा में अपनी जगह पर रखा है। यहां तक कि एक छोटे विद्यालय में जहां पर संसाधन भी सीमित है, एक

अच्छा अध्यापक अधिगम को बढ़ाने के लिए कक्षा को सुव्यवस्थित बना सकता है। आओ कक्षा के कुछ घटकों पर चर्चा करें, जिनकी कक्षा के स्थान का समुचित उपभोग करने के संगठन में आवश्यकता होती है।

- कक्षा का फर्नीचर और फर्श का स्थान—यहां आपकी कक्षा के फर्नीचर और फर्श के स्थान के बारे में कुछ दिशा—निर्देश दिये गये हैं।

अधिकतर प्राथमिक विद्यालयों की हमारी कक्षाओं में, बच्चे फर्श पर बैठते हैं और कहीं—कहीं डेस्कों पर बैठते हैं। उपलब्ध स्थान एवं क्रियाकलाप की प्रकृति के आधार पर आप विभिन्न प्रकार के बैठने की व्यवस्था जैसे—रैखिक पंक्ति, अर्ध वृत्ताकार, वृत्ताकार, आमने—सामने आदि का उपयोग कर सकते हैं। जिसकी चर्चा भाग 7.4.3 में की जायेगी। कमरे में फर्नीचर की व्यवस्था और बैठने की व्यवस्था इस प्रकार कीजिए कि बच्चे कमरे में आसानी से गति कर सकें और आप प्रत्येक बच्चे के पास आसानी से जा सकें, जब भी आवश्यकता हो। जब बच्चे क्रियाकलाप कर रहे होते हैं तब व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक बच्चे पर आपका ध्यान व अवलोकन अत्यंत आवश्यक है। कमरें में सेल्फ, अलमारी, और अन्य फर्नीचर, जहां पर आप विभिन्न प्रकार की सहायक शिक्षण सामग्री रख सकते हैं, एक विशेष स्थान पर रखने की कोशिश करें। अगली इकाई में आप सीखेंगे कि कैसे शिक्षण सहायक सामग्री को व्यवस्थित तरीके से रखते हैं।

जब आप अपनी कक्षा में दीवार के स्थान तथा बुलेटिन बोर्ड के बारे में सोचते हैं, तब निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान दें —

- यदि आप विद्यार्थियों के दत्त कार्य के चार्ट, परियोजना के उपयोग करना चाहते हैं तो किसी बड़े केंद्रित स्थान का प्रयोग करें ताकि सभी विद्यार्थी देख सकें।
- कक्षा के ग्रेड के अनुसार दीवार पर क्रियाकलाप बनाया जा सकता है, ताकि विद्यार्थी व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से इन क्रियाकलापों को सीख सकें।
- अच्छे विद्यार्थियों के क्रियाकलापों के कुछ उदाहरणों के लिए स्थान निर्धारित करें।
- कुछ स्थान दीवार पर खाली छोड़े ताकि इस पर विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार कुछ लिख सके।
- दीवार स्थान या बुलेटिन बोर्ड के स्थान में से कुछ स्थान ऐसा भी रखें जहां पर आप तथा आपके विद्यार्थी कोई वस्तु या सामग्री अपनी व्यक्तिगत रूचि के आधार पर रख सकें।

इसके अतिरिक्त कुछ मूलभूत आवश्यकताएं जैसे फर्नीचर की व्यवस्था, दीवार का स्थान तथा बुलेटिन बोर्ड आदि आपकी कक्षा के वातावरण और अधिक अच्छा बनाती है। कक्षा की दीवारें अनेक प्रकार की सूचियों से भरी हो सकती है जैसेः उपस्थिति के लिए हस्ताक्षर बोर्ड, रंगीन चार्ट, शब्दों की सूची, गीत, पहेलियां, दैनिन्दनी, और विभिन्न प्रकार के क्रियाकलाप आदि। एक संदेश बोर्ड भी कक्षा के किसी बड़े स्थान पर लगाया जा सकता है, जिस पर आप एवं आपके विद्यार्थी एक—दूसरे के लिए संदेश लिख सकते हैं। एक विशेष किताबों की सेल्फ की व्यवस्था कीजिए जिसमें निम्न प्रकार की पुस्तकें रखी जा सकती है जैसे — कहानियों की किताब, बड़ी किताबें, कॉमिक की किताबें, सदंर्भित किताबें आदि। दीवारों को विभिन्न क्रियाकलापों से पेंट कीजिए जो उस कक्षा की अवधारणा और दक्षताओं से संबंधित हो सकती है। दीवार की इन क्रियाकलापों के द्वारा विद्यार्थी अपने समूह में चर्चा करेंगे और एक दूसरे से सीखेंगे।

- **शिक्षण सामग्री —**

जिस प्रकार से फर्नीचर का इस्तेमाल, फर्श का इस्तेमाल, और दीवार का इस्तेमाल विद्यार्थियों के सीखने की क्रियाकलापों में होता है उसी प्रकार सावधानीपूर्वक शिक्षण सामग्रियों को उचित स्थान पर रखने की योजना बनाना भी शिक्षार्थी के अधिगम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सहायक हो सकता है। निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखकर कक्षा—कक्ष में शिक्षण सामग्री को व्यवस्थित रूप से रखा जाना चाहिए —

→ उन सामग्रियों का संग्रह करें (जैसे पुस्तक, पेपर, पेंसिल, रबर, कलर पेंसिल प्रयोगशाला उपकरण) तथा ऐसे स्थान पर रखें जहां से विद्यार्थी आसानी से उसे प्राप्त कर सके।

→ जिन सामग्रियों का इस्तेमाल केवल अध्यापक को करना है उसे विद्यार्थियों के पहुंच से बाहर रखें।

→ सामग्रियों को टेबल या आलमारी में फैलाकर न रखें वरन् बाक्स के भीतर व्यवस्थित रूप में रखें।

→ कमरे में एक स्थान सुनिश्चित करें और उस जगह लेबल लगायें जहां पर विद्यार्थी अपने अभ्यास पुस्तिका को कार्य पूरा करने के पश्चात रखेंगे प्राथमिक कक्षाओं में जहां पर अध्यापक कई विषय पढ़ाते हैं, वहां पर विभिन्न बाक्स और ट्रे का उपयोग अलग–अलग विषयों सें संबंधित सामग्री के लिए करें। जो विद्यार्थी अभी सिर्फ पढ़ना सीख रहे हैं (जैसे कक्षा प्रथम के विद्यार्थी) उनके लिए रंगीन संकेतक या आइकन का उपयोग बाक्स या ट्रे के ऊपर करें ताकि विद्यार्थी आसानी से उनकी पहचान कर सकें।

- **संपूर्ण कक्षा अध्यापन के लिए बैठने की व्यवस्था –**

आप एक परंपरागत कक्षा–कक्ष में विद्यार्थियों के बैठने की व्यवस्था से परिचित हैं जिसमें विद्यार्थी पंक्तिबद्ध रूप में बैठते हैं और अध्यापक उन सभी के सामने अपने आपको रखता है, जैस कि आकृति 7.2 में दिखाया गया है।

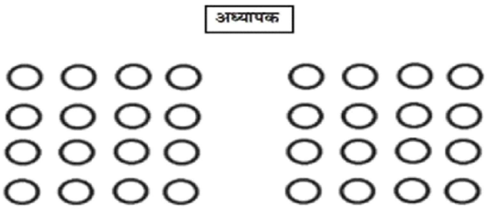

आकृति 7.2 संपूर्ण कक्षा अध्ययन के लिए बैठने की व्यवस्था

इस प्रकार के बैठने की व्यवस्था में अध्यापक केवल प्रथम पंक्ति में बैठे हुए विद्यार्थियों को देखते हैं और उन पर अधिक ध्यान देते हैं। वह कक्षा कक्ष के पीछे बैठे विद्यार्थियों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते। इस प्रकार के बैठने की व्यवस्था में सामूहिक क्रियाकलाप संभव नहीं है। अतः कक्षा कक्ष में जहां पर अध्यापक और विद्यार्थी कई प्रकार के शिक्षण–अधिगम क्रियाकलापों में संलग्न होते हैं वहां पर इस प्रकार के बैठने की व्यवस्था अनुचित है। बैठने की व्यवस्था कक्षा–कक्ष में विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों के आयोजन की आवश्यकतानुसार होना चाहिए।

- **अध्यापक प्रदर्शन के लिए बैठने की व्यवस्था –**

मान लीजिये आप कक्षा में विद्यार्थियों को कहानी सुना रहे हैं तथा कहानी को जीवंत बनाने के लिए आप विभिन्न संकेतों और मुद्राओं का सहारा लेते हैं और इस प्रकार आप विद्यार्थियों में जिज्ञासा और रूचि उत्पन्न करते हैं। सभी विद्यार्थी आप के निकट आने का प्रयास करते हैं ताकि वे आपको बेहतर ढंग से देख सुन सके। कुछ समय पश्चात आप पाते हैं कि वे पंक्ति में नहीं बैठे हैं बल्कि आपके निकट चारों ओर बैठे है।

अतः जब भी आप उन्हें कविता, कहानी, या गणितीय समस्याओं का समाधान श्यामपट पर करते समय, प्रयोगिक कार्य करते समय, तथा विद्यार्थियों के साथ चर्चा करते समय आप उन्हें अर्धवृत्ताकार मे बैठाये जैसा कि आकृति 7.3 में दिखाया गया है। इस प्रकार के व्यवस्था में आप प्रत्येक विद्यार्थी को देख सकते हैं,

विद्यार्थी आपको स्पष्ट रूप से सुन सकते हैं, श्यामपट पर आप जो लिख रहे हैं उसे देख सकते हैं तथा जिन शिक्षण–अधिगम सामग्रियों का प्रदर्शन कर रहे हैं उसे स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

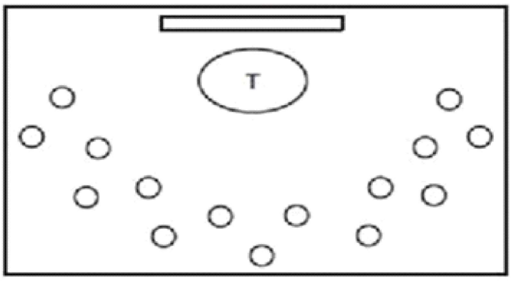

आकृति 7.3 अध्यापक प्रदर्शन के दौरान बैठने की व्यवस्था

- **सामूहिक क्रियाकलाप के लिए बैठने की व्यवस्था –**

निम्नांकित स्थिति पर ध्यान दें

परिस्थिति – 4 : एक दिन अध्यापिका उत्तरा ने कक्षा V के विद्यार्थियों के पांच छोटे समूह को एक हाथी, एक बंदर और एक आम का चित्र दिया तथा उन्हें कहा कि चित्रों पर आधारित एक छोटी सी कहानी लिखें। उन्होंने आशा किया कि प्रत्येक समूह अन्य समूह से स्वतंत्र होकर कहानी लिखें। वह इसे किस प्रकार सुनिश्चित करेंगी? उन्होने कक्षा–कक्ष में समूह को आकृति 7.4 में दिखाये गये स्थिति के अनुसार बैठाया। इस प्रकार के व्यवस्था से प्रत्येक समूह अन्य समूह से भिन्न कहानी लिखता है।

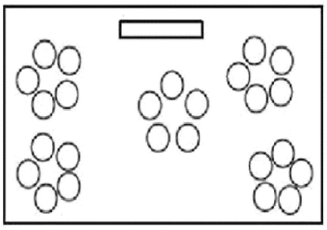

आकृति 7.4 सामूहिक क्रियाकलाप के लिए बैठने की व्यवस्था

4 से 6 विद्यार्थियों के छोटे समूह को वृत्ताकार स्थिति में कक्षा–कक्ष के विभिन्न भागों में बैठाये तथा समूह में समस्या समाधान हेतु आपस में चर्चा करने के लिए कहे। अध्यापक प्रत्येक समूह के गतिविधियों पर नजर रखे और चर्चा में प्रत्येक विद्यार्थी की भागीदारी का भी निरीक्षण करें। सामूहिक क्रियाकलाप के लिए इस प्रकार की बैठने की व्यवस्था, पंक्तिबद्ध रूप में या अर्धवृत्ताकार स्थिति में बैठाने से बेहतर है।

- **सामूहिक प्रतियोगिता के लिए बैठने की व्यवस्था –**

कभी–कभी आप ऐसे क्रियाकलाप कराते हैं जिसमें समूहों के बीच में परस्पर प्रतियोगिता कराने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में एक समूह अर्धवृत्ताकार स्थिति में बैठती है तथा उसके समझ दूसरा समूह भी अर्धवृत्ताकार स्थिति में बैठती हैं (आकृति 7.5) अर्धवृत्ताकार में बैठने या निर्णायक की भूमिका निभा सकते हैं तथा आकृति 7.5 में दिखाये गये स्थिति के अनुसार अपने लिए मध्य में जगह का चुनाव कर सकते हैं। एक समूह दूसरे समूह से प्रश्न पूछें और उनके जवाब दिये जाने पर दूसरा समूह से प्रश्न करें और यह क्रम इसी प्रकार जारी रहेगा।

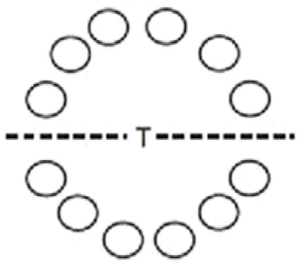

आकृति 7.5 समूह प्रतियोगिता हेतु बैटने की व्यवस्था

एक अध्यापक के रूप में आपको मालूम होना चाहिए कि कौन सी बैठने की व्यवस्था सबसे अधिक लाभप्रद होगा। एक बच्चे के प्रभावकारी ढंग से सीखने के लिए एक ही प्रकार की बैठने की व्यवस्था नहीं करना चाहिए।

SE – 7 कक्षा–कक्ष में विभिन्न प्रकार की बैठने की व्यवस्था करना क्यों आवश्यक है? अपने उत्तर के लिए कोई तीन कारण बताइये।

7.4 प्रेरणा और अनुशासन के लिए प्रबंध (Management for appreciation and discipline)

अध्यापक के रूप में आपने अनुभव किया होगा कि कुछ विद्यार्थी बहुत अधिक ध्यानशील, प्रतिभागी व विभिन्न प्रश्न पूछते हैं तथा दिये गये कार्यों को पूर्ण करके समय पर प्रस्तुत करते हैं जबकि कुछ विद्यार्थी नीरस, अरूचि वाले, तथा अपेक्षित स्तर के अनुसार प्रदर्शन करने के योग्य नहीं होते हैं। इन दोनों समूहों के मध्य आधारभूत अंतर–उनके प्ररेणा स्तर के कारण है। विद्यार्थियों को कक्षा–कक्ष में अनुशासित करने व उनके प्रेरणा के स्तर को बढ़ाने के लिए कई रणनीतियां हैं। आपने भी कभी कक्षा–कक्ष में अनुशासन–हीनता का सामना किया होगा।

आओ इस भाग में हम कुछ ऐसी रणनीतियों के बारे में चर्चा करते हैं जिससे विद्यार्थियों में अनुशासन व प्रेरणा के स्तर में वृद्धि हो।

7.4.1 विद्यार्थी को प्रेरित करने के लिए प्रबंधन (Management for motivating student) –

एक अध्यापक के रूप में आपने अवलोकन किया होगा कि विभिन्न प्रकार के क्रियाकलाप विद्यार्थियों में रूचि बनाये रखता है। विद्यार्थी की रूचि एक शक्तिशाली प्रेरक है। ऐसे विद्यार्थी जो अपने कार्यों में रूचि लेते हैं। जब विद्यार्थी अधिगम क्रियाकलाप में रूचिपूर्ण ढंग से संलग्न होते हैं तो वे अधिक सफल महसूस करते हैं और उनके व्यवहार में भी कम समस्यएं होती हैं। आप अपने विद्यार्थियों को किस प्रकार प्रेरित करने का प्रयास करते हैं वह आपके शैक्षणिक दर्शन के ऊपर निर्भर करता है तथा आपके मानसिक चित्रण से संबंध रखता है कि आप अपने कक्षा–कक्ष को किस प्रकार अनुभूत करना चाहते हैं।

प्रेरणा एक आंतरिक अवस्था है जो व्यवहार को, उकसाती है दिशानिर्देश करती है और व्यवस्थित रखती है। प्रेरणा दो प्रकार की होती है, जैसा कि हम इकाई 1 में चर्चा कर चुके हैं, आंतरिक व बाह्य। प्रेरणा जो रूचि या जिज्ञासा जैसे कारकों से उत्पन्न होता है उसे आंतरिक प्रेरणा कहते हैं। आंतरिक प्रेरणा एक स्वभाविक प्रवृत्ति है जो व्यक्तिगत रूचि के कार्यों को करने में और अपनी क्षमताओं का उपयोग करने में उत्पन्न हुये चुनौतियों का सामना कर जीत की ओर अग्रसर करता है। जब आप आंतरिक रूप से प्रेरित होते हैं तब आपको किसी लाभ या सजा की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि क्रियाकलाप ही पारितोषिक होता है तथा एक सुखद अनुभूति उपलब्ध कराती है। आंतरिक प्रेरणा आपको सफलता की अनुभूति व कार्य करने में एक आनंददायक अनुभूति देता है। आप कार्य को पूरा करने में सहायता लेते हैं और कभी–कभी आप दूसरों की सहायता भी करते हैं। इसके विपरीत यदि आप कुछ ऐसा कार्य करते हैं, जिससे आपको पहचान, पुरस्कार,

पारितोषिक या लाभ मिलता है तथा वास्तविक कार्य से कोई संबंध नहीं रखता है तब आप बाह्य प्रेरणा का अनुभव करते हैं। आप क्रियाकलाप में रूचि नहीं रखते हैं और केवल यह ध्यान में रखते हैं इससे मुझे क्या लाभ मिलेगा। बाह्य प्रेरणा प्रतियोगिता के लिए उकसाती है जो कि अंत में निराशा के साथ समाप्त होता है और व्यवहार बाह्य कारकों पर निर्भर करने लगता है।

आओ विद्यार्थियों के प्रेरणा स्तर को बढ़ाने की रणनीतियों पर विचार करते हैं।

- सबल पक्षों के निर्माण की प्राथमिकता – विद्यार्थियों को सफलता प्राप्त करने के लिए उनके क्षमताओं और प्रतिभा का उपयोग करने के लिए अवसर उपलब्ध कराना चाहिए। इससे विद्यार्थियों को अपने कौशलों का विकास करने में सहायता मिलेगी। जब विद्यार्थी अपने निर्बल पक्ष पर ध्यान देते हैं तब वे अपना अधिक समय, असफल होने में खोते है और कार्य को बहुत खराब ढंग से पूरा करने का अभ्यास करते हैं। इससे उनके आत्म–सम्मान और प्रेरणा कम होती है।

- विकल्प प्रदान करें – विद्यार्थियों को अपना निर्णय स्वयं लेने के लिए उत्साहित करें। विद्यार्थियों की रूचियों और प्रतिभाओं को पहचान कर उनका उचित समय में उपयोग करके उन्हें प्रेरित करें। विभिन्न प्रकार के कार्य उस विषयवस्तु पर दें जिसे आप चाहते हैं कि विद्यार्थी सीखें। इससे विद्यार्थियों को कार्य करने के लिए अधिक विकल्प मिलेगा जिसे वे रूचिपूर्वक और चुनौतीपूर्ण ढंग से पूरा करने के लिए प्रेरित होंगे।

- सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराना – असफलता को किस प्रकार स्वीकारें, यह प्रेरणा और सफलतापूर्वक अधिगम के विकास के लिए आवश्यक है। विद्यार्थी को चाहिए कि वे अपनी गलतियों से अवश्य सबक लें। उन्हें इस बात का अहसास दिलाना कि वे अपनी गलतियों से सीख सकते हैं।

- रचनात्मक वातावरण उपलब्ध कराना – विद्यार्थियों को उनके सृजनात्म्क क्षमता को विकसित करने के लिए अवसर उपलब्ध कराना चाहिए। जब उनके रचनात्मकता का इस्तेमाल किया जाता है तब वे अधिक प्रेरित होकर प्रदर्शन करते हैं।

- स्व–मूल्यांकन के लिए उत्साहित करना – विद्यार्थियों को स्व–मूल्यांकन करने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए जो कि विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक प्रेरणादायक होता है तथा प्रत्येक अभ्यास के साथ इसमें वृद्धि होता है।

- पुरस्कार का प्रयोग – पुरस्कार का एक प्रमुख व प्रभावकारी प्रेरणा का कारक होता है। वांछनीय व्यवहार के लिए विद्यार्थी की प्रशंसा की जानी चाहिए। विद्यार्थियों की एक दूसरे से तुलना नहीं करनी चाहिए।

- विद्यार्थियों की भागीदारी – विद्यार्थियों को सभी प्रकार के कक्षा–कक्ष क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए उत्साहित करना चाहिए। यह उनके प्रेरणा के स्तर को बढ़ाने का एक अत्यन्त प्रभावकारी तरीका है।

SE – 8 विद्यार्थियों को प्रेरित करने के लिए, निम्न में से, एक युक्ति नहीं

(i) सभी क्रियाकलापों में विद्यार्थियों को संलग्न करना।

(ii) विद्यार्थियों की योग्यताओं को पहचानना।

(iii) दूसरों के समक्ष विद्यार्थियों के गलतियों को ढूंढ़ना।

अपने उत्तर के पक्ष में एक कारण बताइये।

7.4.2 कक्षा–कक्ष में अनुशासन प्रबंधन (Desciplinary management in classroom) –

विस्तृत रूप में अनुशासन मुख्यरूप से संकेत करता है स्व–अनुशासन को जो कि एक प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा एक विद्यार्थी अपने व्यवहार को अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए नियंत्रित/संचालन करता हैं या दूसरों के आवश्यकता के अनुसार नियंत्रित करता है। और संकीर्णरूप में अनुशासन का अर्थ है सजा जो कि सहायता करने के बजाय एक लम्बे समय के पश्चात् और अधिक समस्याएँ उत्पन्न करता है।

विद्यालय के संदर्भ में अनुशासन कक्षा–कक्ष व्यवस्था से संबंध रखता है जो कि जिम्मेदारी का अहसास, दूसरों के प्रति संवेदनशील और आत्म–सम्मान पर आधारित है। हालांकि एक विद्यार्थी अपने स्वयं के व्यवहार के प्रति जिम्मेदारी की भावना उत्पन्न करने से पहले उसे सबसे पहले अपनत्व की भावना का विकास करना होगा। तभी विद्यार्थी अपने आपको कक्षा–कक्ष का समग्र हिस्सा मानेगा। उसके बाद ही वह जिम्मेदारी की भावना का विकास करेगा। अतः कक्षा–कक्ष में अनुशासन बनाने की शुरूआत अध्यापक–विद्यार्थी के सकारात्मक संबंध से होता है जिससे परस्पर एक दूसरे के प्रति सम्मान, और साझे जिम्मेदारी की भावना का अहसास होता है।

साधारणतः अनुशासन से संबंधित कुछ समस्याएँ जो कि कक्षा–कक्ष व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करता है निम्नांकित है –

- **कक्षा में देर से आना** – कभी–कभी विद्यार्थी विद्यालय में देर से आते हैं यदि अध्यापक ने कक्षा में पढ़ाना शुरू कर दिया है तो ऐसे विद्यार्थी उसे समझ नहीं पाते हैं। ये विद्यार्थी अपने मित्रों के साथ देर से आने के कारण के बारे में तथा पढ़ाये जा रहे विषयवस्तु के बारे में चर्चा करते हैं। इस तरह के व्यवहार कक्षा–कक्ष में अनुशासनहीनता को उत्पन्न करता है तथा बहुत सारे विद्यार्थियों का ध्यानभंग हो जाता है।

- **कक्षा से भागना** – ग्रामीण विद्यालयों में बहुत बड़ी संख्या में विद्यार्थी विद्यालय से, बिना स्पष्ट कारण के, अनुपस्थित रहते हैं। जब वे कुछ दिनों पश्चात विद्यालय आते हैं तो वे पढ़ाये जा रहे पाठ या विषयवस्तु को समझ नहीं पाते इससे कक्षाकक्ष में बाधा उत्पन्न होती है। प्रायः विद्यालय बंद होने से पूर्व ही विद्यार्थी बिना सूचना के विद्यालय छोड़कर चले जाते हैं।

- **शोर करना** – जब विद्यार्थी पढ़ाये जा रहे पाठ या विषयवस्तु को समझने में असमर्थ होता है या क्रियाकलाप में भाग नहीं लेता है या अरूचिकर कक्षा कार्य है तब वे आपस में बातचीत करने लगते हैं जिसके कारण कक्षाकक्ष में अनुशासनहीनता उत्पन्न होती है।

- **मजाक करना** – अपनी असफलता को नियंत्रित नहीं करने के कारण कुछ विद्यार्थी दूसरों की नकल करते हैं, मजाक उड़ाते हैं जिसके कारण आपस में लड़ाई झगड़ा, प्रारंभ कर देते हैं और इस प्रकार चिल्लाने, रोने से कक्षाकक्ष में बाधा उत्पन्न होता है।

- **आक्रामक होना** – उत्तेजित संकेत करना, धक्का देना, धमकी देना लड़ाई झगड़ा करना कुछ विद्यार्थियों की आदत होती है और ऐसे व्यवहार कक्षाकक्ष के सामान्य गतिविधियों में बाधा उत्पन्न करता है।

- **आज्ञा पालन न करना** – कई बार कुछ विद्यार्थी जानबूझकर अध्यापक के निर्देशों का पालन नहीं करते हैं। विद्यार्थी द्वारा आज्ञा पालन न करने से अनुशासनहीनता को बढ़ावा है।

- **अवज्ञा** – कुछ स्थिति में विद्यार्थी अध्यापक के अधिकार या क्षमता को प्रत्यक्ष रूप से चुनौती देता है जो कि अनुशासन नियमों की अवहेलना को प्रदर्शित करता है।

- **अनमयस्क** – किसी कार्य को करने में ध्यान न देना या किसी कार्य को पूरा करने में असफलता उद्दंड व्यवहार को प्रेरित करता है।
- **छल कपट करना** – जब विद्यार्थी समय पर कार्य नहीं करता है या कार्य उसके क्षमता के बाहर है या अध्यापक को नीचा दिखाने के लिए नकल का सहारा लेता है और यह एक ऐसा व्यवहार है जिसे बहुत से विद्यार्थी अपनाते हैं।

विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता के कई कारण हैं। प्रत्येक अनुशासनात्मक समस्या का कारण ढूंढ़ना कठिन कार्य है। कक्षाकक्ष में अनुशासन मुख्यतः कक्षाकक्ष के वातावरण से संबंधित होता है कक्षा–कक्ष में अनुपयुक्त या असुविधाजनक भौतिक स्थिति जैसे शुद्ध हवा का प्रवाह न होना, प्रकाश का न होना, अत्यंत गर्म या सीलनयुक्त कक्षाकक्ष विद्यार्थियों में अस्थिरता और व्याकुलता के भाव को उत्पन्न करता हैं। यह देखा गया है कि कुछ विद्यार्थी समूह अन्य की अपेक्षा अधिक समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। यह भी पाया गया है कि जिस कक्षा में कमजोर बच्चे अधिक संख्या में होते हैं या सीखने की प्रक्रिया धीमी है उस कक्षा में अधिक समस्या होती है। अनुशासन की समस्या लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में अधिक पाया गया। शैक्षणिक असफलता भी दुर्व्यवहार का कारण है। कुछ अध्यापक द्वारा भी विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता की भावना को जन्म देता है जैसे अध्यापक द्वारा ठीक से न पढ़ाना, बेरूखा व्यवहार, भेदभाव की नीति तथा विद्यार्थियों की समस्या के प्रति अरूचि विद्यार्थी को अनुशासनहीनता बनाता है।

यह स्पष्ट है कि प्रभावकारी कक्षा–कक्ष प्रबंधन के लिए अनुशासन संबंधी समस्याओं को रोकना अत्यंत आवश्यक है। यदि अध्यापक रूचिपूर्ण ढंग से शिक्षण–अधिगम क्रियाकलाप करते हैं तथा सभी विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करने में सफल होते हैं व उन्हें कक्षा–कक्ष क्रियाकलाप में संलग्न रखते हैं तो ऐसी स्थिति में अनुशासनहीनता की घटना कम होगी ।

अनुशासनहीनता को रोकने की रणनीतियां –

कक्षा में अनुशासनहीनता को रोकने के लिए कुछ रणनीतियां निम्नांकित है।

- कार्य–प्रवृत्त दृष्टिकोण – प्रत्येक विद्यार्थी को विभिन्न प्रकार के कार्यों में व्यस्त रखें जो उनके लिए चुनौतीपूर्ण और रूचिकर हो।
- विश्वास प्रदर्शन – यह ध्यान में रखें कि सभी दुर्व्यवहार आपके लिए नहीं है, विद्यार्थियों के ऐसे व्यवहार को व्यक्तिगत रूप से न लें। विद्यार्थियों पर विश्वास करें।
- विद्यार्थियों की प्रशंसा – विद्यार्थियों की सकारात्मक व्यवहार, गुणों और उनके उपलब्धियों की प्रशंसा करें सराहना करें।
- अनावश्यक संदिग्धता से बचे – प्रतिबंधों और निषेधों की लम्बी सूची बनाने से बचें।
- विद्यार्थियों से बातचीत करके नियम बनाना – प्रभावकारी शिक्षक अपने विद्यार्थियों से बातचीत करके कक्षाकक्ष को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए नियम बनाता है। विद्यार्थियों को प्रत्येक नियम बनाने का स्पष्ट कारण बताएँ तथा उसके लाभ नहीं बताएँ।
- प्रतिकूल परिस्थितियों को कम करना – यह सुनिश्चित करें कि कक्षा कक्ष में पर्याप्त स्थान, पर्याप्त प्रकाश, पर्याप्त फर्नीचर हो तथा दुष्प्रभावी वातावरण न हो।
- विद्यार्थियों को स्पष्ट दत्तकार्य / क्रियाकलाप दें – विद्यार्थियों को स्पष्ट रूप से, कार्य को पूर्ण करने के लिए, दिशा निर्देश दें। ताकि विद्यार्थी ठीक प्रकार से अपना कार्य पूर्ण कर सके।
- विद्यार्थियों के प्रतिसजगता – अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिये कि विद्यार्थी कक्षाकक्ष में अस्थिर या व्याकुल तो नहीं हो रहे हैं उनमें थकान तो नहीं है। विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार

के चुनौतीपूर्ण व रूचिकर कार्य दें तथा एक क्रियाकलाप से दूसरे क्रियाकलाप में सावधानी पूर्वक विद्यार्थियों को संलग्न करें।

- सभी विद्यार्थियों से संपर्क रखना – कक्षा के सभी विद्यार्थियों से संपर्क रखें हालांकि आपका ध्यान समस्याग्रस्त बच्चे पर अधिक होगा। पढ़ाते समय कक्षा कक्ष में घूमें तथा विद्यार्थियों के क्रियाकलापों पर ध्यान दें।
- तर्कसंगत सीमा तक कक्षा में रहें – विद्यार्थियों से तर्कसंगत सीमा तक ही संपर्क में रहें।

7.5 प्रबंधक के रूप में अध्यापक की भूमिका (Role of teacher as a manager)

कक्षाकक्ष प्रबंधन के संदर्भ में अध्यापक की भूमिका मुख्यतः एक प्रबंधक के रूप में होता है। हम जानते हैं कि एक प्रबंधक एक संस्था को बेहतर रूप से संचालित करने के लिए, निर्णय लेता है, स्थिति को नियंत्रित करता है, उचित निर्णय लेने के लिए त्वरित कदम उठाता है तथा वह संसाधित व्यक्ति होता है। आओ देखें कि एक अध्यापक प्रबंधक के रूप में किस प्रकार कार्य करता है।

कक्षा कक्ष में अध्यापक कई भूमिकाएँ निभाता है परन्तु अधिकतर भूमिका कक्षा प्रबंध से संबंधित होता है। एक खराब ढंग से प्रबंधित कक्षा कक्ष में प्रभावकारी ढंग से शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया संभव नहीं हो सकता है। यदि विद्यार्थी अव्यवस्थित, अवज्ञाकारी है तथा व्यवहार को दिशा–निर्देशित करने के लिए कोई नियम या प्रक्रिया नहीं है तो कक्षा कक्ष में अव्यवस्था फैलेगी। ऐसी स्थिति में अध्यापक और विद्यार्थी दोनों परेशान होते हैं। अध्यापक ठीक से पढ़ा नहीं पाते और न ही विद्यार्थी ठीक से ही सीख पाते हैं। इसके विपरीत एक व्यवस्थित रूप से प्रबंध किये हुये कक्षा कक्ष में शिक्षण–अधिगम के लिए उपयुक्त वातावरण होता है। परन्तु सुप्रबंधित कक्षाकक्ष अचानक ही प्रगट नहीं हो जाता है, इसे बनाने में अत्यधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है और इसे बनाने में अध्यापक की भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान है।

आओ प्रबंधक के रूप में अध्यापक की भूमिका के बारे में चर्चा करते हैं।

- एक प्रभावकारी कक्षा प्रदर्शन के लिए अध्यापक को पूर्व नियोजित तरीके से अधिगम – क्रियाकलापों, सहायक शिक्षण सामग्री, बैठने की व्यवस्था, तथा आकलन की प्रक्रिया की रचना करें।
- एक कक्षाकक्ष में अधिगम अनुकूल वातावरण सुनिश्चित करना चाहिए ताकि विद्यार्थी उत्तम तरीके से सीख सके। एक अच्छे प्रबंधक की तरह अध्यापक विद्यार्थियों की सुरक्षा और हितों का ध्यान रखे।
- प्रबंधक की तरह एक अध्यापक यह सुनिश्चित करें कि टीम के सभी सदस्यों को कार्य करने के लिए अवसर हो, अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी की भागीदारी व सूचना प्राप्त करने के अधिकार सुनिश्चित करें।
- एक अच्छे प्रबंधक अध्यापक को व्यावसायिक ज्ञान, जैसे शिक्षण पद्धतियां और विषयवस्तु, होना चाहिए तथा विद्यार्थियों को स्वतंत्र चिंतन, तर्क पूर्ण सोच तथा तथ्यों का परीक्षण करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाला होना चाहिए। इस प्रकार से उनके अधिगम स्तर को बढाया जा सकता है। अध्यापक एक अच्छे प्रबंधक की तरह अपने विद्यार्थियों से कक्षा में मित्रतापूर्ण व्यवहार करें।
- मानवीय उपागम और पूर्वनियोजित युक्तियों के द्वारा अध्यापक प्रभावकारी ढंग से सभी विद्यार्थियों को अधिगम प्रक्रिया में संलग्न रख सकता है। एक सामूहिक प्रदर्शन में प्रत्येक प्रतिभागी की जिम्मेदारी सुनिश्चित करना चाहिए।

- दत्तकार्य, क्रियाकलापों की प्रगति की देखभाल, प्रदर्शन का आकलन करना और उनको उनके उपलब्धियों के बारे में समय–समय पर जानकारी देने से क्रमिक रूप से विद्यार्थियों की अधिगम स्तर में वृद्धि होता है। अनुशासन का अर्थ एक ऐसे आचरण संहिता से है जिसमें अध्यापक और विद्यार्थी परस्पर एक दूसरे का सम्मान करते है, अनुशासन का अर्थ कोई नियमावली से नहीं है जिसका पालन न करने पर सजा दी जाये।

आगे बढ़ने से पहले निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

SE – 9 निम्नांकित में से कौन सा तरीका कक्षा–कक्ष में अनुशासन बनाये रखने का सबसे उत्तम तरीका है।

(i) विद्यार्थियों में से एक ताकतवर विद्यार्थी को मानीटर बनाये।

(ii) पढ़ाये जाने वाले विषयवस्तु से संबंधित विभिन्न प्रकार की क्रियाकलाप देना।

(iii) समस्याग्रस्त बच्चे को अलग रखना।

(iv) समस्याग्रस्त बच्चे के व्यवहार को सुधारने में अधिक समय व्यतीत करना।

7.6 प्रगति की जांच के आदर्श उत्तर (Model answer to check progress)

E-1 विद्यार्थी, अध्यापक और भौतिक स्थिति संसाधन सामग्री सहित।

E-2 व्यवस्थित और सक्षम योग्य (कारण बताये)

E-3 (i) प्रत्येक बच्चे को सक्षम शिक्षार्थी बनाये (ii) स्व–नियंत्रित अधिगम, व्यक्तिगत प्रयास की आवश्यकता और कार्य पूरा करने के रूचि (iii) स्व–निर्देशित सामग्री दूरस्थः शिक्षा पाठ्यक्रम में व्यापक रूप से व्यक्तिगत विद्यार्थी के लिए उपयोग किया जाता है।

E-4 (a)

E-5 समूह इस तरह से बनाये कि समूह के सदस्यों के बीच मुक्त रूप से बातचीत हो।

E-6 (i) शिक्षार्थी के कार्य करने की आत्मशक्ति बढ़ाना (ii) समूह के सदस्यों के मध्य तथा अन्य समूह के मध्य समझ को बढ़ाना

E-7 कोई तीन कारण दीजिये जिसे आप महत्वपूर्ण समझते है।

E-8 C

E-9 B

7.7 सारांश (Summary) :

- प्रभावकारी शिक्षण के लिए प्रभावकारी कक्षाकक्ष प्रबंधन एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।
- अध्यापक पूरे कक्षा के लिए, छोटे समूह के लिए, और व्यक्तिगत विद्यार्थी के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाकलापों का आयोजन करे। प्रत्येक क्रियाकलाप के लिए अलग–अलग प्रबंध कौशल की आवश्यकता होती है।
- सामूहिक अधिगम स्थिति के लिए, विद्यार्थियों को उनके, योग्यता, रूचि और विकल्प के अनुसार छोटे समूह में विभक्त करना चाहिए।

- कक्षा समय को अत्यन्त सावधानी से पूर्व निर्धारित करना चाहिए ताकि विद्यार्थी अधिकतम समय अधिगम क्रियाकलाप में संलग्न रहे।
- क्रियाकलाप के अनुरूप बैठने की व्यवस्था करें। एक ही क्रियाकलाप करते समय भिन्न–भिन्न प्रकार से बैठने की व्यवस्था की जा सकती है।
- विद्यार्थियों को प्रेरित करने के लिए अध्यापक बच्चों की प्रशंसा करें, उनको चुनौतीपूर्ण व रूचिकर क्रियाकलापों में संलग्न रखे, उनके सबल पक्षों को और समृद्ध बनाये तथा विद्यालय के विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने के लिए उन्हें उत्साहित करें।
- कक्षाकक्ष में अनुशासन बनाने के लिए विद्यार्थियों के साथ मिलकर कुछ नियम बनाये तथा विद्यालय के विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने के लिए उन्हें उत्साहित करें।
- कक्षाकक्ष में अनुशासन बनाने के लिए विद्यार्थियों के साथ मिलकर कुछ नियम बनाये तथा उनका पालन करें।
- शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 में अध्यापक के लिए, विशिष्ट रूप से विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास एक बाल–अनुकूल वातावरण में करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए, उपबंध निर्धारित किये है।

7.9 अभ्यास के प्रश्न

1. आप किस प्रकार के कक्षा में अपने आप को सहज महसूस करते है। अपने उत्तर के पक्ष में कारण स्पष्ट करें।
2. कक्षाकक्ष प्रबंधन में विद्यार्थियों को प्रेरित करना एक महत्वपूर्ण अवयव है क्यों?
3. आप अपने कक्षाकक्ष को किस प्रकार अधिगम–अनुकूल बनाने की योजना बनायेंगे?
4. कक्षा में समूह अधिगम के प्रबंधन के लिए किन–किन सिद्धांतों पर फोकस किया जाना चाहिए जिससे सीखने की प्रक्रिया प्रभावी बन सके।
5. सुसंगठित और सुसज्जित कक्षा का क्या आशय है तथा यह बच्चों को सीखने में किस प्रकार मद्‌दगार होता है।
6. सम्पूर्ण कक्षा अध्यापन के लिए बैठने की व्यवस्था, प्रदर्शन के दौरान बैठने की व्यवस्था, सामूहिक क्रियाकलाप के लिए बैठने की व्यवस्था तथा सामूहिक प्रतियोगिता में बैठने की व्यवस्था को समझाइए?

इकाई – 8

सुविधावंचित शिक्षार्थियों हेतु संदर्भित अधिगम प्रक्रियाएं

(The facility is a contextual learning process for disadvantaged learners)

8.0 प्रस्तावना (Introduction)

एक अध्यापक के रूप में कक्षा में पढ़ाते हुए आपने नोट किया होगा कि किसी भी समय कक्षा में हो रही अंतःक्रिया में सभी विद्यार्थी समान रूप से सचेत तथा जवाब देने वाले नहीं होते। कुछ विद्यार्थी कक्ष की अन्तःक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं जब कि कुछ अन्य विद्यार्थी शांत तथा शर्मीले बने रहते हैं। ये विद्यार्थी बिना लगातार अनुवर्तन के कक्षा की गतिविधियों में बहुत कम भाग लेते हैं और वे स्वेच्छा से जवाब नहीं देते, ऐसा क्यों?

विद्यार्थियों में व्यक्तिगत भिन्नताएँ होती हैं और प्रत्येक विद्यार्थी अपने व्यक्तित्व तथा प्रभाव में अद्वितीय होता है। इसलिए उनके ध्यान की अवधि, अधिगम शैली तथा जवाब देने के पैटर्न (तरीका) आदि भिन्न होते हैं। परंतु वे विद्यार्थी कौन हैं जो कक्षा में अकेले तथा शांत बैठे रहते हैं? क्या वे वह विद्यार्थी हैं जो हीन–भावना, उपेक्षा की भावना तथा भेद–भाव की भावना से ग्रसित हैं?

सुविधावंचित विद्यार्थियों के दो प्रकार हैं : सामाजिक रूप से सुविधावंचित बच्चे तथा विशेष आवश्यकता वाले बच्चे सामान्यतया अनुसूचित जाति, अनुसूचित–जन–जाति तथा अल्पसंख्यक समूहों को सामाजिक रूप से सुविधावंचित माने जाते हैं जबकि वे बच्चे जो शारीरिक तथा अधिगम कठिनाईयों से ग्रसित हैं, उन्हें विशेष आवश्यकता वाले बच्चे कहा जाता है। बच्चों की इन दो श्रेणियों के अलावा सामान्यतः बालिकाएं भी सामाजिक भेद–भाव तथा उपेक्षा से पीड़ित रहती हैं। इन श्रेणियों के बच्चे विद्यालय में सुविधावंचित तमगे के साथ विद्यालय में आते हैं। परिणाम स्वरूप वे शिक्षक तथा कक्षा के साथियों द्वारा भेद–भाव पूर्ण व्यवहार के शिकार आसानी से हो जाते हैं। यह देखा गया है कि जो बच्चे जन–जाति समूहों से आते हैं वे कक्षा–वातावरण में आरामदायक अनुभव नहीं करते क्योंकि वे जिस सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण में पले बड़े होते हैं वह कक्ष/विद्यालय से पूर्णतया भिन्न होता है। विद्यालय तथा घर के वातावरण में इस तरह मिलान न होना इस बच्चों को और अधिक सुविधावंचित स्थिति में डाल देते हैं। जो बच्चे इस भेदभाव से दूर नहीं हो पाते वे प्रायः विद्यालय छोड़ देते हैं। इस इकाई में हम कक्षा में विभिन्न श्रेणी के सुविधावंचित शिक्षार्थियों के अधिगम के सहजीकरण हेतु अधिगम के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ तथा इसके महत्व को समझेंगे परन्तु जन–जातीय बच्चों की शिक्षा पर दो मुख्य कारणों के आधार पर अधिक जोर दिया गया है। जन जातियां, देश की जनंसख्या में अच्छी खासी संख्या में विद्यमान हैं। ये बहुत दूर–दराज तथा पहुंच से दूर वाले क्षेत्रों में निवास करते हैं तथा विद्यालयी शिक्षा के प्रति अल्पतम जागरूकता रखते हैं। दूसरा इन बच्चों की सांस्कृतिक तथा भाषायी परम्पराएं अन्य सामाजिक समूहों से स्पष्ट रूप से भिन्न होती हैं। उनके सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक तथा भाषायी परिस्थितियों के आधार पर उनकी भिन्न शैक्षिक आवश्यकताओं की प्रकृति को ठीक से समझ कर उनकी समस्याओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। एक शिक्षक के रूप में आपको अपनी कक्षा में इस प्रकार के बच्चों की समस्याओं की जागरूकता रखने की आवश्यकता है तथा उनकी अधिगम –कठिनाइयों को सुलझाने हेतु स्वयं को तैयार करें। इस इकाई में ऐसे मुद्दों की विशेष विधियों के साथ चर्चा की गई है ताकि ये बच्चे भी अन्य बच्चों की भांति कक्षा की गतिविधियों में सक्रियता से भाग ले सकें।

8.1 अधिगम उद्देश्य (Learning objective)

इस इकाई की समाप्ति पर आप निम्नलिखित में समर्थ होंगे :

- अधिगम के विभिन्न स्थानीय सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भो को पहचानने में।

- कक्षा में विभिन्न श्रेणियों के सुविधावंचित बच्चों की पहचान करने तथा उन्हें सम्भालने में।
- जन–जाति समूहों के बच्चों की शिक्षा से संबंधित मुद्दों को स्पष्ट करने में।
- जन–जाति विद्यार्थियों के सामाजिक–सांस्कृतिक तथा भाषायी परिस्थितियों के उपयुक्त अधिगम प्रविधियों का उपयोग करने में।

8.2 अधिगम के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ (Socio-cultural context of learning)

शिक्षार्थी केंद्रित शिक्षण विधियों में बच्चों के अनुभव, उसके विचार तथा अधिगम व शिक्षण प्रक्रियाओं में उनकी सक्रिय सहभागिता को महत्व दिया जाता है। अतः निम्नलिखित के बारे में आप क्या सोचते हैं :

→ क्या हम कक्षा में बच्चे को ऐसी वस्तु समझें जो बिना किसी पूर्व अनुभव के हों। या उसको एक अन्य मानव समझें जिसके पास अपने परिवार तथा समूह सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों द्वारा रचित ढेर सारे अनुभव तथा दिमागी ढांचा है।

→ क्या हम विषय–वस्तु को बच्चे के लिए बिना उसकी सार्थकता तथा औचित्य को समझे सीधे उसमें भर दें (पढ़ा दें) या उनके द्वारा प्राप्त पूर्व अनुभवों की रचना तथा पुनर्रचना के उपयोग में स्वयं अपने अधिगम के निर्माण का सहजीकरण करें? इन अनुभवों को वे अपने वास्तविक जीवन–परिस्थितियों जैसे–सामाजिक–आर्थिक तथा सांस्कृतिक विभिन्नता में अभावों का सामना करने से अर्जित करते हैं।

इन प्रश्नों के उत्तरों से एक शिक्षक के रूप में आप अपनी कक्षा–शिक्षण हेतु कार्य–प्रणाली निश्चित करेंगे हम जानते हैं कि अधिगम की प्रकृति सक्रिय तथा सामाजिक है। इसलिए इसे बच्चों के स्थानीय संदर्भ तथा अनुभव पर आधारित होना चाहिए। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया बच्चों के शारीरिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर संचालित होनी चाहिए।

8.2.1 सार्थक अधिगम हेतु सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ (Socio-cultural context for meaningful learning)

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा 2005 (NCF 2005) के अनुसार : ''बच्चे का समुदाय तथा स्थानीय वातावरण प्राथमिक संदर्भ का निर्माण करता है जिसमें अधिगम क्रिया होती है और जिसमें ज्ञान की महत्ता अर्जित होती है। बच्चा अपने वातावरण के साथ अंतःक्रिया द्वारा ज्ञान की रचना करता है तथा उसका अर्थ निकालता है।''

हम बच्चे की पारिवारिक स्थानीय तथा सामुदायिक परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं कर सकते, जिसमें वह पला–बढ़ा है। इसके निम्न दो कारण हैं :

(i) स्थानीय वातावरण बच्चे को प्रचुर अनुभवों को अर्जित करने हेतु सहजीकरण की परिस्थितियाँ प्रदान करता है।

(ii) शिक्षा के लिए अभाव/कमियां, परिवार तथा समुदाय के सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक परम्पराओं तथा मान्यताओं के कारण उत्पन्न हो जाते हैं।

सहजीकरण की परिस्थितियां

बच्चे अपने सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण से अंतःक्रिया द्वारा विभिन्न प्रकार के अनुभवों को एकत्रित करते हैं। वे अपने चारों ओर के वृक्षों से, उन जानवरों तथा पक्षियों से जिन्हें उन्होंने देखा है, मित्र जिन्होंने उनके साथ खेल खेल हैं, परिवार के सदस्य जिनके साथ वे रहते हैं। आदि से बहुत कुछ सीखते हैं। हमें उनके अधिगम का बढ़ावा देने के लिए पाठ्य पुस्तकों में प्रदत्त नवीन ज्ञान को उनके पास विद्यमान अनुभवों से जोड़ना है। आइए समझते हैं, किस प्रकार सार्थक अधिगम की क्रिया होती है। नीचे दिए गए रेखा चित्र को देखें और सोचें।

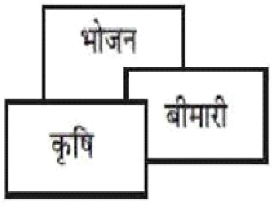

जब एक बच्चा भोजन के बारे में सीखता है तो वह 'भोजन' की अवधारणा को अपने अनुभवों के आधार पर विभिन्न प्रकार के भोजन जो वह प्रतिदिन ग्रहण करता है उसे भोजन तैयार करने की प्रक्रिया से जोड़ता है। वह कृषि स्वास्थ्य तथा बीमारी आदि से भी इसे जोड़ता है। यहां पर ये अनुभव एक साथ मस्तिष्क में एकत्रित हो जाते हैं। जब एक अवधारणा का प्रतिस्मरण (Recall) किया जाता है तो दूसरी अवधारणाएं भी साथ–साथ उसके अनुभव के साथ स्वयं ही प्रतिस्मरित हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में भोजन की अवधारणा के प्रतिस्मरण से उससे संबंधित अन्य अवधारणाओं के प्रतिस्मरण हेतु बच्चों के मस्तिष्क सक्रिय हो जाते हैं। इस स्थिति में अधिगम सार्थक होता है कयोंकि बच्चों को अपने आस–पास के वातावरण से लगातार अंतःक्रिया से अर्जित अनुभवों के उपयोग का अवसर मिलता है। इसका अर्थ है कि स्थानीय वातावरण अधिगम हेतु सहजीकरण के संदर्भ प्रदान करता है।

प्रतिबंधित परिस्थितियां

समुदाय में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियां भी बच्चों की शिक्षा में रूकावट डालती हैं। कुछ समुदाय, समृद्धिशाली हैं जो बालिकाओं की शिक्षा के बारे में बहुत ही संरक्षणात्मक विचार रखते हैं। परम दरिद्रता परिवारों को अपने बच्चों को विद्यालय भेजने के स्थान पर रोजी–रोटी कमाने में संलग्न करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसी प्रकार कुछ समुदाय सामाजिक तथा धार्मिक तमगों के कारण अपनी बालिकाओं को सह–शिक्षा विद्यालयों में बालकों के साथ पढ़ने हेतु भेजना पसंद नहीं करते। जन–जातीय बच्चे उनकी समृद्ध और विभिन्न संस्कृति को न समझने के कारण, उनकी निर्धनता तथा भाषा की वजह से बोल–चाल में कठिनाई के कारण निम्न समझे जाते हैं। इस प्रकार के प्रतिबंधों की सूची भी समाप्त नहीं होने वाली है। फिर भी बच्चों के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों को समझते हुए उनके सार्थक अधिगम के सहजीकरण हेतु यहां कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं :

- **बच्चे के ज्ञान को अधिगम के आधार के रूप में प्रयोग करें** : मान लीजिए आपको 'पानी के स्रोत' पढ़ाना है। पाठ्य–पुस्तक बताती है कि कुएं, ट्यूबवैल्स, नदियां पानी के स्रोत है। यदि बच्चों को तालाब, झील, झरना, नहर आदि देखे हैं। तब आपको अपना पाठ पानी के इन्हीं स्रोत्रों से प्रारंभ करना चाहिए।

- **अपनी कक्षा–स्थिति को संदर्भित बनाएं** : जब भी आप कक्षा में हों और जो कुछ भी पढ़ा रहे हों, स्थानीय वातावरण के उदाहरण लें, स्थानीय कहानियां सुनाएं, स्थानीय–शिक्षण–अधिगम सामग्री एकत्रित करें, विद्यार्थियों की जानकारी एकत्रित करें और उनके साथ इनका आदान–प्रदान उनकी स्थानीय भाषा/बोली में करें। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपकी कक्षा–गतिविधियाँ विद्यार्थियों के लिए सार्थक होंगी।

- **अपने स्थानीय वातावरण में उपलब्ध सामग्री का उपयोग करें** : साधारणतः शिक्षण के दौरान आप पाठ्य–पुस्तक में दिए गए चित्रों का उपयोग करते हैं, शायद आप यह भूल जाते हैं कि ये चित्र उदाहरण के तौर पर दिए गए हैं। अतः जब आप अधिगम का सहजीकरण करते

हैं तो स्थानीय विशेष सामग्री को एकत्रित करें या बनाएं। यदि आप भूगोल में पेड़–पौधे पढ़ा रहे हैं तो स्थानीय वृक्षों के नाम तथा पौधे एकत्रित करें और अपना शिक्षण स्थानीय पेड़–पौधों से करें।

- **विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता निश्चित करें** : जब विद्यार्थियों को अधिगम तथा शिक्षण प्रक्रियाओं में संलग्न किया जाता है तो वे सक्रिय हो जाते हैं। इसका अर्थ है कि अपने विचारों का आदान–प्रदान, स्वयं के उदाहरण देना, वर्णन तथा विस्तार करना और शिक्षण–अधिगम के दौरान शिक्षण–अधिगम सामग्री का उपयोग करना। अतः एक सहजकर्त्ता के रूप में आपने बिना लम्बा भाषण दिए, विस्तृत वर्णन किए तथा बिना लिखवाए विद्यार्थियों को सहभागिता हेतु अवसर प्रदान करता है।

- **पाठ्य–पुस्तकों के बाहर के उदाहरण प्रस्तुत करें** : मान लीजिए आपको कक्षा II के विद्यार्थियों को 'जोड़ना' सिखाना है। पाठ्य–पुस्तकों में दिए गए उदाहरण देखें और उद्देश्य को समझने का प्रयास करें। अधिगम के सहजीकरण के समय इन उदाहरणों को न बताएं। उन्हें उदाहरण दें कि अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में विभिन्न चीजों को कैसे जमा कर जोड़ते हैं तथा उन्हें अधिगम की अवधारणाओं से संबंधित करें। इस उपागम के द्वारा आप पाठ्य–पुस्तकों के अतिरिक्ति बच्चों के अनुभवों को उपयोग में ला सकते हैं।

- **विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने तथा तर्क करने हेतु प्रोत्साहित करें** : प्रश्न पूछने का अवसर देने का अर्थ है कि आप विद्यार्थियों को सक्रिय कर रहे हैं, बल्कि वे कैसे सीख रहे हैं, इस पर अधिक बल दें। इस संसार में कोई भी ज्ञान पूरा सही या पूरा गलत नहीं है, इसलिए उन्हें सीधे ज्ञान या प्रात्युत्तर प्रदान न करें। चाहे शिक्षा औपचारिक हो या अनौपचारिक, बच्चों के अनुभवों का उपयोग सार्थक अधिगम में सहायक होता है। अवधारणाओं के अधिगम के दौरान जब तक बच्चे अपने दैनिक अनुभवों को स्थानीय नहीं बनाते, तब तक उनका ज्ञान मात्र सूचनाओं तक सीमित रह जाता है। हम जानते हैं कि पाठ्य–विषय से सीखना व्यर्थ है जब तक इसे संदर्भ से न जोड़ा जाय। हमें बच्चों के सक्रिय सहभागिता पर अधिक जोर देना चाहिए ताकि वे अपने अनुभवों को परस्पर बांटें और पाठ्यक्रम द्वारा प्रस्तावित अवधारणाओं को मजबूत कर सकें।

SE-1 अभ्यास–1 सार्थक अधिगम की मुख्य विशेषता क्या है?

8.2.2 स्थानीय ज्ञान तथा पाठ्य–पुस्तक का ज्ञान (Local knowledge and textbook knowledge)

विभिन्न अवधारणाओं के बारे में ज्ञान, सूचना तथा उदाहरण जो पाठ्य–पुस्तक में दिए गए होते हैं, उन्हें पाठ्य–पुस्तक ज्ञान कहा जाता है। परन्तु बच्चे का समुदाय तथा स्थानीय वातावरण प्राथमिक संदर्भ बनाते हैं जिसमें अधिगम क्रिया होती है। वह वातावरण के साथ अंतःक्रिया करता/करती है, उनका अर्थ निकालता/निकालती है और ज्ञान की रचना करता/करती है। जो आगे के अधिगम हेतु आधार बन जाता है। इसी को हम बच्चों के लिए स्थानीय ज्ञान कहते हैं। साधारणतः पाठ्य–पुस्तक पूरे राज्य के लिए तैयार की जाती है तो प्रत्येक क्षेत्र तथा समुदाय के स्थानीय ज्ञान को पाठ्य–पुस्तकों को इसमें रखना कठिन होता है। यह भी असंभव है कि हमारे विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन को इसमें शामिल किया जाए, परन्तु बच्चों को स्वयं के सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण से उदाहरण ढूंढ़ने की आवश्यकता होती है। यहां पर शिक्षक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आइए हम देखते हैं कि एक शिक्षक पुस्तकीय ज्ञान को कैसे संदर्भित कर सकता है।

- **पाठ्यपुस्तक को विस्तार से पढ़ना** – अधिकाशतः शिक्षक कक्षा में प्रवेश करते ही पढ़ाना शुरू कर देते हैं। वे मुश्किल से ही पाठ्य–पुस्तक से पूर्व संदर्भ रखते हैं। परिणाम स्वरूप वे बच्चों के अधिगम के संदर्भ में पुस्तकीय ज्ञान को समझाने में समस्या का सामना करते हैं। स्थानीय उदाहरणों को पहचानने, शिक्षण–अधिगम में उनका उपयोग करने तथा पाठ्यपुस्तक के ज्ञान को

विद्यार्थियों के लिए संदर्भित करने हेतु शिक्षकों को पाठ्य–पुस्तक बार–बार पढ़ने की आवश्यकता है।

- **पाठ्य–पुस्तक से अधिगम संकेत ढूंढ़ना** – यदि एक शिक्षक पाठ्य–पुस्तक में से अधिगम संकेतों को पकड़ लेता है तो वह बच्चों के लिए सार्थक क्रियाओं के विकास में समर्थ हो जाएगा। पाठ्य–पुस्तक में प्रदत्त क्रिया–कलाप मात्र उदाहरण स्वरूप होते हैं और ये शिक्षक को अधिगम संकेतों को पहचानने में सहायक हो सकते हैं। जब एक शिक्षक इन उदाहरणों का उद्देश्य समझ लेता है तो वह अधिगम संकेतों को प्राप्त कर लेगा। उदाहरण के लिए कक्षा V की अंगेजी की पाठ्य–पुस्तक में एक पाठ में कुछ भाषण सीधे तथा कुछ घुमाकर दिए गए हैं। यहां उद्देश्य बच्चे को बोलना सिखाना है। अधिगम संकेत विकसित करने के लिए शिक्षक विद्यार्थियों के बीच बातचीत की व्यवस्था कर सकता है। एक संकेत बताता है कि बच्चा अवधारणा सीखने के बाद क्या करता है।

विभिन्न अधिगम बिंदुओं पर विद्यार्थियों का ज्ञान एकत्रित करना :–

जब एक शिक्षक अधिगम बिंदु संकेत ढूंढ लेता है तो उसे तत्सम्बंधी स्थानीय ज्ञान इसमें समाहित करने हेतु एकत्रित करने की जरूरत होती है। वह इस ज्ञान को विद्यार्थियों से, अन्य शिक्षकों से, समुदाय के व्यक्तियों आदि से प्राप्त कर सकता है।

बच्चों के ज्ञान/अनुभवों को पाठ्य–पुस्तक के ज्ञान से जोड़ना

जब शिक्षक एक अवधारणा से संबंधित विद्यार्थी के अनुभवों को जानता है तो उसे विद्यार्थियों के अनुभवों तथा पाठ्य–पुस्तक के ज्ञान के बीच संबध स्थापित करना होता है। इस उद्देश्य के लिए शिक्षक को प्रत्येक अधिगम संकेत हेतु विद्यार्थियों के अनुभवों को ध्यान में रखना होता है। उदाहरण के लिए 'भोजन बनाना' अवधारणा ग्रामीण तथा जन–जातीय क्षेत्रों में भिन्न हो सकता है।

- **यदि आवश्यक हो तो स्वयं विषय–वस्तु का निर्माण**

कभी–कभी एक पाठ्य–वस्तु विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त नहीं होती है। इसलिए विद्यार्थियों के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ को ध्यान में रखकर वैकल्पिक पाठ्य–वस्तु के निर्माण की आवश्यकता होती है।

उदाहरण स्वरूप–'सड़क दुर्घटना' एक शहरी घटना है। हम ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों से इस शीर्षक पर निबंध लिखने को नहीं कह सकते।

यदि आप मात्र पाठ्य–पुस्तकों पर निर्भर रहते हैं और विद्यार्थियों द्वारा स्थानीय संसाधनों से अर्जित अनुभवों को गौण समझते हैं तो आप दो त्रुटियां करते हैं। पहली–आप रटने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहे हैं क्योंकि पाठ्य–पुस्तक के अधिकांश अनुभव बच्चों के संदर्भ से जुड़े नहीं होते और आसानी से उनकी समझ से नहीं आते। दूसरी–आप वे बच्चे जो रटने में तेज हैं और विषय–वस्तु को बहुत जल्दी याद कर लेते हैं तथा वे जो पूर्णतः अपने स्थानीय अनुभवों पर निर्भर रहते हैं, उनमें भेद–भाव कर रहे हैं। साधारणतया पहले वाले बच्चों को अनुकूल पहचान दी जाती है और बाद वालों को मंद शिक्षार्थी का नाम दिया जाता है। इस प्रकार कभी–कभी सुविधावंचित परिस्थितियों तथा सुविधावंचित शिक्षार्थी कक्षा–कक्ष के भीतर ही निर्मित किए जाते हैं।

8.3 सुविधावंचित बच्चों की शिक्षा (Education of disadvantaged children)

जैसा पहले उल्लेख किया गया है, अल्प संख्यक समूह के बच्चे, बालिकाएं, अनुसूचित जाति के बच्चे तथा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सुविधावंचित बच्चे समझा जाता है। आइए इन्हें समझते हैं।

8.3.1 बालिकाओं की शिक्षा (Girls education)

सामान्य रूप से हम सभी बालिकाओं के प्रति उपेक्षा की भावना को जानते हैं और विशेष रूप से उनकी शिक्षा के प्रति अवांछित दृष्टिकोण को, परिवार तथा समुदाय और विद्यालय दोनों में ही बालिकाओं की शिक्षा को गंभीर रूप से नहीं लिया जाता, इस प्रकार की स्थानिक उपेक्षा देश के प्रत्येक भाग में पाई जा सकती है चाहे परिवार का आर्थिक स्तर कैसा भी हो। जहां तक मूलभूत शिक्षा का संबंध है लगभग बच्चों की आधी जनसंख्या तथा भविष्य की माताओं के साथ बहुत ही सामान्य व्यवहार किया जाता है।

बालिका शिक्षा क्यों महत्वपूर्ण हैं?

''एक बालक को शिक्षित करने से एक व्यक्ति शिक्षित होता है। परन्तु जब एक बालिका शिक्षित होती है तो एक वंश शिक्षित होता है।'' यह कहावत बालिका शिक्षा की महत्ता को प्रदर्शित करती है इसके अतिरिक्त बच्चों की आधी जनसंख्या को शिक्षित करने की तुलना में बालिका शिक्षा वास्तविक रूप से अधिक परिणामदायक होती है जैसा कि नीचे दिया गया है :

- **महिला सशक्तीकरण की ओर :** आधुनिक समय में पूरे विश्व में महिलाओं ने मानव प्रयासों के क्षेत्र में उत्तमता प्राप्त कर ली है। जिन महिलाओं को उपयुक्त शिक्षा की पहुंच मिली है, उन्होंने पुरूषों के बराबर उपलब्धि पाई है बल्कि कई क्षेत्रों में उत्तम रही हैं। इस प्रकार की महिला सशक्तीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु शिक्षा एक कुंजी है और बालिकाओं की शुरूआती शिक्षा इसके लिए आधार प्रदान करती है।

- **कार्य–स्थल में शिक्षा तथा दक्षता :** यह देखा गया है कि जितने समय के लिए महिलाएं काम करती हैं, शिक्षा उनके इस समय में वृद्धि पर प्रभाव डालती है। परन्तु पुरूषों के संदर्भ में उनके कार्य की मात्रा पर शिक्षा का प्रभाव बहुत कम होता है। यह घटना विद्यालयों में भी दृश्यमान होती हैं जहां औसत रूप में लड़कियां अध्ययन में अधिक समय देना चाहती हैं और उन्हें कम प्रोत्साहन दिया जाता है परन्तु वे फिर भी लड़कों से बेहतर प्रदर्शन करती हैं।

- **लैंगिक असमानता को दूर करना :** बालिकाओं की शिक्षा उन्हें सशक्त बनाती हैं जिससे उन्हें घर तथा कार्य–स्थल पर निम्नतर स्थान दिए जाने में कुछ कमी आ जाती है। इस प्रकार बालिकाओं तथा महिलाओं के असमान स्तर को दूर करने में उनकी शिक्षा सहायक होती है।

- **पारिवारिक स्वास्थ्य तथा शिक्षा :** जिस प्रकार एक शिक्षित मां परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य की देखभाल बेहतर तरीके से करती हैं, उसी प्रकार वह परिवार में बच्चों की शिक्षा पर भी अधिक ध्यान देती हैं। यहाँ तक कि प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राएं भी घर की स्वच्छता को बनाए रखने में परिवर्तन ला सकती हैं और परिवार के सदस्यों में स्वच्छता की आदतें विकसित करने में सहायक होती हैं।

- **बच्चे की बेहतर देखभाल :** एक शिक्षित बालिका भविष्य में एक अच्छी मां तो बनती ही हैं, साथ ही परिवार में बच्चों की बेहतर देखभाल कर सकती हैं।

- **प्रजनन दर तथा आर्थिक वृद्धि :** अनुसंधानों द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि प्रजनन दर में कमी आने का सीधा संबंध बालिकाओं की शिक्षा से है। इसका अर्थ है कि बालिकाओं की शिक्षा जितनी अधिक होगी बच्चों की जन्म दर उतनी ही कम होगी। और कम प्रजनन दर के समाज में आर्थिक वृद्धि अधिक होती है। दूसरी ओर बालकों के शैक्षिक स्तर पर सामान्यतया प्रजनन स्तर के साथ कोई सीधा संबंध नहीं है।

- **पहुंच तथा नामांकन :** बच्चे के घर के पास विद्यालय होने का अवसर आज भी दूर–दराज के ग्रामीण क्षेत्रों तथा पहाड़ी क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं है। परिवार के लोग लडकियों को दूर के

विद्यालय में नहीं भेजना चाहते। यदि विद्यालय में पहुंचना सुरक्षित नहीं है या तो भौगोलिक परिस्थितियों के कारण (पहाड़ी रास्ता, जल–स्रोत, जंगल, यहां तक कि भूमि के रूप) या विद्यालय के मार्ग में असामाजिक तत्वों के कारण। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रावधान के अनुसार बच्चे के घर से एक किलोमीटर की दूरी में पड़ोस का विद्यालय स्थापित करना, इस समस्या का समाधान कर सकता है। परन्तु इतना होते हुए भी बहुत बड़ी संख्या में छोटे–छोटे तथा दूर–दूर बिखरे हुए घर होते हैं विशेषकर जन–जाति तथा पहाड़ी क्षेत्रों में जहां पहुंच एक समस्या बनी हुई हैं। इस चुनौती को सुलझाने हेतु ऐसे बच्चों के लिए आवासीय विद्यालयों का विचार प्रस्तावित किया जा रहा है। पिछले दशक के दौरान बालिकाओं के नामांकन में पर्याप्त सुधार हुआ है। इसका कारण देश के सभी राज्यों में सर्वशिक्षा अभियान द्वारा लगातार प्रयास किए गए। परन्तु बालिकाओं का नामांकन सभी राज्यों में बालकों की तुलना में पीछे है। इस घटना के बहुत से कारण हैं। जैसे : बालिकाओं को घर के कार्यों में संलग्न करना, छोटे भाई–बहनों की देखभाल करना या बालिका शिक्षा की उपयोगिता के बारे में जागरूकता न होना। इन सबको मिलाकर बालिका शिक्षा के प्रति उपेक्षा कहा जा सकता है।

लड़कियाँ, उदाहरण लूडो रस्सी कूदना आदि खेल खेलती हैं। बालिकाओं को शारीरिक रूप से कम कठिन तथा अधिक इनडोर क्रियाएं और खेलों में संलग्न किया जाता है। जैसे : फर्श की सफाई, कक्षा–कक्ष की सजावट, बुनाई, कढ़ाई, सिलाई, खिलौने बनाना आदि। जबकि बालकों को शारीरिक रूप से अधिक चुनौतीपूर्ण तथा बाहर के (आउटडोर) क्रियाओं में संलग्न किया जाता है, जैसेः समाचार/संदेश देना भारी वस्तुओं को उठाना तथा बगीचों में कार्य करना आदि।

यदि कोई लड़का ऊंची आवाज में बोलता है तो हम उसे गम्भीरता से नहीं लेते, परंतु यदि कोई लड़की ऊंची आवाज में बोले तो हम उसे ऐसा न करने के लिए सावधान करते हैं। लड़कों की चतुरता (smartness) को सराहा जाता है जबकि लड़कियों की उसी प्रकार की चतुरता दिखाने की प्रशंसा नहीं की जाती।

विद्यालय में बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए आप क्या कर सकते हैं?

इस संदर्भ में आपके दो कर्तव्य है :–

→ पहला– विद्यालय जाने की आयु (6–14 वर्ष आयु वर्ग) की सभी लड़कियों को विद्यालय तक लाना और प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण होने तक लगातार कक्षाओं में उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करना।

→ कक्षा और विद्यालय में बालिका शिक्षा की गुणवत्ता के सुधार हेतु प्रावधान करना। ऐसे प्रयासों का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए : विद्यालय में बालिका अनुकूल वातावरण प्रदान करना, उनके आत्म–सम्मान आत्म–विश्वास तथा आत्म–निर्भरता को बढ़ावा देना, किसी प्रकार का तमगा लगाने तथा परम्परागंत भूमिकाओं को दूर करना, पाठ्य–पुस्तकों तथा अधिगम सामग्री से किसी भी प्रकार के लैंगिक भेदभाव को दूर करना, कक्षा की अंतक्रियाओं तथा क्रियाकलापों को किसी भी प्रकार के लैंगिक–भेदभाव से मुक्त करना।

इस संबंध में आप अपने विद्यालय में बहुत से कदम उठा सकते हैं। उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कुछ बिंदु निम्न रूप से सुझाए गए हैं :

सामुदायिक–सहयोग

बालिकाओं के नामांकन नियमित उपस्थिति तथा निष्पादन हेतु अभिभावकों विशेषकर माताओं से निरंतर अंतःक्रिया की आवश्यकता है। विद्यालय प्रबंध समिति के सदस्य, माता–शिक्षक संगठन, स्वयं–सहायक समूह तथा अन्य राय प्रदानकर्ताओं को उनकी विद्यालयों में बालिका–शिक्षा के प्रति समुदाय को सहयोगी बनाने हेतु संवेदनशील किया जाना चाहिए। इस दिशा में सर्वप्रथम आपको शुरूआत करनी होगी।

बालिकाओं हेतु अलग शौचालय की व्यवस्था सुनिश्चित करें – सर्व शिक्षा अभियान से उपलब्ध फंड के प्रयोग द्वारा बालिकाओं के लिए अलग से शौचालयों का निर्माण किया जा सकता है। आपको देखना होगा कि बालिकाएं सफाई को ध्यान में रखकर इनका ठीक प्रकार से उपयोग करें। इससे बालिकाओं की नियमित उपस्थिति में ही सहायता नहीं मिलती, बल्कि उनमें स्वच्छता की आदतों का विकास भी होता है जो वे अपने परिवारों में भी लेकर जाती हैं।

उपयुक्त समय पर प्रोत्साहन उपलब्ध होना – विद्यालय में लड़कियों के लिए सर्व–शिक्षा अभियान के तहत कई प्रोत्साहन जैसे–मुफ्त स्कूल ड्रैस, पाठ्य–पुस्तकें तथा पढ़ने–लिखने की सामग्री। आपको सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि ये प्रोत्साहन उन तक समय पर पहुंचे।

बालिकाओं को सभी क्रिया–कलापों में शामिल करना – आपको यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि विद्यालय की सभी प्रकार की गतिविधियों में बालिकाओं की सहभागिता हो। कोई भी क्रियाकलाप केवल लड़कों या केवल लड़कियों के नाम पर विशेष रूप से अंकित न किया जाए।

सामूहिक अधिगम पर बल – आपको समूह तथा साथी अधिगम हेतु अधिक अवसर देने चाहिए, जिनमें बालिकाएं बिना किसी रोक–टोक से भाग ले सकें। इस प्रकार की मुक्त तथा उद्देश्यपूर्ण सामूहिक अंतःक्रिया कक्षा में लैंगिक भेद–भाव को कम करने में सहायक होती है।

भेदभाव–मुक्त कक्षा की अंतःक्रियाएँ – कक्षा में अंतःक्रियाओं के दौरान आपको बालक तथा बालिकाओं में समान रूप से वितरित करने चाहिए। किसी भी प्रकार के भेदभाव–पूर्ण टिप्पणी छात्राओं पर न करें तथा उन्हें बेहतर प्रदर्शन हेतु प्रोत्साहित करें।

भेद–भाव मुक्त अधिगम आकलन – बालिकाओं के अधिगम प्रगति के आकलन में आप किसी प्रकार का भेद–भाव न करें। बालिकाओं के अंदर उनकी निष्पत्ति के आकलन में किसी प्रकार के भेद–भाव की भावना नहीं आनी चाहिए। आप रचनात्मक आकलन के अंग के रूप में साथी आकलन का उपयोग भी कर सकते हैं जिससे प्रत्येक विद्यार्थी बालिका सहित अन्य विद्यार्थियों तथा स्वयं का साथ–साथ आकलन करने में मुक्त महसूस करता है। इस प्रकार वह अपनी निष्पत्ति को सुधारने हेतु अभिप्रेरित हो जाती है।

स्वमूल्यांकन–2 अपने क्षेत्र में बालिका शिक्षा में दो मुख्य बाधाओं/रूकावटों को बताएं। इन बाधाओं को दूर करने विधियां सुझाएं।

सर्व शिक्षा अभियान (एस.एस.ए.) में बालिका शिक्षा

बालिका शिक्षा,सर्व शिक्षा अभियान का मुख्य हस्तक्षेप हैं। इसके अनुसार प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के प्रयासों में बालिकाओं तक पहुंचना उसका केन्द्र बिंदु है। सर्व शिक्षा अभियान का लैंगिक समानता पर बल देने का मूल आधार राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986/92 तथा प्रोग्राम ऑफ एक्शन (POA) है। इसमें लिंग तथा बालिका शिक्षा का मुद्दे को केंद्रीय स्तर पर लाया गया। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें महिला और बालिका शिक्षा को उनके सशक्तीकरण से जोड़ा गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार–शिक्षा परिवर्तन का बल होना चाहिए जो महिलाओं में आत्म–विश्वास पैदा करें और समाज में उनकी स्थिति सुधारे तथा असमानताओं को चुनौती दे।

सर्व शिक्षा अभियान की परिकल्पना में 6–14 वर्ष के सभी बच्चों बालिकाओं सहित को विद्यालय तक लाना तथा उनका प्रारंभिक शिक्षा को पूरा करना सुनिश्चित करना है। पुनः इसका उद्देश्य उन सभी रिक्तियों को भरना है जो लैंगिक मान्यताओं के कारण, नामांकन, धारण तथा संप्राप्ति में उत्पन्न हो गई हैं। इससे संबंधित प्रयासों में कई प्रविधियां शामिल है। जैसे–समुदाय विद्यालय के क्रियाकलापों में माताओं की सहभागिता को मजबूत बनाना, बालिकाओं के प्रोत्साहन हेतु विद्यालय यूनीफार्म, पाठ्य–पुस्तकें, पढ़ने–लिखने की सामग्री

तथा चुनिन्दा क्षेत्रों में आवासीय विद्यालयों की सुविधा का प्रावधान शिक्षा हेतु पहुंच को बढ़ाने के लिए, सर्व शिक्षा अभियान में बालिकाओं हेतु कुछ विशेष कार्यक्रम हैं जो निम्नलिखित हैं :

सर्व शिक्षा अभियान के तहत बालिकाओं हेतु एक विशेष कार्यक्रम

ऐसे आवासीय विद्यालय केवल उन्हीं शैक्षिक रूप से पिछड़े विकासखण्डों में जहां उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं हेतु किसी भी स्कीम के अंतर्गत आवासीय विद्यालय नहीं है।

के.जी.बी.वी. स्कीम सर्वाधिक रूप से सुविधावंचित समाज की बालिकाओं के सर्वांगीण विकास हेतु कार्य करती है। यह प्रदत्त पाठ्यक्रम के प्रावधानों के साथ व्यावसायिक तत्वों का भी एकीकरण करती है। इन आवासीय विद्यालयों में विद्यार्थियों के सभी व्यय सर्व शिक्षा अभियान द्वारा वहन किया जाता है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (KGBV)

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ी जाति और अल्पसंख्यक समूहों की बालिकाओं के लिए आवासीय अपर प्राइमरी विद्यालयों की स्थापना करना इस कार्यक्रम का उद्देश्य है। के. जी.बी.वी. की स्थापना निम्न क्षेत्रों में की जाती है :

→ शैक्षिक रूप से पिछड़े विकासखण्ड, जहां ग्रामीण महिला साक्षरता 30 प्रतिशत से कम है।

→ शहरी क्षेत्र जहां महिला साक्षरता राष्ट्रीय महिला साक्षरता (शहरी) से कम है।

→ अल्पसंख्यक बहुल क्षेत्रों में।

8.3.2 अल्पसंख्यक समूह के बच्चों की शिक्षा (Education the minority group of children)

विद्यालय में कई बच्चे अल्पसंख्यक समुदायों से आते हैं। ये अल्पसंख्यक समुदाय मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं : (i) भाषायी अल्पसंख्यक (ii) धार्मिक अल्पसंख्यक (iii) प्रजातीय अल्पसंख्यक

अल्पसंख्यक समूह की शिक्षा क्यों महत्वपूर्ण हैं? यह निम्न बिंदुओं के आधार पर महत्वपूर्ण है :

- **अवसरों की समानता** : प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा हेतु समान अवसर की आवश्यकता है, विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा जो हमारे संविधान के अनुसार एक मूलभूत अधिकार है तथा शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में पुनः इस पर बल दिया गया है अवसर की समानता साधारणतः विद्यालयी प्रावधान की पहुंच पर जोर डालती है। प्रत्येक बच्चा चाहे वह किसी जाति, प्रजाति धर्म या अन्य कोई अयोग्यता का कारण हो उसे बिना किसी भेदभाव के विद्यालयी पहुंच का अवसर मिलना चाहिए। ऐसा न होने पर हम इन बच्चों को उनके शिक्षा के मूलभूत अधिकार से वंचित कर रहे हैं।

- **भेद–भाव रहित व्यवहार** : कुछ विशेष क्षेत्रों को छोड़कर सामान्य विद्यालयों/कक्षाओं में अल्पसंख्यक समूह के बच्चे बहुत कम संख्या में होते हैं। वे स्वयं को अलग महसूस करते हैं क्योंकि शिक्षक तथा सभी समूह के द्वारा भेद–भाव पूर्ण व्यवहार/प्रथा तथा उनके अल्पसंख्यक होने का टैग जैसे–भाषा, धर्म तथा शारीरिक विकलांगता आदि भेद–भाव पूर्ण व्यवहार हैं जैसे–अलग से बैठने की व्यवस्था, कई गतिविधियों में भाग लेने में प्रतिबंध, अपमान जनक टिप्पणी, उनके घर की भाषा का उपयोग करना आदि। इसलिए शिक्षकों के लिए आवश्यक है कि वे सुनिश्चित करें कि ये बच्चे विद्यालय तथा कक्षा की गतिविधियों में किसी भी प्रकार के भेद–भाव पूर्ण व्यवहार से ग्रसित न हों।

- **संयुक्त संस्कृति का सम्मान** : भारत एक ऐसा देश है जहां विभिन्न संस्कृतियों साथ–साथ विद्यमान है जो आपसी अंतःक्रिया तथा एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना द्वारा विकसित हुई हैं। विद्यालय में बच्चों के प्रारंभिक प्रशिक्षण में ही भिन्न–भिन्न संस्कृतियों के प्रति सम्मान तथा दूसरों के विचारों को सुनने व सहने की प्रवृत्ति को विकसित किया जाना चाहिए।

- **सामाजिक व्यवस्था में अनेकता** : हमारे देश में प्रत्येक समाज में अनेकता एक विशेषता है। यहां तक कि विद्यालय के आस–पास के समुदायों में भी अनेकता अंकित की जाती है जो आय, व्यवसाय, रीति–रिवाजों के आधार पर होती है। यह अनेकता कक्षाओं में भी प्रदर्शित होती है। जहां विभिन्न समुदायों के बच्चे विभिन्न क्रियाकलापों के दौरान समान रूप से भाग लेते हैं तथा अंतःक्रिया करते हैं। प्रत्येक समुदाय के अद्‌भुद/विशेष तत्वों को कक्षा तथा विद्यालय की गतिविधियों में शामिल करने की आवश्यकता है ताकि बच्चे प्रारंभ से ही अनेकता को एक पूंजी की भांति सम्मान दें।

- **समावेशी अधिगम वातावरण** : एक शिक्षक के नाते आपको सभी बच्चों को समानरूप से ध्यान में रखकर समावेशी अधिगम वातावरण बनाने की आवश्यकता है। यह नोट कीजिए कि संविधान क्या कहता है।

अल्पसंख्यक समूहों के अधिकारों के बारे में संविधान क्या कहता है?

- अनुच्छेद 15 और 19 जो मूलभूत अधिकारों से संबंधित हैं के अनुसार धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग और जन्म–स्थान या इनमें से कोई भी के आधार पर भेदभाव करना निषेध है और सभी नागरिकों हेतु रोजगार संबंधी विषयों हेतु समानता के अवसर प्रदान करना है।

- अनुच्छेद 29 व 30 अल्पसंख्यकों के अधिकारों की भाषा, लिपि, संस्कृति तथा शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन के संबंध में व्याख्या करता है।

- अनुच्छेद 350(अ) के अनुसार प्राथमिक स्तर पर मातृ–भाषा में शिक्षण हेतु सुविधाएं प्रदान करना है।

अब हम अलपसंख्यक शिक्षा हेतु किए जाने वाले उपायों की चर्चा करते हैं।

भाषायी अल्पसंख्यक समूहों के बच्चों की शिक्षा

भाषायी अल्पसंख्यक समूहों के बच्चों की शिक्षा के सहजीकरण हेतु विद्यालय स्तर पर निम्न कदम उठाए जा सकते हैं :

- **भाषायी अल्पसंख्यक समूहों के बच्चों के लिए विद्यालय** : जहां पर अल्प संख्यक समूहों की अधिकता हो वहां उनके बच्चों के लिए अलग विद्यालय हो या जहां इन बच्चों की संख्या अधिक हो उनके लिए आवासीय विद्यालय की व्यवस्था हो।

- **पाठ्य–पुस्तकों तथा पढ़ने की सामग्री का प्रावधान** : भाषायी अल्प संख्यक समूहों के बच्चों की प्राथमिक आवश्यकता पाठ्‌य–पुस्तक तथा अन्य पढ़ने की सामग्री है। इस सामग्री की समय पर आपूर्ति सदैव एक समस्या बनी रहती है। इसका कारण यह है कि कुछ राज्यों में राज्य की मुख्य भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं की पाठ्‌य पुस्तकें विभिन्न कमियों के कारण विकसित नहीं की जाती।

  पाठ्‌य–पुस्तकों से संबंधित दूसरी समस्या है – कुछ विद्यालयों में भाषा की पाठ्‌य–पुस्तक के अतिरिक्त अन्य विषयों की पाठ्‌य–पुस्तक ऐसे बच्चों के घर की भाषा में उपलब्ध नहीं होते। इसका अर्थ यह है कि ऐसे बच्चे को गणित, विज्ञान व सामाजिक विज्ञान की पाठ्‌य–पुस्तकें राज्य

की मुख्य भाषा में लिखी हुई पढ़नी पड़ती है। इसका प्रबंध दूसरे राज्यों से संपर्क द्वारा किया जा सकता है जहां पाठ्य–पुस्तकें तथा पढ़ने की सामग्री उनसे संबंधित भाषा में उपलब्ध हैं।

- **भाषा शिक्षकों को शामिल करना** : बच्चों के साथ उसके घर की भाषा में बात करने/अंतःक्रिया करने वाले शिक्षक की उपस्थिति ऐसे बच्चों में अलग–थलग की भावना को दूर करने में काफी हद तक सहायक होती है। भाषा शिक्षक विशेषकर अल्पसंख्यक भाषा में संलग्न करना इन बच्चों के अधिगम के सहजीकरण के लिए सकारात्मक कदम हो सकता है। यदि कोई विशेषज्ञ व्यक्ति उपलब्ध नहीं हो तो कम से कम विद्यालय का एक शिक्षक अल्पसंख्यक भाषा तथा संस्कृति में प्रशिक्षित किया जाय ताकि वह इन बच्चों को विद्यालय में संभाल सके।

- **बहु–भाषी गतिविधियों में सहभागिता** : विद्यालय में विभिन्न अवसर आयोजित किए जा सकते हैं जिसमें बच्चों को विभिन्न भाषाओं में क्रिया–कलाप प्रदर्शित करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए देश–भक्ति गीतों को विभिन्न भाषाओं में महत्वपूर्ण दिवस पर – जैसे कि स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, राष्ट्रीय एकता दिवस आदि। विद्यालय के सभी बच्चों को दोनों भाषाओं में नाटक, गीत, पहेलियां आदि प्रदर्शित करने हेतु प्रोत्साहित किए जा सकते हैं। इस प्रकार की बहुभाषी गतिविधियों में विद्यालय/कक्षा के सभी बच्चों द्वारा भाग लेने से मित्रता का विकास होगा तथा भाषायी अल्प–संख्यक समूह के बच्चों में एकाकीपन की भावना कम होगी।

- **अल्पसंख्यक भाषा में आकलन के लिए अवसर** : अनौपचारिक रूप से कक्षा–शिक्षण के दौरान शिक्षक प्रश्न पूछने/कार्य करने हेतु दोनों भाषाओं, मुख्य और अल्पसंख्यक का प्रयोग कर सकते हैं। औपचारिक आकलन की स्थिति में प्रश्न तथा कार्य हेतु अल्पसंख्यक भाषा का प्रयोग होना चाहिए ताकि अल्पसंख्यक बच्चे भाषा की कठिनाई के कारण निष्पादन में कठिनाई महसूस न करें।

धार्मिक अल्पसंख्यक समूहों के बच्चों की शिक्षा :

हमारा देश एक–धर्म निरपेक्ष्य देश है जहां हर धर्म को पूरा सम्मान दिया जाता है। हमारा संविधान सभी व्यक्तियों को समान रूप से अंतर्विवेक की स्वतंत्रता का अधिकार है तथा धर्म का चुनाव, अपनाने तथा प्रचार प्रसार करने का अधिकार है (आर्टिकल 25) फिर भी कई कारणों जैसे – अंधविश्वास, जातीय दुश्मनी, अत्यंत गरीबी, आदि की वजह से धार्मिक अल्पसंख्यक समूह के बच्चे विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए समूह रह जाते हैं। इसीलिए उनका विद्यालयों में शैक्षिक स्तर सुधारने हेतु उन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। राज्य, विद्यालय तथा शिक्षकों द्वारा निम्नलिखित क्षेत्रों में ध्यान देने की आवश्यकता है :

- **पहुंच का प्रावधान** : हमारे संविधान के प्रावधान (आरटिकल 29(2)) के आधार पर राज्य के द्वारा स्थापित या राज्य के फंड से सहायता प्राप्त कोई भी शैक्षिक संस्थान धर्म, जाति, प्रजाति, भाषा या अन्य किसी आधार पर किसी को भी प्रवेश देने से इनकार नहीं कर सकता। शिक्षा का अधिकार अधिनियम भी इसको दर्शाता है।

- **धार्मिक संस्थानों का आधुनिकीकरण** : धार्मिक समूह के बच्चों के लिए धार्मिक संस्थान तथा तकनीकी पाठ्य–वस्तु तथा शिक्षण पर अधिक बल दिया जाता है। बिना वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के ज्ञान के इन विद्यालयों के विद्यार्थी और उनमें जीवन के समग्र विचार की कमी रह जाती है। इसके अलावा वे कई अनुभवों से वंचित रह जाते हैं जो उन्हें उच्च अधिगम की प्राप्ति में सहायक होते तथा उन्हें व्यवसाय के विस्तृत चुनाव योग्य बनाते। वर्तमान में यह सोचा जा रहा है कि इन संस्थानों के आधुनिकीकरण की आवश्यकता है ताकि इन बच्चों को धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त अन्य सभी संभव अवसर प्रदान किए जा सकें।

- **विद्यालय क्रियाओं में समावेश :** सामान्य विद्यालयों के विभिन्न क्रिया–कलापों में अल्पसंख्यक संस्कृति के भिन्न–भिन्न रूपों को समावेशित किया जा सकता है ताकि इन बच्चों को विद्यालय की मुख्य धारा में लाया जा सके, इस प्रकार के मुख्य क्रिया बिंदु निम्न है :

- **धार्मिक प्रथाओं का सम्मान :** वर्तमान में यह एक सामान्य प्रथा है कि हमारे देश में विद्यामान विभिन्न धार्मिक अवसरों के महत्वपूर्ण दिनों में सभी विद्यालयों में अवकाश रहता है। ऐसे दिनों तथा उत्सवों के महत्व पर चर्चा करके इसे और अधिक मजबूत बनाया जा सकता है जो कि प्रत्येक बच्चे में अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य सभी धर्मों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करने में सहायक होगा।

- **विद्यालय की गतिविधियों में समान रूप से भागीदारी सुनिश्चित करना :** धार्मिक अल्प संख्यक समूह के बच्चों में एकाकीपन की भावना को कम करने के लिए विद्यालय की सभी प्रकार की गतिविधियों में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करना आवश्यक है।

- **पिछड़े बच्चों के लिए विशेष प्रशिक्षण :** इस प्रकार के अधिकांश बच्चे बहुत ही निर्धन पृष्ठ–भूमि से आते हैं। अल्पसंख्यक समुदायों के ऐसे बच्चों हेतु विशेष प्रशिक्षण का प्रावधान होना चाहिए।

- **कक्षा के क्रिया–कलापों का सहजीकरण :** भेद–भाव के सभी संभव संसाधन जो इन बच्चों को कक्षा शिक्षण के दौरान अन्य बच्चों से अलग करते हैं, इन सभी को दूर करने की आवश्यकता है इसके लिए निम्न कार्य बिंदुओं को ध्यान में रखे जा सकते हैं।

- **सामूहिक क्रिया–कलापों में सहभागिता सुनिश्चित करना :** कक्षा में सामूहिक गतिविधियों में सभी बच्चों को शामिल करने से साथी–अंतःक्रिया तथा समूह परस्परता को बढ़ावा मिलता है। इससे भेद–भाव कम होता है तथा दूसरों को अपमानजनक टिप्पणी करने का मौका नहीं मिलता।

- **अधिगम सामग्री से भेद–भाव दूर करना :** ऐसे चित्र, मॉडल्स, तथा कुछ पाठ्य–सामग्री जो धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों में दुर्भावनाएँ उत्पन्न करती हैं, उन्हें उपयोग में न लाएं और न ही उनका प्रदर्शन करें। कक्षा शिक्षण में ऐसी कोई भी वस्तु जिससे दुर्भावना विकसित हो उसकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

- **भाषा के मुद्दे को ध्यान में रखना :** मुसलमान परिवारों के बच्चे उर्दू को अपनी मातृ–भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। यदि विद्यालय में कोई शिक्षक उर्दू भाषा को जानने वाला हो तो मुसलमान बच्चों को लाभ हो सकता है। यदि ऐसे शिक्षक उपलब्ध नहीं हों तो विद्यालय के कुछ शिक्षकों को कम से कम इतना प्रशिक्षण दिया जाय कि वे कक्षा में उर्दू भाषा में बात कर सकें ताकि इन बच्चों में आत्मविश्वास बना रहे। इस प्रकार के बच्चों को पाठ्य–सहगामी क्रियाओं में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित किया जा सकता है। जैसेः गीत–गाना तथा उर्दू में वार्तालाप द्वारा अभिनय करना।

- **शिक्षकों, मुख्य शिक्षकों तथा शैक्षिक प्रशासकों का प्रशिक्षण/अभिविन्यास :** शिक्षकों तथा प्रशासकों को कम अवधि का प्रशिक्षण दिया जा सकता है जिसमें उन्हें बताया जाय कि धार्मिक अल्पसंख्यक समूहों के बच्चों को अधिगम को किस प्रकार सहज बनाया जा सकता है तथा उन्हें किस प्रकार भेद–भाव पूर्ण व्यवहार से बचाया जा सकता है।

एक शिक्षक के रूप में आप अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों की शिक्षा हेतु मुख्य भूमिका निभा सकते हैं। यदि आप इस प्रकार के समुदाय से संबंधित नहीं हैं तो आपको इन बच्चों को समझने तथा अभिप्रेरित करने में कठिनाई होगी। एक बार यदि आप उनकी बोली, भाषा, संस्कृति तथा धार्मिक पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास

कर लें तो आप इन विद्यार्थियों के साथ प्रभावी ढंग से बात कर सकते हैं और उनकी आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यक्रम और शिक्षण को अपना सकते हैं।

अभ्यास–3 : कक्षा में अल्पसंख्यक समूह के बच्चों की सहभागिता बढ़ाने के लिए आप क्या–क्या प्रयास करेंगे?

8.3.3 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा (Education of the children with special needs)

प्रारंभिक स्तर पर समानता (equity) के मुद्दे का महत्वपूर्ण अंग एक ऐसा समूह है जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चों द्वारा बनाता है। आपने अपनी कक्षा में बहुत कम अक्षमता वाले बच्चे देखे होंगे जैसे–अक्षमता, सुनने, देखने की अक्षमता, बौद्धिक क्रिया का निम्न स्तर तथा अपनाने के व्यवहार में कमी आदि। एक अध्यापक के नाते आपको कक्षा में अन्य बच्चों के साथ–साथ इन बच्चों को भी सम्भालना पड़ता है ताकि उनके अधिगम तथा निष्पति में सुधार हो सके।

सर्व शिक्षा अभियान तथा निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा हेतु बच्चों का अधिकार अधिनियम –

सर्व शिक्षा अभियान का मुख्य फोकस विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य विद्यालयों में समावेशी शिक्षा प्रदान करता है। सर्व शिक्षा अभियान यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक विशेष आवश्यकता वाला बच्चा चाहे अक्षमता की श्रेणी, प्रकार तथा मात्रा कितनी भी हो, उसे सामान्य विद्यालयों में सभी बच्चों के साथ समावेशी शिक्षा दी जाए। यह विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के उपागम, विकल्प तथा प्रविधियों को भी प्रस्तावित करता है। इन बच्चों के लिए विद्यालय हेतु तैयारी में विशेष प्रशिक्षण, विशेष विद्यालयों द्वारा शिक्षा, घर पर विद्यालीय शिक्षा तथा समुदाय आधारित रिहेबिलिटेशन (सीबीआर)। अंतिम उद्देश्य इन बच्चों को पड़ोस के विद्यालयों में मुख्य धारा से जोड़ना है।

अभ्यास–4 : विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समावेशी शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में कोई दो कारण बताइए।

8.4 सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ में जन–जाति के बच्चों की शिक्षा–

सुविधावंचित शिक्षार्थी में से जन–जातीय बच्चे प्रायः अपनी सामाजिक, आर्थिक, तथा सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण कठिनाइयों का सामना करते हैं। इनकी शिक्षा से संबंधित कई मुद्दे हैं जो इस अनुभाग में वर्णित हैं।

8.4.1 मुद्दे (Issues)

स्वतंत्रता के बाद से जन–जातीय व्यक्तियों को मुख्य धारा से जोड़ने हेतु उनके समग्र विकास हेतु कई प्रयास किए गए हैं। परंतु आज भी जन–जातीय लोगों की समस्या विचारणीय बनी हुई है। भारत में जन–जातीय बच्चों की शिक्षा संबंधी कुछ तथ्य निम्न हैं।

- **कम साक्षरता दर** : भारत की जनगणना 2001 के अनुसार जन–जातीय साक्षरता दर कम है और जन–जातीय बालिकाओं के संदर्भ में यह अत्यंत शोचनीय है।
- **कम नामांकन तथा उच्च ड्राप आउट** : विद्यालयों में जन–जातीय बच्चों का नामांकन अन्य समूहों की तुलना में कम है। आधे से अधिक संख्या में जन–जातीय बच्चे प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने से पूर्व ही विद्यालय छोड़ देते हैं।
- **समझने के निम्न स्तर** : साधारणतया विद्यालय की भाषा जन–जातीय बच्चों के घर की भाषा से बिल्कुल अलग होती है। इस कारण वे कक्षा–शिक्षण तथा पाठ्य–पुस्तकों की भाषा को समझने में कठिनाई का सामना करते हैं। परिणाम स्वरूप वे सुनने तथा पढ़ने में निम्न स्तर का प्रदर्शन

करते हैं तथा दूसरे के साथ संप्रेषण की योग्यता का विकास भी उनमें ठीक प्रकार से नहीं हो पाता।

- **निम्न संप्राप्ति स्तर** : आज तक किए गए सर्वेक्षणों में लगभग सभी में यह पाया गया है कि जन–जाति बच्चों का विशेषकर जन–जातीय बालिकाओं का संप्राप्ति स्तर बहुत ही कम है। जन–जातीय बच्चे विषय क्षेत्रों में ही कम अंक नहीं प्राप्त करते बल्कि विद्यालयी शिक्षा के दौरान वे जीवन–कौशल अर्जित करने में असफल रहते हैं।

- **असफलता का अनुभव तथा निम्न आत्म–छवि** : लगातार निम्न निष्पत्ति के प्रदर्शन के कारण जन–जातीय बच्चे अपना आत्म–सम्मान खो देते हैं और निम्न आत्म छवि विकसित हो जाती है।

- **बालिकाओं हेतु अधिक सुविधावंचित** : जन–जाति बालिकाएं अधिक सुविधावंचित हैं क्योंकि उन्हें घर के सभी कार्य करने होते हैं। साथ ही अपने छोटे–भाई–बहनों की देखभाल भी करनी पड़ती है।

जन–जातीय बच्चों की शिक्षा के खराब स्तर के कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

- **पारिवारिक जागरूकता तथा सहायता की कमी** : विद्यालयों में आने वाले अधिकांश बच्चे प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी होते हैं। इसका तात्पर्य है कि परिवार में कोई भी बड़ा व्यक्ति कभी विद्यालय नहीं गया। परिणामतः वे निरक्षर हैं और दूर–दराज के क्षेत्रों में निवास करते हैं। वे विद्यालय शिक्षा की अनिवार्यता से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं तथा बच्चे को विद्यालय में किसी भी प्रकार की सहायता नहीं दे सकते। अधिकांश समय वे अपने बच्चों की शिक्षा में कोई रूचि नहीं दिखाते। यहां तक कि वे भी जो आजकल अपने बच्चों की शिक्षा में रूचि दिखाते हैं, उनके पास अपने बच्चों की सहायता तथा निर्देशन हेतु पर्याप्त शैक्षिक अनुभव नहीं हैं।

- **परिवार की अति निर्धनता** : जन–जातीय बच्चों के विद्यालय में न आने का एक मुख्य कारण उनके परिवारों की अति निर्धन स्थिति है। यद्यपि उन्हें मुफ्त पाठ्य–पुस्तकें, विद्यालय यूनीफार्म, पढ़ने–लिखने की सामग्री दी जाती है। चुनिन्दा क्षेत्रों में होस्टल की सुविधा, कुछ वजीफा प्रदान करना, आदि के बाद भी परिवार अपने बच्चों को विद्यालय भेजने में असमर्थ रहते हैं। इसका कारण है कि उनमें से कुछ अपने परिवार की छोटी सी आमदनी को पूरा करने हेतु अन्य कार्यों में संलग्न रहते हैं। इसके अतिरिक्त जैसा पहले कहा जा चुका है, बालिकाएं अपने छोटे–बहनों की देख–भाल तथा घर के अन्य कार्यों में संलग्न रहती हैं।

- **विद्यालय सुविधाओं तक पहुंच में कमी** : साधारणतया जन–जाति परिवेश छोटे तथा बिखरे होते हैं और विपरीत भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा पृथक होते हैं। किसी भी बच्चे के लिए प्राकृतिक बाधाओं को पार करके विद्यालय तक पहुंचना बहुत कठिन हो जाता है, जबकि सरकारी प्रावधान के अनुसार विद्यालय पड़ोस में ही 1 किमी. की दूरी पर स्थित होता है। इतने छोटे हेबीटेशन जिसमें 4–6 बच्चे हैं, उनके लिए अलग से विद्यालय खोलना भी एक वास्तविक उपाय नहीं हो सकता।

- **अपर्याप्त तथा अनियमित शिक्षक** : संप्रेषण सुविधाओं की कमी, प्राकृतिक बाधाओं की उपस्थिति तथा न्यूनतम आवासीय सुविधाओं की कमी के कारण किसी बाहरी शिक्षक के लिए नियमित रूप से विद्यालय पहुंचना अधिक कठिन हो जाता है। अधिकांश शिक्षक जो दूर–दराज के जनजातीय विद्यालयों में सर्वाधिक प्रतिकूल परिस्थितियों में कार्यरत हैं वे अपने कार्य को उत्साह, प्रेरणापूर्वक करने हेतु रूचि नहीं लेते।

- **मातृ–भाषा (गृह–भाषा) का प्रयोग शिक्षण–माध्यम के लिए न होना** : भाषा सीखने के अंतर की पूर्ति में शिक्षण का माध्यम बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बच्चे जो मातृभाषा

में पारंगत है वह अन्य भाषाओं को सरलता से सीख लेता है। नीचे दिए गए चित्र–1 में यह भली–भांति दर्शाया गया है। यदि आप दोनों पुल की तुलना करें तो आप देखेंगे कि उनमें से एक मजबूत तथा दूसरा कमजोर है। यह अंतर शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया तथा पाठ्य–पुस्तकों में मातृ–भाषा का बहुत कम या बिल्कुल उपयोग न होने के कारण है। परन्तु शुरूआती शिक्षा में हमें मातृ–भाषा की मजबूत नींव की आवश्यकता क्यों है?

→ बच्चे परिचित बिंदु से शुरूआत करने पर बेहतर तरीके से सीखते हैं।

→ बच्चे जो भाषा बोलते हैं और ठीक से समझते हैं उसके द्वारा शिक्षण होने पर वे बेहतर सीखते हैं।

→ परिचित भाषा में पढ़ना व लिखना सीखना अधिक सरल होता है।

→ मातृ–भाषा की बुनियाद अच्छी होने से द्वितीय भाषा सीखने में अधिक सफलता मिलती है।

→ मातृ–भाषा द्वारा अवधारणाओं को उत्तम रूप से समझा जाता है।

→ मातृ–भाषा की बुनियाद अच्छी होने से द्वितीय भाषा सीखने में अधिक सफलता मिलती है।

→ मातृ–भाषा द्वारा सीखे गए ज्ञान व कौशल दूसरी भाषा सीखने में दक्षता पूर्वक स्थानान्तरित हो जाते है।

प्रबल भाषा (समुदाय)

मातृभाषा

बाहरी (Foreign) भाषा अल्पसंख्यक समुदाय

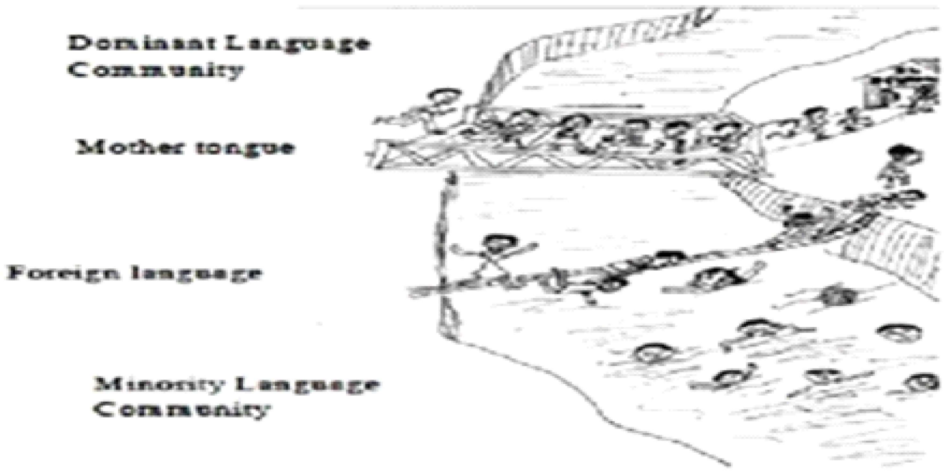

चित्र 8.1 : भाषा एवं बच्चे

जब बच्चों को द्वितीय भाषा में शिक्षित किया जाता है तो क्या होता है?

कल्पना कीजिए कि आप एक विद्यार्थी के रूप में इतिहास विषय की कक्षा में बैठे हैं और आपको विदेशी भाषा चीनी में पढ़ाया जा रहा है जो आपके लिए पूर्णतः अपरिचित है। ऐसी स्थिति में आपकी हालत

क्या होगी? क्या जो कुछ पढ़ाया जा रहा है आप उसे ग्रहण कर पाएंगे? यदि आपका शिक्षक आपकी भाषा को नहीं समझ पाता तो क्या आप उससे अंतःक्रिया कर पाएंगे? लगभग यही स्थिति एक जन–जातीय बच्चे की है जो एक प्राथमिक विद्यालय में एक कक्षा में बैठा है जहां शिक्षक एक ऐसी भाषा में पढ़ा रहा है जो बच्चे की समझ से बाहर है। इस परिस्थिति में बच्चे पूर्णतः रूचिहीन प्रतीत होते हैं और शिक्षक क्या कह रहा है उनकी समझ से परे है। वे शिक्षक को लगातार देखते रहते हैं और कभी–कभी श्यामपट पर लिखे शब्दों/अक्षरों को। बच्चे कोई भी प्रश्न पूछने में डरते हैं क्योंकि वे पूर्णतः दुविधा में रहते हैं। एक समय ऐसा होता है जब शिक्षक बोलते हुए थक जाता है और महसूस करता है कि बच्चे पूरी तरह उलझन में हैं तो वह बच्चों से श्यामपट पर लिखी हुई विषय–वस्तु को अपनी पुस्तिका में नकल करने विद्यालय छोड़ देते हैं। इसीलिए यह संस्तुति की जाती है कि द्वितीय भाषा को शिक्षण का माध्यम तभी बनाना चाहिए जब वे इस भाषा से पर्याप्त रूप से परिचित हो जाएं।

- **अधिगम–शिक्षण प्रक्रिया में स्थानीय–ज्ञान तथा सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भो का कम या बिल्कुल उपयोग न होना :**

एक जन–जातीय बच्चा सक्रिय वातावरण में रहता है जहां उसके पास अपने आस–पास के हेबीटेशन में उपलब्ध प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक संसाधनों से अंतःक्रिया करने हेतु बहुत बड़ा क्षेत्र होता है। वातावरण में उपलब्ध सामाजिक–सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक तत्वों के साथ अंतःक्रिया के फलस्वरूप उसके अनुभवों को एकत्रित किया जाता है। ये तत्व बच्चे को पाठ्य–पुस्तक–ज्ञान के अतिरिक्त ज्ञान अर्जित करने में मदद करते हैं। अनुभवों जैसेः यदि बच्चे स्वयं के त्यौहार, गीत, नृत्य, चित्र, स्थानीय मेला आदि पाठ्य–पुस्तक तथा शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के दौरान पाते हैं तो अधिगम में आनन्द का अनुभव करते हैं। यह बच्चों के लिए एक सार्थक वातावरण का निर्माण का निर्माण करता है। परन्तु हमारे विद्यालयों में दुर्भाग्यवश जन–जातीय बच्चों को इस प्रकार का अवसर नहीं मिलता। उन्हें वे पाठ्यपुस्तकें पढ़नी पड़ती है जिसमें उनके स्थानीय तथा संस्कृति की विषय–वस्तु, अवधारणा तथा उदाहरण न हों।

अभ्यास–6 : विद्यालय में शुरूआती बच्चों हेतु मातृ–भाषा क्यों महत्वपूर्ण हैं? इसके चार कारण बताइए।

8.4.2 शिक्षण विधियों संबंधी मुद्दों को सुलझाने हेतु प्रविधियां
(Techniques for resolving issues of teaching method)

जैसा कि पहले चर्चा की गई है, शिक्षण संबंधी मुद्दों हेतु कुछ प्रविधियां नीचे दी गई हैंः

- **मातृ–भाषा को शिक्षण के माध्यम के रूप में प्रयोग करना** : जैसा पहले उल्लेख किया गया है कि यदि आप एक बच्चे को जिसके पास 5–6 वर्ष तक मातृभाषा ज्ञान का अनुभव है, उसको किसी अपरिचित भाषा में पढ़ाएं तो वह जो भी आप कहते हैं, उसे नहीं समझ पाता। उदाहरण स्वरूप कक्षा एक की संथाली 'आलाह' समझ सकती है परन्तु 'घर' नहीं, 'मिरोम' परन्तु 'बकरी' नहीं, 'डाका' परन्तु 'चावल' नहीं। यद्यपि वह 5–10 पंक्तियाँ, अपनी मातृभाषा में अपने घर (आलाह) के बारे में बोल सकती है परंतु अन्य भाषा जो उसके लिए विदेशी है उसमें हो सकता है एक भी वाक्य न समझ पाए। इसीलिए मातृभाषा का उपयोग शिक्षण–माध्यम के रूप में करने से बच्चे को अवधारणा समझने में आसानी होती है, बल्कि इससे उसमें आत्म–विश्वास भी उत्पन्न होता है।

- **अधिगम–शिक्षण प्रक्रिया में स्थानीय ज्ञान का समावेश** : किसी भी पाठ्य पुस्तक में एक देश या राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के स्थानीय ज्ञान को समाहित करना संभव नहीं है। इसीलिए एक शिक्षक को स्थानीय ज्ञान के उपयोग से प्रत्येक अवधारणा को पढ़ाना है और उसे पाठ्य–पुस्तक के ज्ञान से संबंधित करना है। उदाहरण के लिए यदि एक शिक्षक को गणित में 'मापन की इकाई'

पढ़ाना है तो उसे दैनिक जीवन में उपयोग की जाने वाली अमानक इकाइयों से प्रारंभ करना होगा। जैसे कि – सेर, मन, कहना आदि। तत्पश्चात् वह मापन के मानक इकाई जैसे–किग्रा. किमी. लीटर आदि।

- **सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों का शिक्षण–अधिगम–प्रक्रिया में उपयोग :** एक समुदाय की अपनी स्वयं की जीवन शैली, अपने सामाजिक मूल्य, सामाजिक–राजनैतिक संगठन तथा धार्मिक मान्यताएं होती हैं। उनके स्वयं की भोजन–संबंधी आदतें, वेश–भूषा, गहने, कृषि तथा उद्योग होते हैं। उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र–संबंधी ज्ञान होता है। इस ज्ञान को अधिगम के सहजीकरण हेतु उपयोग में लाने की आवश्यकता है। उनके सांस्कृतिक तत्वों के आधार पर आगे का ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।
- **कक्षा अधिगम में लोक–सामग्री का उपयोग :** प्रत्येक समुदाय में उनकी अपनी लोक–कथाएं, गीत, पहेलियां, कला तथा पेन्टिंगस आदि होती हैं। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के दौरान इनका पूरी तरह से उपयोग किया जाना चाहिए। यह सामग्री सरल तथा सार्थक अधिगम प्रतिफलों की प्राप्ति के सहजीकरण में नहीं, बल्कि अधिगम प्रक्रिया को आनन्ददायक बनाने में सहायक होती हैं।
- **सामाजिक–सांस्कृतिक ज्ञान वाली पाठ्य–पुस्तकों को अपनाना :** पाठ्य–पुस्तकों को अपनाने का अर्थ है कि सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों को पाठ्य–पुस्तक की विषय–वस्तु में रखना तथा जहां आवश्यक हो वैकल्पिक विषय वस्तु तैयार करना ताकि बच्चों का अधिगम अनुभव आधारित हो जाए।
- **शिक्षक द्वारा बच्चों की मातृ–भाषा सीखना :** यद्यपि प्रत्येक बच्चे की मातृ–भाषा को सीखना संभव नहीं है परन्तु यदि एक शिक्षक बच्चों की मातृभाषा का ज्ञाता होता है तो उसका काम काफी हद तक सरल हो जाता है। यदि शिक्षक समर्पित हो तो वह बच्चों की भाषाओं का उनके तथा समुदाय के लोगों से अंतःक्रिया हेतु सीख सकता है।
- **समुदाय से सांस्कृतिक ज्ञान प्राप्त करना :** शिक्षक को सर्वप्रथम बच्चे के समुदाय का ज्ञान प्राप्त करना है। यह तभी संभव है जब शिक्षक में सीखने की इच्छा हो और स्वयं को बच्चे के समुदाय में समझे। उसे समुदाय के लोगों से बात करनी होगी, उनसे सामाजिक सांस्कृतिक पर चर्चा करनी होगी तथा समुदाय के त्यौहारों में शामिल होना पड़ेगा।
- **विद्यालय क्रिया–कलापों में समुदाय को शामिल करना :** एक अच्छा शिक्षक हमेशा सामुदायिक संसाधनों का उपयोग करता है। विद्यालय–प्रबंध तथा कक्षा की गतिविधियों में समुदाय को शामिल करने से बच्चों की निष्पति में सकारात्मक परिवर्तन आ जाता है। समुदाय का सदस्य विद्यार्थियों को स्थानीय कला, क्राफ्ट, गीत, संगीत, कहानी और अन्य अच्छी प्रथाएं आदि सीखाने के लिए संलग्न किया जा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मातृ–भाषा (घर की भाषा) का शिक्षण के माध्यम के रूप में हमारी अधिगम–शिक्षण प्रक्रिया में उपयोग करने से अधिगम का बेहतर सहजीकरण वर्तमान तथा भविष्य में होगा।

अभ्यास–7 : अपने विद्यालय में जन–जातीय बच्चों/शिक्षार्थियों की समस्याओं के समाधान हेतु चार मुख्य प्रविधियां लिखिए।

8.4.3 सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों को समझना (Understanding socio-cultural elements)

यदि आप जन–जातीय बच्चों से उनकी मातृ–भाषा में अंतःक्रिया कर सकते हैं तथा उनके वातावरण के सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों का पर्याप्त ज्ञान रखते हैं तो आप उनके अधिगम का सहजीकरण करने में सफल हो सकते हैं विशेषकर उनके विद्यालयी जीवन के प्रारंभिक अवधि में। निःसंदेह स्थानीय समुदाय का

शिक्षक (मातृ–भाषा शिक्षक) कक्षा के अंदर स्थानीय समुदाय के सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों को आसानी से ला सकता है। परन्तु जब तक शिक्षक न तो बच्चों की मातृ–भाषा को जानता है और न ही उसके सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों की पहचान है तो वहां पर शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच एक संप्रेषण–गेप (रिक्ति) आ जाती है। इस परिस्थिति में शिक्षक अपने विद्यार्थियों को समझने में असमर्थ हो जाता है और विद्यार्थी अपने शिक्षण का अनुगमन नहीं कर पाते।

चित्र 8.2 एक समाज के विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों को दर्शाता है जो निम्न प्रकार हैः–

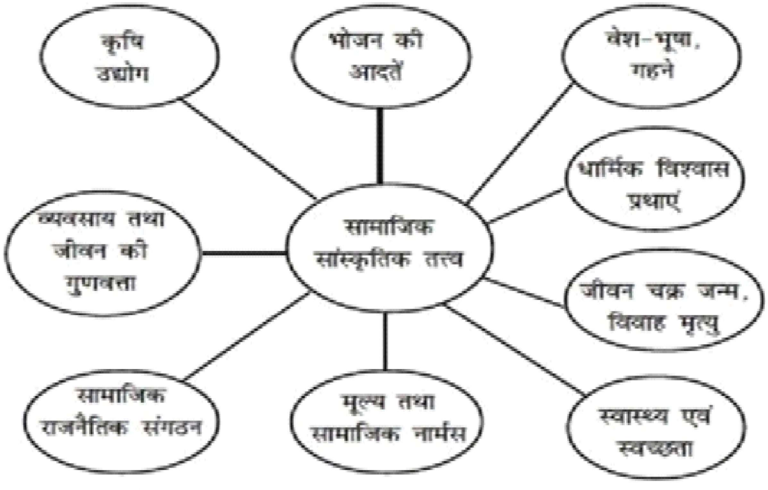

चित्र 8.2 एक समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्व

सर्वप्रथम शिक्षक को सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है। फिर जन–जातीय क्षेत्र में सांस्कृतिक रूप में उपलब्ध संसाधनों की पहचान कर उन्हें शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में बिना कढ़िनाई का सामना किए संदर्भित करता है। इसके लिए शिक्षक को समुदाय के जीवन का एक हिस्सा बनना पड़ेगा।

इसके लिए एक उदाहरण को समझें। यदि एक शिक्षक को पाठ्य–पुस्तक से 'भोजन के प्रकार' पर चर्चा करनी है तो उसे जन–जातीय लोगों के भोजन के प्रकार उनकी भोजन संबंधी आदतों से प्रारंभ करना पड़ेगा, इसका कारण यह है कि पुस्तक में वर्णन भोजन के प्रकार हो सकता है कि जन–जातीय बच्चे प्रतिदिन जो भोजन ग्रहण करते हैं, उससे समानता न रखते हों। इसलिए भोजन के प्रकार से उनके अनुभवों को जोड़ने के लिए शिक्षक को पाठ्य–पुस्तक से आगे/बाहर जाना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में उसे भोजन के प्रकार, भोजन व स्वास्थ्य आदि की चर्चा करते समय बच्चों से अनुभवों को अवश्य उपयोग में लाना चाहिए जो पाठ्य–पुस्तक के ज्ञान प्रदान करने में एक आधार का निर्माण करते हैं।

अधिगम के सहजीकरण हेतु लोक–सामग्री

लोक–सामग्री जैसे–कहानियां तथा गीत बहुत ही उपयोगी सामाजिक–सांस्कृतिक तत्व हैं जो सभी बच्चों के शिक्षण–अधिगम के सहजीकरण हेतु प्रभावी ढंग से प्रयोग किए जा सकते हैं। विशेषकर जन–जातीय समुदाय के बच्चों के लिए जहां यह सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है और बच्चे उन्हें बहुत पसंद करते हैं। लोक सामग्री विभिन्न प्रकार की होती है जैसा चित्र 8.3 में नीचे दिखाया गया है। कक्षा–अधिगम के सहजीकरण में विभिन्न संदर्भों में इनके बहु उपयोग है।

चित्र 8.3 विभिन्न प्रकार की लोक-सामग्री

8.5 प्रगति की जांच के लिए आदर्श उत्तर (Model answer to check progress)

ई–1 : बच्चों के अनुभवों का उपयोग, स्थानीय संदर्भित उदाहरणों का उपयोग, अधिगम को एक प्रक्रिया के रूप में बल देना, बच्चों को प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता देना, और बच्चों के चिंतन पर जोर देना।

ई–2 : विद्यालय का दूर होना, प्रतिकूल विद्यालय वातावरण, भेदभावपूर्ण विद्यालन / कक्षा की प्रथाएं, लिंग (कोई दो)

ई–3 : सामूहिक कार्यों में सहभागिता सुनिश्चित करना।

ई–4 : अधिगम में संगी–साथी की सहायता, आत्म–सम्मान की वृद्धि।

ई–5 : आगे की पंक्ति में बैठना (श्यामपट पर स्पष्ट दृष्टि, दृष्टि दोष और शिक्षण की आवाज का बेहतरे (सुनना) और सामूहिक कार्य में सहभागिता)।

ई–6 : निम्नलिखित में से कोई चार –

- → बच्चे जिस भाषा में बोलते हैं और ठीक से समझते हैं उसके द्वारा बेहतर सीखते हैं।
- → पढ़ना व लिखना सीखना एक परिचित भाषा में बेहतर होता है।
- → अवधारणाओं को मातृ भाषा द्वारा उत्तम तरीके से सीखा जाता है।
- → मातृ भाषा में अच्छी बुनियाद के साथ द्वितीय भाषा को अधिक सफलतापूर्वक सीखा जा सकता है।
- → स्वदेशी ज्ञान, स्वदेशी भाषा द्वारा उत्तम रूप से सीखा जाता है।
- → मातृ भाषा में ठोस बुनियाद वाले बच्चे अन्य भाषाओं में अधिक मजबूत साक्षरता योग्यताएं विकसित करते हैं।

ई–7 : निम्न की भांति कोई चार :

- मातृ–भाषा को शिक्षण के माध्यम के रूप में उपयोग करना।
- सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ तथा लोक सामग्री का प्रयोग।
- स्थानीय ज्ञान के साथ उपलब्ध पाठ्य–पुस्तकों का अनुकूलन।
- अधिगम शिक्षण प्रक्रिया में स्थानीय संदर्भित शिक्षण–अधिगम सामग्री का उपयोग।

8.6 सारांश (Summary) :

- कुछ बच्चे कक्षा में सुविधावंचित रहते हैं क्योंकि उनकी सामाजिक आर्थिक–सांस्कृतिक परिस्थितियां भिन्न होती है।
- कुछ और बच्चे भी सुविधावंचित हैं क्योंकि उनकी शारीरिक तथा अधिगम अक्षमताओं की पूर्ति हेतु उनकी कुछ विशेष आवश्यकताएं हैं। बालिकाएं, अल्पसंख्यक समूहों के बच्चे, विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे, कक्षा में सुविधावंचित बच्चों के मुख्य समूह हैं।
- इन बच्चों के सुविधावंचित होने का मुख्य कारण उनके घर के सामाजिक संदर्भों तथा विद्यालय के वातावरण में मेल नहीं होना।
- सुविधावंचित विद्यार्थियों के सार्थक अधिगम के सहजीकरण हेतु स्थानीय सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ तथा ज्ञान को पाठ्य–पुस्तक के ज्ञान के साथ शामिल करने की आवश्यकता है।
- बालिकाएं विद्यालय में जिन समस्याओं का सामना करती हैं, उन्हें कम करने हेतु कुछ उपाय किए जा सकते हैं। जैसेः समुदाय, अनुकूल इनफ्रास्ट्रकचर/भेदभाव पूर्ण तत्वों तथा प्रथाओं को विद्यालय तथा कक्षा से दूर करना और समय पर इनाम देना आदि।
- पाठ्य–सामग्री का घर की भाषा में प्रावधान तथा भाषा शिक्षक को संलग्न करना, ये दो कारक भाषायी अल्पसंख्यक समूह के बच्चों के अधिगम के सहजीकरण हेतु मुख्य रूप से सहायक होते हैं।
- धार्मिक संस्थाओं द्वारा प्रबंधित विद्यालयों का आधुनिकीकरण, कक्षा तथा विद्यालय में सभी सामूहिक गतिविधियों में सहभागिता हेतु प्रोत्साहित करना, एकाकीपन उत्पन्न करने वाले सभी कारकों को दूर करना तथा अधिगम सहायक सामग्री प्रदान करना आदि निश्चित रूप से धार्मिक–अल्पसंख्यक परिवारों के बच्चों की समस्याओं को कम कर सकते हैं।
- विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे जैसे–शारीरिक अक्षमता, दृष्टि दोष, श्रवण दोष, बौद्धित–कार्यों में निम्न स्तर तथा अनुकूलन व्यवहार की कमी, को उनकी पहचान तथा उनके अधिगम के सहजीकरण हेतु सामान्य कक्षा में विशिष्ट विधियों की आवश्यकता होती है।
- सामाजिक–सांस्कृतिक विशिष्टता के अतिरिक्त जन–जातीय बच्चों के सुविधावंचित होने का सबसे बड़ा कारक उनके घर तथा विद्यालय की भाषा में मेल न होना है।
- बहुभाषी शिक्षा में जन–जातीय बच्चों के सभी विषयों में सार्थक अधिगम हेतु बहुत से वादे हैं। प्रारंभ में मातृ–भाषा द्वारा तथा धीरे–धीरे संस्कृति संदर्भित सामग्री और अनुभवों के उपयोग के साथ दूसरी भाषाओं द्वारा अधिगम को सहज तथा सार्थक बनाया जाता है।

8.6 अभ्यास के प्रश्न

1. प्रभावी कक्षा अधिगम हेतु स्थानीय विशिष्ट संदर्भों का क्या महत्व है?
2. एक सामान्य कक्षा में विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों को किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है? उनके अधिगम के सहजीकरण हेतु आप कक्षा में से ऐसे बच्चों का ध्यान कैसे रखेंगे?
3. मान लीजिए आप एक जन–जातीय प्रमुख विद्यालय में पढ़ा रहे/रही है। आपको इन बच्चों की मातृ–भाषा का ज्ञान नहीं है। आप क्रियाकलाप कैसे संगठित करेंगे ताकि बच्चे बेहतर सीखें?
4. आपको कक्षा III में 'स्वास्थ्य' के बारे में पढ़ाना है। बच्चों की स्थानीय भाषा के आधार पर इस पाठ हेतु क्रियाकलापों को डिजाइन कीजिए।

●●●

इकाई – 9

निर्धारण तथा मूल्यांकन के आधार
(Foundations of determination and assessment)

9.0 प्रस्तावना (Introduction)

एक शिक्षक किसी पाठ की प्रस्तुती हेतु उपयुक्त विधियों का चुनाव करता है, बड़ी मेहनत से पाठ योजना बनाता है, वह अपने शिक्षण का, गतिविधियों का उत्तम प्रबंधन करता है जिससे विद्यार्थी उसके द्वारा आयोजित की गई हर क्रिया में सहभागिता करते हैं। एक प्रकरण को पढ़ाने के साथ–साथ एवं पढ़ाने के अंत में शिक्षक को क्या करना चाहिए? क्या उसे अगला प्रकरण पढ़ाना शुरू कर देना चाहिए या उसे यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि जो अवधारणाएँ उसने पढ़ाई हैं वह प्रत्येक बच्चे को समझ आ गई हैं तथा वह उसे समस्याओं के समाधान में प्रयोग करने के वास्तविक जीवन की परिस्थितियों सहित, योग्य हो गया है? वह कैसे सुनिश्चित कर सकता है कि जब वो पढ़ा रहा था तो सही दिशा में जा रहा था? क्या बच्चों को अधिगम सम्बन्धी कुछ समस्याएँ आईं? इनके उत्तर जानने की तथा अगले प्रकरण/पाठ को पढ़ाने से पहले आवश्यक कदम उठाने की आवश्यकता होती है।

यह सब जानने के लिए शिक्षक अवलोकन करता है, प्रश्न पूछता है। संक्षेप में कहें तो वह हर विद्यार्थी के प्रदर्शन का आकलन और मूल्यांकन करता है। इस इकाई में आकलन से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं के बारे में जानेंगे तथा इसे किस प्रकार शिक्षण को बेहतर बनाने एवं शिक्षक की विधियों को बदलने के लिए उपयोग किया जा सकता है ताकि बच्चों से अधिगम को प्रोत्साहन मिले।

9.1 अधिगम उद्‌देश्य (Learning objectives)

इस इकाई को पूरा पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जाएंगे कि :

- मापन, आकलन एवं मूल्यांकन की अवधारणाओं का वर्णन कर पाएंगे।
- मापन, आकलन एवं मूल्यांकन में समानताओं एवं विभिन्नताओं को पहचान पाएंगे।
- आकलन को वांछित अधिगम परिणाम एवं कक्षा में पढ़ाने के प्रक्रिया के साथ जोड़ पाएंगे।
- बच्चों के अधिगम को बढ़ावा देने के लिए रचनात्मक एवं संकलनात्मक दोनों प्रकार के आकलन का प्रयोग कर पाएंगे।
- सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के अर्थ, आवश्यकता एवं विधि का वर्णन कर पाएंगे।
- सतत् एवं मूल्यांकन से प्राप्त मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार के आंकड़ों को उपयोगी बना पायेंगे।
- सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के परिणामों को अपनी शिक्षण विधियों में सुधार के लिए प्रयोग करना।

9.2 विद्यार्थी की प्रगति का आकलन (Assessment of progress of student)

यह कुदरती बात है कि हर एक विद्यार्थी के अंदर कुछ योग्याताओं एवं कौशलों की क्षमता होती हैं। जिनका पोषण सावधानीपूर्वक होना चाहिए। एक शिक्षक होने के नाते आपका दायित्व हर विद्यार्थी को उसकी योग्यता के अनुसार बेहतरीन निष्पादन करने में सहायता करना है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में यह जानना

महत्वपूर्ण है कि बच्चों ने वह सीख लिया है जो उन्हें सीखना चाहिए था तथा समय के साथ उनके अधिगम की प्रगति संतोषजनक है। लेकिन, दूसरा कारण भी है, केवल शिक्षक की नहीं, अभिभावक तथा शैक्षिक प्रबंधक जिनकी रूची यह जानने में है कि बच्चों की विभिन्न विषयों एवं सह–पाठ्यचर्या क्षेत्रों में क्या उपलब्धि है यह, जानकारी चाहते हैं। इसका एक मार्ग तो यह है कि बच्चों की उपलब्धि का मूल्यांकन, जो विषय उन्हें पढ़ाए जा रहे हैं में परीक्षणों तथा परीक्षाओं से हो तथा उनके निष्पादन को अंक/ग्रेड दिए जाए। एक शिक्षक होने के नाते आप इससे भली–भांति परिचित हैं।

लेकिन यदि आप वास्तव में बच्चों को बेहतर सीखने के लिए सहायता करना चाहते हों तो आपको यह समझने की आवश्यकता होगी कि बच्चों द्वारा प्राप्त किए गए अंक या ग्रेड वास्तव में उनकी अधिगम प्रगति के बारे में क्या बताते हैं। अंकों या ग्रेडों के बारे में सोचते हुए आपके दिमाग में कई प्रश्न उठ सकते हैं जैसे कि :

- क्या विभिन्न विषयों में पाए गए अंक या ग्रेड बच्चे के वास्तविक निष्पादन को दर्शाते हैं?
- क्या वे अधिगम शैली या बच्चे के सीखने की विधि के बारे में कुछ बताते हैं?
- क्या वे बच्चे के अधिगम के दौरान आने वाली कठिनाईयों के बारे में कुछ संकेत देते हैं?
- क्या वे बच्चे के अधिगम की मजबूत एवं कमजोर क्षेत्रों के बारे में कुछ सूचना प्रदान करते हैं?
- क्या वे अधिगम की मात्रा एवं गति के बारे में कुछ बताते हैं?
- क्या सभी विषय वस्तुओं में अधिगम के सभी पक्षों/क्षेत्रों तथा सह–शैक्षिक क्षमताओं को अंक या ग्रेड दिए जा सकते हैं?
- क्या अधिगम को बेहतर तरीके से आंकलित करने के लिए कुछ विकल्प या अन्य तरीका है।

अगर आप ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने का प्रयत्न करेंगे, तो संभव है कि आपको अंकों एवं ग्रेडों जिनसे हम सब भलीभांति परिचित हैं, की सीमाओं का अहसास हो जाएगा। विद्यार्थी के अधिगम की प्रकृति के प्रति आश्वासित होने के अन्य बहुत से मार्ग हैं। उन विधियों को समझने के लिए आपको मापन, मूल्यांकन एवं आकलन की अवधारणाओं की स्पष्ट रूप से समझ होनी चाहिए।

9.2.1 मापन, आकलन एवं मूल्यांकन (Measurement assessment and evaluation) :

मापन : आपके दैनिक जीवन तथा कक्षा परिस्थिति में भी आपको मापन की पर्याप्त जानकारी है। अक्सर आप ऐसे प्रश्न पूछते हैं, ''सोभित की आयु कया है?, सीमा कितनी लम्बी है?', 'रहीम का वजन कितना है?', कक्षा का क्षेत्रफल कितना है?' आपके पेन का मूल्य कितना है?' 'आपके क्षेत्र में आज तापमान कितना है?' इत्यादि। ऊपरी प्रश्नों में आप आयु, ऊंचाई, वजन, क्षेत्रफल, मूल्य एवं तापमान को कुछ मात्रा में व्यक्त किया हुआ जानना चाहते हैं। उदाहरण के लिए 'सोभित की आयु 15 साल है', सीमा की ऊंचाई 1.8 मीटर हैं, रहीम का वजन 35 किलोग्राम है। 35 किलोग्राम का सही अर्थ क्या है?

जब हम किसी भौतिक वस्तु को मापते हैं तो दो पक्षों को याद रखना पड़ता है। (जैसे रहीम का वजन) एक अंक (35) तथा वजन मापने की एक इकाई (किलोग्राम)। क्या हम वजन इनमें से किसी एक के द्वारा बता सकते हैं? नहीं, हम ऐसा नही कर सकते– कथन जैसे 'वजन 35 है' या 'वजन किलोग्राम है' का कोई भी अर्थ नहीं निकलता। सीधे शब्दों में किसी भी पक्ष को उसकी मात्रा या गुणवत्ता मे मापना उस विशेष गुण (आयु, वजन, ऊंचाई के लिए मीटर, समय के लिए घंटे, मिनट, सैकंड इत्यादि) दूसरे शब्दों में मापन किसी वस्तु या प्रक्रिया के विशेष पक्ष या गुण की खास मात्रा या गुणवत्ता का वर्णन है। किसी वस्तु या प्रक्रिया के किसी पक्ष का मापन उसका मात्रात्मक वर्णन होता है।

निर्धारण : जब आप अपने लिए ड्रेस खरीदने जाते हैं तो सामान्यतः आप क्या करते हैं? आप कई ड्रेसों का परीक्षण करते हैं तथा उन्हें विभिन्न पक्षों जैसे कि आकार, रंग, ब्रांड, मूल्य, अवधि तथा आपकी आवश्यकताओं के अनुकूल तुलना करते हैं। आप उसी का चयन करते हैं जो आपकी आवश्यकताओं के अनुसार है। इसी प्रकार से यदि आप विद्यालय के किसी विषय में बच्चे के निष्पादन का मापन करना चाहते हैं, मान लीजिए पर्यावरण अध्ययन की एक विशेष इकाई या एक पाठ्यक्रम के बाद, आप एक टेस्ट दे सकते हैं तथा अंकों में निष्पादन का मापन कर सकते हैं या बच्चे को कोई परियोजना या कार्य दे सकते हैं, कक्षा या उसके बाहर पर्यावरण अध्ययन से जुड़ी अवधारणाओं की समझ से जुड़ी क्रियाओं का अवलोकन कर सकते हैं। अधिगम का निर्धारण या पर्यावरण अध्ययन में निष्पादन, इस प्रकार से पर्यावरण अध्ययन से संबंधित अवधारणाओं के अधिगम से जुड़े सभी संभव आंकड़ों एवं प्रमाणों के संकलन से संबंधित है। यह आंकड़े मात्रात्मक या संख्यात्मक जैसे कि अंक या स्कोर या गुणात्मक आंकड़े जैसे अवधारणाओं को सीखने में रूची, सीखी गई अवधारणाओं पर सहक्रियाओं की क्षमता, विषय से संबंधित गतिविधियों में सम्मिलित होना तथा बच्चे के ऐसे अन्य लक्षण जो कि अवधारणाओं के अधिगम के संभव परिणाम हो सकते हैं। आप बहुत अच्छी तरह से देख सकते हैं कि निर्धारण मापन से परे जाता है जो कि सांख्यिक आंकड़े एकत्र करने तक सीमित है। सांख्यिक स्कोरों को सम्मिलित करने के अलावा, निर्धारण अधिगम के गुणात्मक पक्ष से संबंधित आंकड़ों पर भी आधारित है। अधिगम के निर्धारण से संबंधित सूचना या आंकड़े विभिन्न स्तरों से अलग अलग प्रकार के क्षेत्र एवं प्रक्रियाओं से एकत्र किए जा सकते हैं जैसे उपलब्धि परीक्षा कक्षा तथा अन्य क्रियाओं में विद्यार्थियों की भागादारी, उनका परियोजना कार्य में निष्पादन तथा अन्य कार्य तथा ऐसी विभिन्न परिस्थितियां जहां विद्यार्थी अपना अधिगम निष्पादन दिखा सकते हैं। यह ध्यान में रखना चाहिए कि एकल टेस्ट का प्रयोग करके या एकल स्रोत से लिए गए आंकड़े पूरी तरह से अधिगम का निर्धारण करने में सहायता नहीं कर सकते तथा इस पर विस्तार में चर्चा इस इकाई के भाग 9.5 में की जाएगी।

अधिगम का निर्धारण हमेशा निश्चित उद्देश्य या उद्देश्यों के साथ किया जाता है। हालांकि विद्यालय शिक्षा में सभी प्रकार के निर्धारण का उद्देश्य बच्चों के अधिगम का सुधार होता है, लेकिन हर अधिगम के एक विशिष्ट मुद्दे को समझने के लिए होता है जिनका सामना शिक्षक को कक्षा में पढ़ाने के द्वारा करना पड़ता है जैसे कि ''कक्षा V के स्तर पर मातृ भाषा में बार–बार होने वाली Spelling गलतियां, दो तीन डिजिट के अंक जोड़ने में हासिल से संबंधित की जाने वाली गलतियाँ विभिन्न प्रकार के फूलों के भागों का गलत अवलोकन। विशिष्ट अधिगम समस्याओं के सही स्तर का पता लगाने के लिए, एक शिक्षक विद्यार्थियों का निर्धारण विशिष्ट यंत्रों के साथ करने का प्रयास करता है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि निर्धारण विशिष्ट समस्याओं पर मात्रात्मक सूचना एकत्र करने की प्रक्रिया है जिस पर आधारित अधिगम की बढ़ोतरी के लिए अगले कदम उठाए जाते हैं।

मूल्यांकन : हम सब अपने जीवन के कई मुद्दों पर मूल्यांकन कर निर्णय लेते हैं। आइए हम साबुन खरीदने जैसे साधारण मुद्दे का उदाहरण लें। बाजार में उपलब्ध साबुनों के कई किस्मों में से आपको वह चुनना है जो आपके लिए सबसे अच्छा हो। आप शायद कई प्रश्न पूछेंगे जैसे कि, 'क्या यह प्रयोग के लिए नरम है?' 'क्या यह त्वचा से मैल हटाने के लिए पर्याप्त झाग पैदा करता है?', 'क्या यह त्वचा पर कोई प्रक्रिया तो नहीं करता?' क्या इसकी खुशबू अच्छी है', 'क्या इसका मूल्य मैं आराम से चुका सकता हूँ?' 'तथा और कई प्रकार के प्रश्न। इन सभी प्रश्नों पर सूचना प्राप्त करने के बाद, आप अपने लिए इसकी उपयुक्तता का निर्णय लेते हैं। आप कह सकते हैं, 'क्या यह मेरे लिए हर प्रकार से उपयुक्त है', इसकी खुशबू अच्छी हैं, मैं इसे खरीदने में सामर्थ नहीं हूँ इत्यादि। आप उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए साबुन के बारे में निर्णय ले रहे हैं। आप यह निर्णय वस्तु के बारे में एकत्र की हुई सूचना के आधार पर ले रहे हैं यानि कि जो साबुन आप खरीदने जा रहे हैं उसका मूल्यांकन करने में लगे हुए हैं।

इसी प्रकार से जब आप बच्चों की अधिगम की प्रगति की जांच करने जा रहे हैं तो बच्चे के अधिगम से संबंधित सभी पक्षों का ध्यान रखने की आवश्यकता है। बच्चे के अधिगम हैं से संबंधित हर प्रकार की संभव

सूचना मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों, भली भांति एकत्रित करती है तथा सावधानी से उसका विश्लेषण करना है इससे पहले कि बच्चे के अधिगम स्तर/प्रगति के बारे में कोई निर्णय लिया जाए।

ऊपर लिखी चर्चा पर आधारित मूल्यांकन की अवधारणा को संक्षिप्त में नीचे बाक्स 9.1 मे दिखाया गया है।

मात्रात्मक सूचना तथा/या गुणात्मक सूचना + मूल्य निर्णय = मूल्यांकन
परीक्षणों द्वारा एकत्रित (अवलोकन, व्यवहार के विश्लेषण, पोर्टफोलियो, परियोजना कार्य इत्यादि द्वारा एकत्रित)

बाक्स 9.1 मूल्यांकन की अवधारणा

अब कक्षा अधिगम के संदर्भ में निर्धारण एवं मूल्यांकन किस प्रकार समान तथा भिन्न है?

- निर्धारण का अर्थ है विभिन्न यंत्रों का प्रयोग कर विभिन्न स्रोतों से आंकड़े एवं प्रमाण एकत्रित करना, जबकि मूल्यांकन से अर्थ है एकत्रित आंकड़ों में से प्रतिपादन, विश्लेषण एवं चिंतन द्वारा कोई अर्थ निकालना।
- निर्धारण बच्चे के निष्पादन पर पुनर्निवेशन देता है कि जिसमें उसके मजबूत पक्षों तथा सुधार के क्षेत्रों के बारे में बताया जाता है तथा अधिगम को बेहतर करने के लिए उठाने जाने वाले कदमों के बारे में अंतर्दृष्टि प्रदान की जाती है। मूल्यांकन, एकत्रित प्रमाणों पर आधारित, यह बताता है कि गुणवत्ता का मानक क्या हो पाया है तथा इस मानक तक पहुंचने के लिए सफलता तथा असफलता के स्तर क्या रहे।
- दोनों प्रक्रियाओं में निर्देशन निर्णय सावधानी से लिए जाते हैं, बच्चों के निष्पादन अधिगम के प्रति व्यवहारों तथा एक समय अवधि में समझ के परिणामों के परीक्षण पर आधारित इस कारण की वजह से, दोनों शब्दों को कई बार एक ही तरह प्रयोग किया जाता है। इस पाठ में भी हमने इन दोनों शब्दों का प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर किया है बच्चों के अधिगम के प्रबोधन तथा सरलीकरण पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हुए। ऊपरी चर्चा पर आधारित हम मापन, निर्धारण एवं मूल्यांकन की अवधारणाओं का सार निम्नलिखित रूप में दे सकते हैं, जैसा कि बॉक्स 9.2 में दिया गया है।

बाक्स 9.2 मापन, निर्धारण एवं मूल्यांकन के प्रचलित अर्थ
मापन वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी वस्तु या प्रतिभास या घटना की विशेषताओं या आयामों को मात्रा प्रदान की जाती है।
निर्धारण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी प्रदार्थ या लक्ष्य से संबंधित कोई सूचना प्राप्त की जाती है।
मूल्यांकन से अभिप्राय है किसी घटना के बारे में एक विशिष्ट समय अवधि में उसके बारे में एकत्रित मात्रात्मक एवं गुणात्मक सूचनाओं के आधार पर मूल्य निर्धारण करना।

9.3 आकलन की प्रक्रिया (Process of assessment)

अधिगम एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। इसलिए, विद्यालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हर विषय के विशिष्ट अधिगम उद्देश्य होते हैं। यह आशा की जाती है कि हर विषय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी विशिष्ट क्षमताओं/व्यवहारों का निष्पादन करेगा। इस संदर्भ में निष्पादन, निर्देशन का एक अटूट अंग बन जाता है, क्योंकि यही निर्धारित करता है। कि शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हुई है या नहीं। निर्धारण ग्रेडों, नौकरी, पदोन्नति, निर्देशों की आवश्यकताओं एवं पाठ्यक्रम के बारे में निर्णयों को प्रभावित करता है। निर्धारण

हमें इन कठिन प्रश्नों को उठाने के लिए प्रेरित करता है : ''क्या हम जो सोचते हैं कि हम पढ़ा रहे हैं, वह पढ़ा रहे हैं?'' ''क्या बच्चे वह सीख रहे हैं जो उन्हें सीखना चाहिए?'' ''क्या विषय पढ़ने के लिए कोई अन्य बेहतर विधि है, ताकि बेहतर अधिगम हो पाए?''

इन प्रश्नों के उत्तरों की खोज में आप अधिगम उद्देश्यों, कक्षा प्रक्रियाओं एवं निर्धारण में संबंध देख पाएंगे। आइए हम ढूंढे।

9.3.1 प्रत्याशित अधिगम परिणाम, कक्षा प्रक्रियाएं एवं आकलन (Expected learning outcome, classroom process and assessment)

अक्सर कक्षा में संपादन निश्चित पाठ्यचर्यीय क्षेत्रों पर आधारित होता है। यह पाठ्यचर्यीय क्षेत्र, विशिष्ट तौर पर विषयों में कुछ विषयवस्तु क्षेत्र होते हैं। हर इकाई / विषय वस्तु के प्राप्त करने के लिए कुछ अधिगम उद्देश्य होते हैं। इसका अर्थ यह है कि शीर्षक, विषय में सम्मिलित अवधारणाओं को पढ़ने के बाद, विद्यार्थी जैसे उद्देश्यों में कथित है वैसा निष्पादन या प्रदर्शन अपेक्षित तरीके से कर पाएंगे। इसलिए अधिगम उद्देश्यों को 'अपेक्षित अधिगम परिणाम' भी कहा जाता है। आप यह कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं कि इकाई कार्यक्रम के अंत में इन उद्देश्यों की प्राप्ति हो गई है? इसके लिए आपको अपेक्षित अधिगम परिणामों का निर्धारण करने की आवश्यकता है। निर्धारण का कार्य आसान तथा अधिक ठीक बनाने के लिए अपेक्षित अधिगम परिणामों को 'विशिष्ट', 'मापन योग्य', 'उपलब्धि योग्य', 'वास्तविक' एवं 'समय बद्ध' (Smart) होना है : प्रकरण के पूरा होने पर, कक्षा V के विद्यार्थी महत्वपूर्ण स्थानों जैसे दिल्ली, मुंबई, चेन्नई तथा कोलकाता को भारत के मानचित्र पर पहचान पाएंगे।

यहाँ जिस उद्देश्य को रखा गया है वह विशिष्ट है क्योंकि यह बताता है कि बच्चे क्या और कब करेंगे? अधिगम कार्य द्वारा इसका मापन भी हो जाएगा। यह बच्चों की क्षमता क्षेत्र में है इसलिए उपलब्धि योग्य भी है। यह इस भाव में वास्तविक भी है कि बच्चे मानचित्र पर स्थान दिखा सकते हैं तथा यह समयबद्ध भी है क्योंकि बच्चों को इसे प्रकरण पूरा होने के बाद ही करने की आवश्यकता है।

ऐसे अपेक्षित अधिगम उद्देश्यों के उदाहरण हो सकते हैं विभिन्न कक्षाओं में विभिन्न पाठ्यचर्यीय क्षेत्रों के अंतर्गत प्राप्त की जाने वाली क्षमताएं।

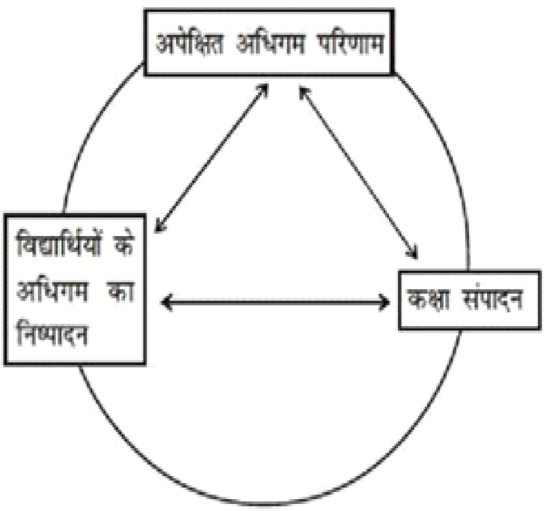

चित्र – 9.1

कक्षा प्रक्रिया

हालांकि कक्षा प्रक्रिया के तीनों अंग तार्किक एवं प्राकृतिक लगते हैं, वास्तविकता में कक्षा प्रक्रिया ऐसी सरल तथा सीधी रेखा में नहीं चलती। कई बार योजना बनाने के बावजूद तथा अधिगम उद्देश्यों के मार्गदर्शन में शिक्षण करवाते हुए भी आपको किसी एक उद्देश्य की प्राप्ति में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। बच्चों के किसी समूह के निम्न स्तर के कारण आपको इसकी प्राप्ति करना कठिन लग सकता है। ऐसी परिस्थिति में आपको अधिगम उद्देश्य का रूपान्तरण करना पड़ेगा। इसी प्रकार से, कक्षा एक प्रकरण के संपादन के बाद में बच्चों का निष्पादन, कक्षा संपादन में किसी अनापेक्षित कमी को ही सामने नहीं ला सकता बल्कि उन अपेक्षित अधिगम परिणामों के बारे में भी बता सकता है कि जिनका रूपान्तरण करना पड़ेगा। इसी प्रकार से, कक्षा संपादन में किसी अनापेक्षित कमी को ही सामने नहीं ला सकता बल्कि उन अपेक्षित अधिगम परिणामों के बारे में भी बता सकता है कि जिनका रूपांतरण करने की आवश्यकता है। इस प्रकार से कक्षा संपादन की तीनों घटके एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा परिणाम स्वरूप बाकी दो से प्रभावित होते हैं। इसलिए चित्र 9.1 में दिए गए तीरों को जो कि प्रभाव की दिशा दिखाते हैं दिशाहीन रखा गया है।

हम कह सकते हैं अधिगम परिणामों के निर्धारण का परिणाम निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देता हैः

- बच्चों के अधिगम की मात्रा तथा गति क्या हैं?
- क्या सभी कथित अधिगम परिणाम बच्चों के लिए उपयुक्त है?
- कक्षा संपादन के किन पक्षों में और सुधार की आवश्यकता है?
- बच्चों के मजबूत एवं कमजोर क्षेत्र क्या हैं जिन्हें और देखभाल की आवश्यकता है?
- आप अपने प्रयासों के प्रभाव का मूल्यांकन एवं सुधार बच्चों के अधिगम के निर्धारण एवं सुधार हेतु कैसे करते हैं?

आप यह सोच रहे होंगे कि आकलन/मूल्यांकन या तो इकाई/प्रकरण के अंत में होता है या शैक्षिक सत्र के अंत में। इसके विपरीत यह तो विद्यालय सत्र के दौरान कभी भी किया जा सकता है जब भी शिक्षक यह जाँच करना चाहें कि कक्षा में उसके शिक्षण अधिगम की क्रियाएं बच्चों के अधिगम को आगे बढ़ाने के लिए कुशलतापूर्वक कार्य कर रही हैं या नहीं।

9.3.2 सृजनात्मक एवं संकलनात्मक निर्धारण **(Formative and summative assessment)**

उनके उद्देश्यों पर आधारित, निर्धारण कई प्रकार का हो सकता है जैसे कि :

→ औपचारिक (जैसे वार्षिक या इकाई परीक्षण) या अनौपचारिक (जैसे शिक्षक की बच्चों के साथ कक्षा अंतःक्रिया में अनौपचारिक वार्तालाप या बच्चों की गतिविधियों का अनौपचारिक अवलोकन)।

→ वस्तुनिष्ठ (निश्चित पहले से तय किए गए परिणामों पर केंद्रित) या व्यक्तिनिष्ठ (व्यक्ति के बदलाव, आवश्यकताओं तथा उपलब्धियों पर केन्द्रित)।

→ प्रतिमान/मानक–संदर्भित (नार्म रैफरैंसड) (बच्चों के निष्पादन को किसी समूह के मानक या मापदण्ड के साथ तुलना करना) या वर्ग–संदर्भित (करायटैरिया रैफरैंसड) (बच्चों द्वारा निष्पादन का किसी वांछित निष्पादन के साथ तुलना करना) जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि अधिगम का निष्पादन अधिगम प्रक्रिया का एक अटूट अंग है। इसे सृजनात्म्क एवं संकलनात्मक वर्गों में बांटा जा सकता है। आइए हम दोनों वर्गों को समझें :

सृजनात्मक निर्धारण :

सृजनात्मक निर्धारण शिक्षकों द्वारा अधिगम प्रक्रिया के दौरान अपनाई जाने वाली औपचारिक एवं अनौपचारिक निर्धारण विधियों की एक श्रृंखला है जिनका उद्देश्य शिक्षक अधिगम क्रियाओं को बेहतर बनाकर

बच्चों की उपलब्धि का सुधार है। यह निरंतर चलते रहने वाली प्रक्रिया है जिसका उपयोग शिक्षक बच्चों की प्रगति को बिना डराए तथा बल प्रदान करने वाले पर्यावरण में लगातार नजर रखने के लिए करते हैं। इसमें अक्सर शिक्षक एवं बच्चे दोनों के लिए गुणात्मक पुनर्निवेशन होता है (अंकों की जगह) जिसका केंद्र विषय वस्तु का विस्तार तथा निष्पादन होता है। ऐसा निर्धारण स्वयं विद्यार्थियों या सहपाठियों के समूहों को (सहपाठियों द्वारा मूल्यांकन) भी सम्मिलित कर सकता है।

सृजनात्मक निर्धारण शिक्षक की निम्नलिखित प्रकार से सहायता करता है :

→ यह पुनर्निवेशन प्रदान करता है (निर्धारण के परिणाम का ज्ञान) विद्यार्थियों, उनके अभिभावकों तथा अन्य शिक्षकों को, ताकि आप उन्हें अधिगम की प्रक्रिया को बढ़ावा तथा सहारा देकर सही दिशा में जाने के लिए प्रेरित कर सकें।

→ आने वाली शिक्षण अधिगम क्रियाओं एवं अनुभवों को रूपांतरित करना : अगर निर्धारण के पुनर्निवेशन द्वारा आप पाएं कि आपकी कक्षा के अधिकतर बच्चों का निष्पादन वांछित स्तर से नीचे है तो आप शिक्षण अधिगम विधि तथा पद्धति को बच्चों की देखी गई आवश्यकताओं के अनुसार रूपांतरित कर सकते हैं।

→ समूह या व्यक्ति की कमियों को पहचान कर उनका उपचार करना : उदाहरण के लिए, अगर आप पाएं कि कुछ विद्यार्थियों को वह अवधारणा समझ में नहीं आई जो कि आपने पढ़ाई है आप उन्हें कुछ अधिक पढ़ांए या उनका निष्पादन सुधारने के लिए सही समय पर कोई और कदम उठाएं। उपचारात्मक क्रियाएं करने के लिए आप कुछ कमजोर क्षेत्रों की पहचान कर सकते हैं। आप पीछे रह जाने वाले बच्चों के लिए कुछ सहायता प्रदान करने वाली सामग्री तैयार कर सकते हैं।

→ बच्चों की क्षमताओं को पहचानने तथा उनकी योग्यताओं को आगे बढ़ाने के लिए–सृजनात्मक निर्धारण से प्राप्त पुनर्निवेशन कई बच्चों के मजबूत पक्ष एवं सृजनात्मक अनुभव देकर उनकी विशेषताओं को पोषण देने का अवसर प्राप्त होता है।

सृजनात्मक निर्धारण से प्राप्त पुनर्निवेशन बच्चे की सहायता करता है :

→ उसकी अपनी अधिगम की प्रगति की जांच में तथा स्वयं–अधिगम में सहायता करके

→ उसका ध्यान ग्रेड प्राप्ति से हटाकर अधिगम प्रक्रियाओं में लगता है स्वयं की कुशलता बढ़ाने हेतु

→ उन्हें इस बात के लिए जागृत करता है कि वे कैसे सीखते हैं : अधिकतर मामलों में बच्चे दूसरों पर इतने आश्रित होते हैं कि उन्हें सीखने के लिए लगातार मार्ग दर्शन करना पड़ता है, उन्हें अपने सीखने की क्षमता का ज्ञान कभी नहीं हो पाता लेकिन सृजनात्मक निर्धारण के माध्यम से नियमित मिला हुआ पुनर्निवेशन उन्हें अपनी प्रक्रिया के प्रति जागरूक करता है। यह उन्हें अपनी अधिगम प्रक्रिया अपने निष्पादन के सुधार को बदलने के लिए उत्साहित करता है।

→ बाहरी प्रेरणा के नकारात्मक प्रभाव को कम करना–यह पाया गया है कि एक बार जब विद्यार्थियों को अपने सीखने के तरीके एवं अपनी प्रक्रियाओं को रूपांतरित करने की क्षमताओं के बारे में जागरूकता हो जाती है तो उनका अधिगम बेहतर होता है। अपनी अधिगम प्रक्रिया के बारे में यह जागरूकता तथा इन कार्यों को रूपांतरित कर पाने की उनकी क्षमता उनके अधिगम के लिए आंतरिक प्रेरणा का काम करती है तथा उनकी क्रियाएं किसी बाहरी प्रेरक पर निर्भर नहीं रहती जैसे कि परीक्षा के लिए पढ़ना या स्वर्ण पदक पाने के लिए पढ़ना इत्यादि।

→ उनके निष्पादन में महत्वपूर्ण सुधार हेतु जिससे उसका आत्म–सम्मान बढ़े, स्वयं–अध्ययन हेतु आंतरिक प्रेरणा का विकास हो तथा इस प्रकार शिक्षक का कार्य–भार कम किया जा सके।

इस निर्धारण का उद्देश्य है कि विद्यार्थी के अधिगम की गुणवत्ता में सुधार किया जा सके तथा यह मूल्यांकन या ग्रेडिंग हेतु नहीं होना चाहिए। इससे पाठ्यचर्यीय रूपांतरण भी हो सकते हैं जब कुछ विशिष्ट कार्यक्रम विद्यार्थियों के अधिगम परिणामों के लिए उपयुक्त नहीं हो पाते। इससे शिक्षक को कार्यक्रम के उद्देश्यों को निर्धारित करने तथा अभ्यास करने में लगा कर निर्देशन की गुणवत्ताा सुधारने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। तथा कार्यक्रम पर एक कोर्स का क्या प्रभाव है यह जानने के लिए भी।

सृजनात्मक निर्धारण की विशेषताओं का संक्षिप्त सार तथा यह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के निष्पादन को सुधारने में जो भूमिका निभाता है।

सृजनात्मक निर्धारण

- बच्चों के पूर्व ज्ञान एवं अनुभव का उपयोग आगे बढ़ाने के लिए रूपरेखा तैयार करने के लिए किया जाता है।
- अनौपचारिक आधार पर नियमित कालांशों (Interval) में किया जाता है।
- निदानात्मक एवं उपचारात्मक है।
- प्रभावशाली पुनर्बलन सुनिश्चित करता है।
- बच्चों कोउनके अपने अधिगम में सक्रिय भागीदारी हेतु आधार प्रदान करता है।
- शिक्षकों को पुनर्बलन प्रदान करता है ताकि वो बच्चों की उभरती हुई आवश्यकताओं के अनुसार अपने कक्षा संपादन को अनुकूल बनाने के योग्य हो जाएं।
- विद्यार्थियों में आंतरिक प्रेरणा तथा आत्म–सम्मान को बढ़ावा देता है, जिन दोनों का अधिगम निष्पादन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।
- बच्चों की स्वयं का निर्धारण करने की तथा समझने की, कि कैसे सुधार करना है आवश्यकता को पहचानता है।
- विभिन्न अधिगम शैलियों को सम्मिलित करता है यह निर्णय लेने के लिए कि कैसे और क्या पढ़ाना है।
- बच्चों को यह समझने के लिए उत्साहित करता है कि उनके कार्य संबंधित निर्णय लेने के लिए क्या मानक रखे जाएंगे।
- पुनर्बलन मिलने के बाद बच्चों को उनका कार्य सुधारने का अवसर प्रदान करता है।
- बच्चों को उनके सहपाठियों के समूह को बल प्रदान करने में सहायता करता है इत्यादि।

(स्रोत : सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन : शिक्षकों के लिए मैनूयल, सी.बी.एस.ई. 2010)

- **संकलनात्मक आकलन** : संकलनात्मक आकलन से अभिप्राय : अधिगम के उस आकलन से है जो एक विशिष्ट समय पर बच्चों के विकास को जोड़ता या उसका सार देता है। यह बच्चों के विकास को जोड़ता या उसका सार देता है। यह बच्चों को अधिगम की किसी एक समय पर आकलन (तथा ग्रेडिंग या रैकिंग) की प्रक्रिया है। परीक्षण प्रक्रियाएं जैसे कोर्स के अंत में, एक अवधि के अंत में या वार्षिक परीक्षाएं संकलनात्मक आकलन के उदाहरण हैं तथा इनमें प्रयोग किए जाने वाले परीक्षणों को संकलनात्मक परीक्षण कहते हैं। जबकि सृजनात्मक परीक्षण सीमित उद्देश्यों या विषय वस्तु पर आधारित होते हैं, संकलनात्मक परीक्षण दिए गई पूरी विषय वस्तु तथा आपेक्षित अधिगम परिणामों के ब्राम्हांड में से किया जाता है। यह निर्धारण के समय

विद्यार्थियों की उपलब्धि का पूर्ण चित्रण प्रदान करता है। शिक्षण–अधिगम परिस्थिति में, संकलनात्मक निर्धारण अक्सर कोर्स के अंत में भी दिए जाते हैं यह जानने के लिए कि विद्यार्थियों ने पूरे कोर्स में से क्या सीखाा है तथा क्या उन्होंने निर्धारित किए गए शैक्षिक मानकों को छुआ है या नहीं।

इनका आयोजन औपचारिक तरीके से किया जाता है तथा क्विज, निबंध, टेस्ट या परियोजना के रूप में हो सकता है संकलनात्मक आकलन के लक्षण बॉक्स 9.4 में दिए गए है :

संकलनात्मक निर्धारण :

- अधिगम निष्पादन का यह निर्धारण कोर्स के अंत में या कोर्स की इकाई के अंत में किया जाता है।
- अक्सर विद्यार्थियों द्वारा कोर्स के अंत में या शैक्षिक वर्ष के अंत में दिया जाता है ताकि जो उन्होंने सीखा है उसका कुल योग दिखा पाएं।
- निर्धारण की सबसे पारम्परिक विधियों का प्रयोग विद्यार्थियों के कार्य के मूल्यांकन हेतु किया जाता है।
- इसके परिणामों का प्रयोग विद्यार्थियों की रैकिंग या ग्रेडिंग के लिए किया जाता है जिनकी आवश्यकता बड़े स्तर पर शैक्षिक दखल तथा उपलब्धि के संदर्भ में विद्यालयों के अंदर तथा अतःविद्यालय तुलना हेतु किया जाता है।

(स्रोत : सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन : शिक्षकों के लिए मैनयूल, सी.बी.एस.ई. 2010)

बाक्स 9.2 संकलनात्मक मूल्यांकन के लक्षण सृजनात्मक एवं संकलनात्मक निर्धारण में अंतर नीचे दी गई तालिका में दिखाए गए हैं –

तालिका 9.2 सृजनात्मक एवं संकलनात्मक निर्धारण में अंतर

सृजनात्मक निर्धारण	संकलनात्मक निर्धारण
यह जानने के लिए किया जाता है कि बच्चों ने क्या सीख लिया है तथा क्या अभी सीखना बाकी है।	एक निर्धारित कोर्स में बच्चे के कुल निष्पादन को जानने के लिए किया जाता है।
शिक्षक अपनी शिक्षण विधियों का निर्धारण कर सकते हैं तथा उनमें बदलाव कर शैक्षिक वर्ष के दौरान बच्चों को उनके पाठ समझने में सहायता कर सकते हैं।	अगर बच्चों का निष्पादन अच्छा नहीं होता तो शिक्षक अगले शैक्षिक सत्र हेतु अपने शिक्षण विधियों में बदलाव कर सकते हैं।
इनमें ग्रेडों का अधिक महत्व नहीं होता।	इनमें ग्रेड विद्यार्थी की राज्यस्तर पर परीक्षा की तैयारी का आधार बनते हैं तथा उन्हें अपने पूर्ण शैक्षिक निष्पादन का पता चलता है।
बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार लचीला हो सकता है।	लचीला नहीं है, सब बच्चों के लिए एक ही परीक्षा होती है, आयोजन का तरीका तथा टेस्ट को स्कोरों को समझने का तरीका एक ही तरह का अपनाया जाता है।
प्रक्रिया द्वारा निर्धारित।	परिणाम द्वारा निर्धारित।

सार में, सृजनात्मक एवं संकलनात्मक आकलनों को अक्सर, अधिगम के संदर्भ में अधिगम के लिए, आकलन तथा अधिगम का आकलन कहा जाता है।

अधिगम का आकलन अक्सर प्रकृति में संकलनात्मक होता है तथा कक्षा, कोर्स, सेमेस्टर या शैक्षिक वर्ष के अंत में होता है तथा अधिगम के परिणाम जानने हेतु किया जाता है तथा इन परिणामों की रिपोर्ट विद्यार्थियों, अभिभावकों एवं प्रबंधकों/प्रशासन अधिकारियों को दी जाती है।

अधिगम हेतु मूल्यांकन, अक्सर प्रकृति में रचनात्मक होता है तथा शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों की प्रगति को मॉनीटर करने की स्वतंत्रता (तथा अपना शिक्षण बच्चों के अनुसार ढालने की) देता है। यह बच्चों को भी अपनी प्रगति की जांच करने में सहायता करता है जब उन्हें अपने सहपाठियों एवं शिक्षक से पुनर्बलन प्राप्त होता है उन्हें दोहराने तथा अपने सोच को बेहतर करने का अवसर भी मिलता है। लेकिन यह याद रखना है कि सृजनात्मक निर्धारण संकलनात्मक निर्धारण को पूर्ण बनाते हैं तथा अधिगम की प्रक्रिया में हर प्रकार के मूल्यांकन की अपनी महत्वता है।

SE-3 एक कारण दीजिए कि संकलनात्मक निर्धारण में अंकों का महत्व है तथा सृजनात्मक निर्धारण में नहीं, क्यों?

9.4 अधिगम एवं आकलन (Learning and assessment)

पिछली इकाइयों में हमें यह ज्ञात हुआ कि हालांकि अधिगम एवं आकलन साथ–साथ चलते हैं, ये दोनों विशिष्ट प्रक्रियाएं हैं। इस संदर्भ में, आइए हम नीचे लिखी परिस्थितियों पर गौर करें :

परिस्थिति 1 : सोहाना ने अपने विद्यालय की कक्षा V को प्रकरण ''स्वतंत्रता के लिए हमारा संघर्ष'' पढ़ाने में छः कलांश लगाए।'' प्रकरण पूरा करने के बाद उसने यह सुनिश्चित करने के लिए कि हर बच्चें ने प्रकरण पर कितना ज्ञानएव ंसमझ हासिल की है, उसने एक टेस्ट लिया।

परिस्थिति 2 : कक्षा IV को भिन्नों के जोड़ एवं घटाने को समझाने में मदद करते हुए रोहन ने पाया कि कई विद्यार्थी दो असंगत (Inproper) भिन्नों के जोड़ को पूरा करने में समर्थ नहीं हैं। उसने संगत भिन्नों के जोड़ के तीन प्रश्न तथा अभिन्न भिन्नों के जोड़ का एक प्रश्न, संगत एवं असंगत भिन्नों के जोड़ के तीन प्रश्न तथा अभिन्न भिन्नों के जोड़ के चार प्रश्न उसने हर बच्चे के परिणाम का विश्लेषण किया तथा पाया कि लगभग 45 प्रतिशत विद्यार्थी को संगत तथा असंगत भिन्नों के जोड़ पर स्पष्टता नहीं थी जिससे उनका दो असंगत भिन्नों के जोड़ में निष्पादन प्रभावित हो रहा था। इसलिए उसने असंगत भिन्नों के जोड़ की समझ के विकास पर ध्यान केंद्रित किया तथा उनके संगत भिन्नों के साथ जोड़ पर जिसके बाद वह असंगत भिन्नों के जोड़ के शिक्षण की ओर बढ़ा।

परिस्थिति 3 : सोहा, जो कि भाषा पढ़ा रही थीं, ने अपने कक्षा VII के विद्यार्थियों से अपने विद्यालय तथा मोहल्ले में आयोजित किए गए स्वतंत्रता दिवस के समारोह पर एक छोटा सा वर्णन लिखने को कहा। उद्देश्य था उनकी पैराग्राफ बना पाने की योग्यता का निर्धारण करना। विद्यार्थियों के सूचना एकत्र करने के लिए जाने से पहले उन्होंने सूचना एकत्र करने के नियम एवं प्रक्रिया पर चर्चा की। उन्होंने यह निर्णय लिया कि यह नियम पाराग्राफ का निर्धारण करने के लिए प्रयोग किए जाएंगे। सोहा ने हर बच्चे को अपने पाराग्राफ को जैसा चाहें वैसा रूप देने की स्वतंत्रता देते हुए निर्धारण के नियमों पर सहमत कर लिया। विभिन्न जगहों पर आयोजित समारोह पर सूचना एकत्र करते हुए उन्हें समारोह आयोजन में समानताओं एवं असमानताओं का आलोकन करना है। सूचना एकत्र एवं संगठित करते हुए हर चरण पर हर विद्यार्थी निर्धारित नियमों के संदर्भ में अपनी प्रक्रिया में सुधार या परिवर्तन करेगा। उन्होंने इस दिवस के बारे में अपने विचार तथा लोगों के उत्साह के बारे में भी लिखा। परियोजना पूर्ण करने के बाद वे कक्षा में सोहा के साथ इकट्ठे बैठे तथा अपनी रिपोर्ट का उच्चारण किया। हर वर्णन के लिए उन्होंने ग्रेड देने का प्रयास किया जो कि निर्धारण हेतु निर्धारित नियमों पर आधारित थे। निर्धारण के बाद हर बच्चे को निर्धारण के अवलोकन को आधार बना कर अपने वर्णन को सुधारने के लिए कहा गया।

क्रियाकलाप
थोड़ी देर के लिए सोचें तथा ऊपर दी गई तीनों परिस्थितियों की प्रक्रिया एवं उद्देश्यों में समानताओं एवं असमानताओं की सूची बनाएं।

क्या ऊपर दी गई तीन परिस्थितियों की प्रक्रिया एवं उद्देश्यों में कोई अंतर है?

हां, हम पहली परिस्थिति से काफी सीमा तक परिचित हैं। एक इकाई या प्रकरण के पूर्ण होने के बाद, हमारी हमेशा यह इच्छा होती है कि उस प्रकरण पर ज्ञान एवं समझ की प्राप्ति की मात्रा जांच लें तथा हर व्यक्ति की प्राप्ति के वांछित स्तर से तुलना कर लें। दूसरे शब्दों में, हर अधिगम के परिणाम का निर्धारण करते हैं। इस प्रक्रिया को ''अधिगम का निर्धारण'' कहा जाता है तथा यह अक्सर प्रकरण/पाठ की इकाई के अंत में किया जाता है। दूसरी परिस्थिति में, रोहन बच्चों के निष्पादन का निर्धारण उस समय कर रहा था जब शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया चल रही थी। उसने निर्धारण के परिणामों को अधिगम के सुधार तथा अपने शिक्षण की प्रक्रिया को सुधारने के लिए किया। यह एक प्रकार का सृजनात्मक निर्धारण है जिसकी चर्चा पूर्व इकाईयों में की जा चुकी है तथा इसे 'अधिगम हेतु निर्धारण' कहा जाता है।

सोहा के विद्यार्थियों ने निर्धारण के नियमों पर निर्णय लिया तथा अधिगम की प्रक्रिया में उनका संदर्भ रखा जिसमें उन्हें अपने अधिगम की प्रक्रिया को सही दिशा में रखने में सहायता मिली तथा अपने अधिगम में सुधार एवं परिवर्तन करने में भी। संक्षिप्त में, विद्यार्थी अधिगम की प्रक्रिया हेतु निर्धारण के नियमों का प्रयोग कर रहे थे। इसलिए इसे कहा जाता है 'निर्धारण अधिगम जैसे'।

जबकि हम अधिगम के निर्धारण से सामान्यतः परिचित है। आइए हम दूसरी दो प्रक्रियाओं को समझें जो कि अधिगम–केंद्रित हैं।

9.4.1 अधिगम का आकलन (Assessment of learning)

अधिगम के निर्धारण से अभिप्राय दो प्रकार के निर्धारण से है – मौखिक, निष्पादन एवं लिखित, या इसमें से दो अधिक विधियों का मिश्रण जिसे किसी शिक्षण इकाई या सत्र के अंत में आयोजित किया जाता है। इस प्रकार के निर्धारण का प्रयोग करके आप अपने विद्यार्थियों की योग्यता की जांच कर सकते हैं – अवधारणाओं या अनुभवों का संश्लेषण एवं निष्पादन करवा कर जो कि उन्होंने शिक्षण सत्र में धारण किए हैं। अधिगम के निर्धारण के परिणाम को हर स्थान पर विद्यार्थियों के अधिगम की बढ़त की जांच के लिए महत्वपूर्ण सूचक माना जाता है। इनका प्रयोग विभिन्न तुलनाएं करने के लिए भी किया जाता है जैसे कि विभिन्न विषयों में विद्यार्थी का निष्पाद, कक्षा में विद्यार्थियों के बीच तुलना, विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों के बीच तुलना इत्यादि। परिणामों को अगले सत्र या शैक्षिक वर्ष हेतु पाठ्यचर्यीय क्रियाओं की योजना बनाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। आगे, अधिगम के निर्धारण से संबंधित हर व्यक्ति परिचित है तथा जिनके बारे में आप पूर्व इकाइयों में आप पहले ही पढ़ चुके हैं।

उपकरण एवं युक्तियाँ : अधिगम के निर्धारण के लिए निर्धारित किए जाने वाले कार्य की प्रकृति पर आधारित आपको भांति भांति के यंत्र एवं विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। जैसा कि पूर्व इकाईयों में कहा गया है कि आपको यंत्रों एवं विधियों का चयन, उद्देश्य सहित, सूचना की वांछित मात्रा एवं किस्म के अनुसार करना है। अधिगम के निर्धारण के लिए प्रयोग किए जाने वाले कुछ उपकरण हैं – विभिन्न प्रकार के प्रश्नों वाले टेस्ट, एनैक्डाटल रिकॉर्ड (विद्यार्थी) के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन जिनका संबंध निर्धारित किए जाने वाले कार्य या प्रक्रिया से है) रेटिंग स्केल, चैक लिस्ट इत्यादि।

इस निर्धारण में विधियां हैं अवलोकन, विद्यार्थियों के (मौखिक एवं लिखित) उत्तरों का विश्लेषण, विद्यार्थी के कार्य का विश्लेषण, विद्यार्थियों के साथ चर्चा

अपेक्षित दायित्व : एक शिक्षक होने के नाते, आपको यह अहसास करना होगा कि अधिगम के निर्धारण का पूरा दायित्व एवं उसका अनुवर्तन आप पर है। इसलिए कई मुद्दों पर आपका ध्यान आवश्यक है :

- आपको यह सुनिश्चित करना है कि निर्धारण कार्य या दत्त कार्य के उद्देश्य विद्यार्थियों को स्पष्टता से समझ आ गए हों।
- आपको कार्यों की पूर्ति के लिए उपयुक्त समय सीमा निर्धारण करना है।
- आपको कार्य पूरा करने में कुछ विद्यार्थियों के सामने आने वाली चुनौतियों के बारे में संवेदनशील होने की आवश्यकता है।
- आपको अपने निर्णय लेने के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रमाण एकत्र करने होंगे।
- जो अंक/ग्रेड आप विद्यार्थियों को देते हो उसके पीछे आपके पास मजबूत तर्क संगति होनी चाहिए।

क्रियाकलाप

आप अपने विद्यालय में 'अधिगम के निर्धारण' की प्रक्रियाओं से परिचित हैं जिनका ध्यान आपको अधिगम के निर्धारण को वैद्य एवं न्यायपूर्ण सुनिश्चित करने हेतु रखना है।

- आपको पर्याप्त मात्रा में प्रमाण एकत्र करने होंगे (लिखित, मौखिक तथा/या निष्पादन के) ताकि आपके लिए, अपनी ओर से विद्यार्थी की उपलब्धि का सही चित्रण देना संभव हो। इस उद्देश्य के लिए केवल लिखित परीक्षण (या परीक्षा के परिणामों) के परिणाम पर निर्भर होना पर्याप्त नहीं होगा।
- आपको निर्धारण की कई विधियों का प्रयोग प्रमाण एकत्र करने हेतु करना होगा ताकि सभी विद्यार्थी अपने अधिगम का निष्पादन कर पाएं। यदि आप केवल एक लिखित परीक्षण का आयोजन करते हैं तथा इसे अधिगम के निर्धारण हेतु प्रयोग करते हैं तो यह काफी हद तक संभावना है कि काफी विद्यार्थियों को कुछ प्रश्नों के उत्तर देने में असुविधा हुई होगी। इस प्रकार उन्हें निम्न अंक/ग्रेड मिले जबकि दूसरे प्रकार के कार्य में यह संभावना है कि वे बेहतर कर सकते थे।
- निर्धारण के कार्य/यंत्र के भीतर ही विद्यार्थियों के लिए उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार पर्याप्त विकल्प होने चाहिए।
- यदि आपने अपने विद्यार्थियों के अधिगम के बारे में एक विशेष विषय वस्तु की इकाई पर पर्याप्त आंकड़े एकत्र कर भी लिए हैं तब भी आपको अधिगम के निर्धारण के लिए सबसे सुसंगत तथा सबसे बाद में लिए गए या नए आंकड़ों का प्रयोग करना होगा।
- किसी प्रकरण/क्षेत्र के अधिगम के निर्धारण शुरू करने से पहले आपको यह सुनिश्चित करना होगा कि हरेक विद्यार्थी को उपयुक्त पुनर्निवेशन के साथ अभ्यास करने के तथा अभ्यास के दौरान सुधार के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान किए जा चुके हैं।
- आपको विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं एवं निष्पादन को अंक या ग्रेड देते हुए बहुत अधिक सावधानी रखनी है ताकि यह कार्य बिल्कुल निष्पक्ष हो। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आपको अपने व्यावसायिक न्यायसंगता का प्रयोग कर अंक या ग्रेड देने हैं ताकि यदि आवश्यकता पड़े तो आप उनको न्यायसंगता प्रस्तुत कर पाएं।

- यदि आपको कुछ विद्यार्थियों के परिणाम सबसे बाद वाले निर्धारण में असंगत या अस्थिर लगे तो उन्हें सावधानीपूर्वक दुबारा देखें तथा यदि आवश्यक लगे तो उन विद्यार्थियों के घर तथा विद्यालय की अधिगम की परिस्थितियों की जांच करें ताकि ऐसे अस्थिर परिणामों के वास्तविक कारणों का पता लगाया जा सके।

E-1. निम्नलिखित में से कौन सा अधिगम के निर्धारण का उदाहरण नहीं है?

अ. वार्षिक परीक्षा

ब. गृह कार्य का निर्धारण

स. छात्रवृत्ति की परीक्षा

E-2. क्या प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों को अगली कक्षा में कक्षोन्नति के लिए वार्षिक परीक्षा के अंकों / ग्रेडों का प्रयोग किया जा सकता है?

9.4.2 अधिगम हेतु आकलन (Assessment for learning)

अधिगम के उस निर्धारण के बारे में सोचिए जिसमें निर्धारण के परिणाम हर विषय वस्तु की इकाई / प्रकरण के अंत में उपलब्ध हैं तथा बांटे जाते हैं। क्या इकाई या टर्म के अंत में पुनर्निवेशन मिलने पर उस पर कार्य करना, कार्य करने के काफी देर हो चुकी है, माना जाएगा। अगर विद्यार्थी को अपने निष्पादन पर पुनर्निवेशन सही समय पर मिल जाए, इकाई / टर्म के अंत में नहीं तो शायद वो अपने अधिगम तब प्रभावशाली होता है जब उसे विशेषतौर पर विद्यार्थियों के अधिगम के सुधार के लिए रूपांतरित किया जाता है, इसके लिए अधिगम को समय समय पर अनौपचारिक रूप से करना होगा तथा सही समय पर पुनर्निवेशन भी करना होगा।

इस प्रकार के आकलन को अधिगम हेतु आकलन कहा जाता है।

अधिगम हेतु निर्धारण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- हर बच्चे को यह ज्ञात करवाना कि वह क्या कर रहा है, यह समझाना कि उसे सुधार के लिए क्या करने की आवश्यकता है तथा वहां तक कैसे पहुंचना है। बच्चे को बल प्रदान किया जाता है, उसे सक्रिय अध्येता बनने के लिए प्रेरित किया जाता है ताकि अपने अधिगम में लगातार सुधार कर पाए।
- हर शिक्षक को इस योग्य बनाना कि विद्यार्थियों की उपलब्धि के बारे में भली–भांति निर्णय ले पाए, प्रगति की अवधारणाओं एवं नियमों को समझ पाए, तथा निर्धारण के परिणामों का प्रयोग कैसे करना है हर विद्यार्थी के अधिगम के सुधार हेतु यह जान पाए, विशेषतौर पर जो विद्यार्थी अपनी क्षमता को पूरा नहीं कर पाते।
- घर विद्यालय में संगठित एवं सुनियोजित निर्धारण यंत्रों का होना ताकि विद्यार्थियों का नियमित, उपयोगी, प्रबंध योग्य तथा सही निर्धारण हो पाए तथा निर्धारण के परिणामों का उपयोग बच्चों के अधिगम की प्रगति की जांच के लिए किया जा सके।
- हर मां–बाप या अभिभावक को बताना कि उनका बच्चा अधिगम में कैसा चल रहा है तथा उन्हें सुधार के लिए क्या करने की आवश्यकता है, तथा वह बच्चे तथा शिक्षक की क्या मदद कर सकते हैं। अधिगम हेतु निर्धारण के दो चरण होते हैं पहला या निदानात्मक निर्धारण तथा सृजनात्मक निर्धारण।
- **निदानात्मक आकलन :** इकाई के अधिगम के शुरू होने से पहले यह जानने के लिए किया जाता है कि विद्यार्थी को प्रकरण के बारे में क्या ज्ञात है, क्या नहीं। इस प्रकार का निर्धारण यह जानने में सहायता करता है कि आपके विद्यार्थी अधिगम के किस स्तर पर हैं तथा विद्यार्थियों के अधिगम स्तर के अनुसार अधिगम हेतु क्या विधियां अपनाई जानी चाहिए ताकि उनके

अधिगम स्तर में लगातार सुधार हो। उदाहरण के तौर पर, यदि आप कक्षा VI में भारत के विभिन्न राज्यों के बारे में पढ़ाने जा रहे हैं तो आपको यह जानने की आवश्यकता है कि बच्चों को एटलस का भली भांति प्रयोग करना आता है या नहीं। यदि आप यह पाते हैं कि कक्षा के अधिकतर विद्यार्थियों को एटलस का प्रयोग करना आता है तो आप उन्हें इस कार्य में लगाकर, उन बच्चों के छोटे समूह के साथ कार्य कर सकते हैं जिन्हें यह कार्य करना नहीं आता।

- **सृजनात्मक आकलन :** वह निर्धारण है जिसके द्वारा आप अधिगम प्रक्रिया के दौरान जब कक्षा चल रही है तथा अध्ययन की एक इकाई पर आगे प्रगति कर रही है, आंकड़े एकत्र कर सकते हैं, बच्चों के ज्ञान तथा कौशलों को सुनिश्चित करने के लिए, जिनमें अधिगम का मार्गदर्शन करने के लिए ताकि बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार अपनी शिक्षण विधियों में बदलाव के लिए भी कर सकते हैं। एटलस के प्रयोग का उदाहरण लेते हुए, आप बच्चों ने जो कार्य एटलस का प्रयोग कर संपन्न किया है उस पर पुनर्निवेशन प्रदान कर सकते हैं तथा अपने अधिगम को दुबारा से व्यवस्थित करने, उस पर दुबारा विचार करने तथा सुस्पष्ट करने के लिए विचार पेश कर सकते हैं।

- सृजनात्मक निर्धारण के द्वारा यदि आप पाते हैं कि बहुत से विद्यार्थियों को जो पढ़ाया गया था समझ में नहीं आया, तो आपको अगला पाठ पढ़ाने से पहले अलग या वैकल्पणीय विधियों का प्रयोग अवधारणाओं तथा/या कौशलों को पढ़ाने के लिए करना होगा।

अधिगम हेतु निर्धारण की निम्नलिखित विशेषताएँ है :

- यह हरेक अध्येता के लिए उनकी शक्ति तथा निर्णयशील नहीं है इसलिए मूल्यांकन नहीं करता।
- यह प्रकृति में व्यक्तिनिष्ठ है तथा निर्णयशील नहीं है इसलिए मूल्यांकन नहीं करता।
- उच्च गुणवत्ता वाले पुनर्निवेशन द्वारा, यह विद्यार्थियों को इस बात की सूचना प्रदान करता है कि उन्होंने क्या बहुत अच्छा किया है, उन्हें कहां कठिनाई का सामना करना पड़ा तथा उन्हें अपना कार्य और बेहतर करने के लिए कुछ अलग क्या करना होगा।
- क्योंकि निरंतर चलते रहने वाली अधिगम पर पुनः विचार करने तथा सुधार हेतु विशिष्ट क्रियाएं करने के लिए एक कारण बनता है।
- यह विद्यार्थियों से गलतियों की संभावना रखता है तथा उन्हें गलतियों की जांच कर अपने अधिगम को सुधारने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है।
- यह विद्यार्थियों को स्वयं तथा सहपाठियों की संरचित परीक्षा में सम्मिलित करता है।
- इसकी योजना इस प्रकार बनाकर इसका उपयोग किया जाता है कि विद्यार्थियों के अधिगम को बल प्रदान किया जाता है ताकि अंत में वे अधिगम के निर्धारण में बेहतर निष्पादन कर पाएं जिसे ग्रेडिंग तथा रिपोर्टिंग के उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जाएगा।

यू.के. रिफार्म ग्रुप (1999) ने अधिगम के निर्धारण हेतु 5 बड़े नियमों की पहचान की है जो कि निम्नलिखित है :

1. विद्यार्थियों को प्रभावशाली पुनर्निवेशन प्रदान करना।
2. अपने ही अधिगम में विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी।
3. निर्धारण के परिणामों को मद्दे नजर रखते हुए शिक्षण को अनुकूल बनाना।
4. निर्धारण की विद्यार्थियों को प्रेरित करने तथा उनके आत्म सम्मान पर प्रभाव की पहचान करना इन दोनों के उनके अधिगम पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ते हैं।

5. विद्यार्थियों को अपना निर्धारण स्वयं करने की आवश्यकता तथा यह समझना कि वे कैसे बेहतर हो सकते हैं।

अधिगम हेतु आकलन की पद्धतियाँ एवं विधियाँ

कक्षा परिस्थिति में सभी विद्यार्थियों के अधिगम के निर्धारण की तकनीक के बारे में फैसला लेते हुए यह ध्यान में रखना है कि चुनी गई विधि किस सीमा तक सभी बच्चों की प्रगति का निर्धारण करने के योग्य आपको बनाएगी तथा बच्चों को सृजनात्मक पुनर्निवेशन प्रदान करेगी तथा आपको अपने शिक्षण पर भी पुनर्निवेशन प्राप्त करने में सहायता करेगी। इसे करने की मुख्य चार पद्धतियां हैं :

→ शिक्षक चलित आकलन (कई प्रकार की विधियों का प्रयोग करके जैसे लिखित तथा मौखिक परीक्षण, विद्यार्थियों के साथ अतःक्रियाएं, दत्त कार्य, बच्चों की क्रियाओं का अवलोकन इत्यादि)।

→ अध्येता का स्वयं आकलन (अपने निष्पादन पर स्वयं का पुर्नविचार तथा औरों पर निर्णय)

→ सहपाठियों द्वारा आकलन (अध्येता की प्रक्रियाओं एवं निष्पादन पर सहपाठियों द्वारा निर्धारण)।

→ कम्प्यूटर सह आकलन (खास तौर पर इस उद्देश्य के लिए साफ्टवेयर द्वारा)

अधिगम हेतु आकलन की योजना बनाना : अधिगम हेतु निर्धारण की योजना कक्षा शिक्षण–अधिगम के लिए तैयार की गई योजना का भाग होना चाहिए क्योंकि इस प्रकार का निर्धारण शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के साथ–साथ चलने वाला भाग है। अधिगम हेतु प्रभावशाली निर्धारण हेतु आपको शिक्षण अधिगम क्रियाओं को तैयार करने के लिए निम्नलिखित पक्षों का ध्यान रखना होगा :

- कक्षा में निष्पादित अवधारणाओं/इकाई/प्रकरण के अधिगम उद्देश्यों के उपयुक्त निर्धारण के उद्देश्य सुनिश्चित करें।
- जब अधिगम प्रभावशाली तरीके से हो रहा हो तो कक्षा का साफ चित्रण होना चाहिए जैसे : शब्द, चित्र, रेखाचित्र तथा/या बच्चों के कार्यों का कक्षा में प्रदर्शन किया गया हो।
- विद्यार्थियों को उनके सहपाठियों द्वारा लगातार पुनर्निवेशन दिया जा रहा है।
- निर्धारण विधि में पर्याप्त लचक हो : अगर आपके द्वारा योजना बनाई गई विधि वास्तविक कक्षा परिस्थिति में कार्यांवित नहीं हो पाती तो आपके पास वैकल्पिनिक विधियां हमेशा तैयार होनी चाहिए।
- हमेशा निदानात्मक निर्धारण से शुरू करें, शायद अनौपचारिक रूप से 'जानें–चाहें–सीखें' चार्ट को तैयार करके। इस चार्ट को अक्सर तीन शीर्षकों के गिर्द संकलित किया जाता है। जो हमें पहले से ज्ञात है, जो हम सीखना चाहते हैं तथा जो हमने सीखा।
- आपके तथा अन्य विद्यार्थियों द्वारा समय पर पुनर्निवेशन करना तथा विद्यार्थियों के पुनर्निवेशन में दिए गए मार्गदर्शन के अनुसार सुधार सुनिश्चित करें। बच्चों को इस बात के संकेत दें कि पुनर्निवेशन किस प्रकार देना तथा प्राप्त करना है।
- निर्धारण की निरंतरता तथा अधिगम की प्रगति की जांच हेतु ऐसे जांच तंत्र का विकास करें जो आपके लिए कार्यवित हो।

अधिगम हेतु आकलन में पुनर्निवेशन :

अधिगम हेतु निर्धारण का मुख्य उद्देश्य शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों को विद्यार्थी की अधिगम उद्देश्यों की ओर प्रगति पर पुनर्निवेशन प्रदान करना है। इस पुनर्निवेशन का प्रयोग शिक्षक को शिक्षण को दोहराने एवं

आगे के विकास करने के लिए करना चाहिए। अधिगम हेतु निर्धारण में पुनर्निवेशन की भूमिका आप नीचे दी गई आकृति 9.2 में देख सकते हैं।

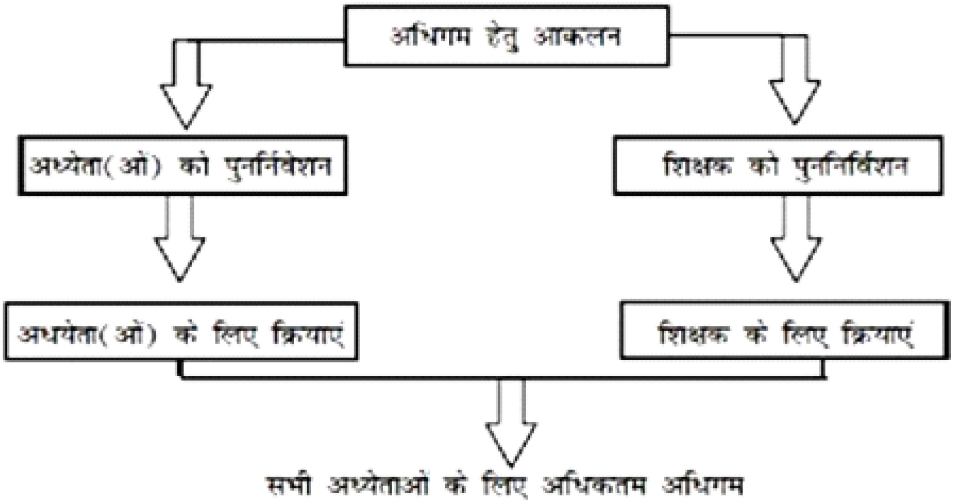

आकृति 9.2 : अधिगम हेतु निर्धारण में पुनर्निवेशन

मौखिक एवं लिखित सृजनात्मक पुनर्निवेशन देना अधिगम हेतु निर्धारण अति महत्वपूर्ण भाग है। आप कई प्रकार की परिस्थितियों पर पुनर्निवेशन प्रदान कर सकते हैं या तो उसी समय अनौपचारिक उत्तर द्वारा या औपचारिक रूप से योजनाबद्ध टेस्टों या दत्त कार्यों द्वारा विद्यार्थियों को पुनर्निवेशन देते हुए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है :

लिखित पुनर्निवेशन देते समय :

- पहले लिखे हुए कार्य की विषय वस्तु तथा संदेश पर प्रतिक्रिया दे, केवल सतह पर दिखने वाली गलतियों जैसे वर्तनी या विरामचिन्हों की गलतियों पर नहीं।
- एकदम गलतियों पर न आ जाएं, पहले प्रशंसा करें।
- यदि लिखावट में कमी है तो एक या दो विशिष्ट क्षेत्रों की ओर ध्यान आकर्षित करें। पूरे कार्य को लाल स्याही से सही या गलत के चिन्हों से न भरें।
- विशिष्ट बने–विद्यार्थी को यह संकेत दें कि उसे दर्शाई गई गलती को सुधारने के लिए क्या करना चाहिए।
- विद्यार्थी को सुधार कार्य के लिए प्रोत्साहित करें केवल सही उत्तर दें, वर्तनी इत्यादि लिखकर न दें।

मौखिक पुनर्निवेशन देते हुए :

→ सकारात्मकता पर जोर दें–जो विद्यार्थी ने अच्छा किया है उस पर हमेशा विशिष्ट पुनर्निवेशन दें।

→ जो उपलब्धि प्राप्त हुई है उसकी खुशी मनाएं तथा जिसमें सुधार की आवश्यकता है तथा सुधार कैसे किया जाए इस पर स्पष्टता प्रदान करें।

→ विद्यार्थियों के विचार जाने तथा उनकी भागीदारी को मूल्यवान समझें इससे उन्हें अपने कार्य का निर्धारण बेहतर ढंग से करने में सहायता प्राप्त होगी जो कि उन्हें स्वतंत्र अध्येता बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।

→ आप विद्यार्थियों को ये जानने के लिए भी आमंत्रित करें कि आप क्या अच्छा करते हैं। पुनर्निवेशन एक तरफा प्रक्रिया नहीं है।

→ प्रश्न सावधानीपूर्वक बनाएं। खुले सिरे वाले प्रश्नों का प्रयोग करें तथा एक समय पर एक से अधिक प्रश्न न पूछें ।

→ प्रेरकों का प्रयोग करें जैसे कि 'क्या आप उस बारे में और कुछ कहना चाहेंगे?'

→ एक प्रश्न करने के बाद या उत्तर पाने के बाद कुछ पलों के लिए विराम लें, विद्यार्थी को सावधानीपूर्वक सोचने के लिए बढ़ावा देने हेतु या जो कहा है उसमें कुछ और जोड़ने के लिए।

→ सामान्यीकरण न करें जैसे कि 'बहुत सी गलतियाँ हैं। इसके बजाए विकास के विशिष्ट क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करें, जिनकी चर्चा आप विद्यार्थियों के साथ कर सकते हैं।

→ उन चीजों पर ध्यान केंद्रित करें जिन्हें हर विद्यार्थी बदल सकता है तथा उन्हें एकदम बहुत से पुनर्निवेशन से न लादें।

→ यदि अपने समूह में से एक व्यक्ति को पुनर्निवेशन देना है तो आपको संवेदनशील होना पड़ेगा कि वो औरों के सुनने पर नीचा तो नहीं महसूस करेगा।

→ इकट्ठे आगे बढ़ने के रास्ते तलाशिए : विचारों को बांटे तथा समाधानों को ढूंढें इसके बजाए कि आप हमेशा अपने सुझाव देते रहें।

→ इस पर सहमत हों कि आप दोनों परिणाम के साथ क्या करेंगे। इसमें नए उद्देश्यों पर समझौता या अधिगम अवसरों के लिए योजना बनाना सम्मिलित हो सकता है।

→ व्यक्ति या समूह परिस्थितियों के अनुसार अपनी पद्धति को रूपांतरित करें।

कई बार हम कक्षा प्रक्रिया के दौरान या जब विद्यार्थी गतिविधियों में लगे होते हैं मौखिक पुनर्निवेशन भी देते हैं। यह शरीर की कई प्रकार की गतिविधियों या संकेतों द्वारा प्रदान किया जाता है जैसे कि किसी विद्यार्थी की आंखों में देखना, अंगुली से इशारा कर सहमति या असहमति दिखाना या सिर हिलाना, या सहमति में मुस्कुराना।

प्रभावशाली पुनर्निवेशन के लिए, चाहे वह मौखिक या लिखित रूप से विद्यार्थियों के निष्पादन पर दिया गया हो आपको निम्नलिखित बिंदुओं का ध्यान रखना होगा।

→ बिना देरी किए पुनर्निवेशन दिया जाना चाहिए नही ंतो पुनर्निवेशन अपनी प्रासंगिकता खो सकता है।

→ सही–सही तथा वर्णित कथन दें केवल अंक नहीं इस इच्छा के साथ कि विद्यार्थी स्वतंत्र अधिगम की आदतों का विकास कर पाएं।

→ विद्यार्थी की शक्तियों एवं कमियों पर कथन सम्मिलित करें तथा कमियों में सुधार कैसे किया जाए उसका मार्गदर्शन करें।

→ एक या दो अधिगम उद्देश्य प्रदान करें जो विद्यार्थियों द्वारा अगले चरण में प्राप्त किए जा सके।

अधिगम हेतु निर्धारण पर आधारित समयबद्ध पुनर्निवेशन के सकारात्मक प्रभाव की पुष्टि कई अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा की गई है। हैटी (2002) ने यह शोध द्वारा प्रमाणित किया कि अधिगम में गलतियों पर पुनर्निवेशन तथा विद्यार्थी से उनका सुधार करवाना तथा भविष्य के कार्य को सुधारने की विधियों को पहचानने का सीधा संबंध उपलब्धि की दर में महत्वपूर्ण सुधार से है।

सफलता की संस्कृति के निर्माण हेतु, जहां हर विद्यार्थी यह विश्वास रखता है कि वे उपलब्धि हासिल कर सकते हैं, एक शिक्षक होने के नाते आपको यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि विद्यार्थियों को यह स्पष्ट हो :

→ वे क्या और क्यों कर रहे हैं?

→ इसका निर्धारण कैसे होगा?

→ वे भली भांति क्या कर रहे हैं? तथा गलत क्या है तथा उसे ठीक करने के लिए क्या करना आवश्यक है।

जैसा कि ब्लैक तथा विलियम (1999) ने कहा है, योग्यता एवं प्रतिस्पर्धा का संदर्भ न दें, न ही औरों के साथ तुलना करें। बटलर (1988) ने कहा है कि , पुनर्निवेशन जिसमें सृजनात्मक टिप्पणियां दी जाएं, से निष्पादन बेहतर होता है (33 प्रतिशत तक)। ग्रेड तथा अंक विद्यार्थियों विशेषतौर पर निम्न उपलब्धि वाले विद्यार्थियों के निष्पादन पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

E-3 अधिगम हेतु निर्धारण के कोई दो उपयोग बताएँ।

E-4 गृह कार्य के निर्धारण पर पुनर्निवेशन देते हुए सबसे अधिक उपयुक्त विधि क्या है?

अ. गलतियों को लाल रंग के क्रास लगाकर दिखाकर ठीक करना।

ब. लिखित रूप में विशिष्ट टिप्पणियां देना।

स. मौखिक चर्चा करना।

E-5 क्या अधिगम हेतु निर्धारण एक प्रकार का सृजनात्मक निर्धारण है? अपने उत्तर के साथ कारण भी बताएँ।

9.4.3 अधिगम की तरह आकलन (Assessment as learning)

जब हम अपने या दूसरे के निष्पादन का निर्धारण करते हुए नए अनुभव एकत्रित करते हों तो अधिगम एवं निर्धारण की प्रक्रियाओं में अंतर की रेखा खो जाती है। ऐसे पलों में निर्धारण अधिगम की प्रक्रिया बन जाता है।

परिस्थिति–4 : कक्षा VII का विद्यार्थी अनंत अपने पोर्टफोलियों में अपने सारे कार्यों को एकत्र कर रहा था शिक्षक तथा अपने सहपाठियों द्वारा निर्धारण के लिए प्रदर्शित करने के लिए। सही तरीके से कार्य को एकत्र एवं व्यवस्थित करके लगाने के दौरान उसने पोर्टफोलियों के निर्धारण के सूचकों की सूची बनाने का प्रयास किया। उसने अपने पूर्व अनुभवों को दुबारा से याद किया पाया कि उसने अपनी एकत्रित सामग्री में किसी मॉडल या मानचित्र को सम्मिलित नहीं किया है तथा उसने सोचा कि इन वस्तुओं के बिना एकत्रित सामग्री अधूरी रहेगी। कुछ मॉडल तथा अपने जिले के मानचित्र बनाने के बाद उसने अपनी सामग्री को फिर से व्यवस्थित करना चाहा। कई प्रकार की सामग्री थी जैसे कि दो निबंध, एक विद्यालय की पत्रिका में छपी हुई कहानी, पांच गणित की पहेलियां जिन्हें अलग–अलग स्रोतों से लिया गया था, ''सभी के लिए शिक्षा'' पर बनाए गए चार नारे, विभिन्न ठोस वस्तुओं के कागज से बनाए गए नमूने, उसके जिले का मानचित्र, रंग बिरंगे कंकड़ों का संचयन वह इस बात को लेकर विचारशील था कि इस सामग्री को कैसे व्यवथित किया जाए

जिससे कि उसके शिक्षक तथा सहपाठियों का ध्यान आकर्षित किया जा सके जो कि उसके पोर्टफोलियों का निर्धारण करने वाले हैं। उसने एक योजना बनाई। उसने एक कहानी की श्रृंखला बनाई तथा कहानी की श्रृंखला को दर्शाने के लिए कुछ अतिरिक्ति पोस्टर बनाए। श्रृंखला के बीच–बीच में वस्तुएं इस प्रकार सजाई कि कहानि देखते हुए देखने वाला अनंत के किसी भी कार्य या सामग्री को अनदेखा नहीं कर सकता न ही यह कह सकता है कि पूर्ण संचयन में कोई वस्तु संबंधित नहीं थी।

निम्नलिखित परिस्थति को देखें।

आइए इस पर पुनर्विचार करें कि अनंत क्या कर रहा था :

→ वो निर्धारण के लिए संकलित की गई वस्तुओं को व्यवस्थित करने का प्रयास कर रहा था ।

→ उसने निर्धारण के सूचकों की सूची बनाई (अधिगम का परिणाम)

→ उसने कुछ नई सामग्री की रचना की, जो कि उसने सोचा कि निर्धारण हेतु आवश्यक है।

→ उसने पुनः सामग्री को व्यवस्थित करने का प्रयास किया तथा पाया कि वस्तुएं काफी असंगत हैं।

→ उसने अर्थपूर्ण व्यवस्था करने का मार्ग सोचा।

→ उसने कहानी की एक श्रृंखला सोची तथा सामग्री की सुव्यवस्था को पूर्ण किया।

यह सब करते हुए अनंत निर्धारण के एक कार्यक्रम की तैयारी कर रहा था तथा साथ ही साथ अपने आपको तथा अपनी सामग्री का निर्धारण कर रहा था–उसकी पर्याप्तता, उपयुक्तता तथा अर्थपूर्णता, जहां तक कि अधिगम के परिणामों निर्धारण के सूचकों का सवाल था। क्या आप सोचते हैं कि जब वो निर्धारण कर रहा था तो उसका अधिगम भी हो रहा था, तो क्या निर्धारण अपने आप में उसके लिए अधिगम की घटना नहीं थी?

अधिगम की तरह निर्धारण तुलनात्मक तौर पर निर्धारण के तीनों वर्गो में से सबसे कठिन वर्ग है। लेकिन फिर भी विद्यार्थी के लिए यह कौशल सीखना अति महत्वपूर्ण है तथा अधिगम में स्वतंत्र प्रगति हेतु अतिआवश्यक है। अधिगम के निर्धारण की अन्य पद्धतियों के मुकाबले अधिगम की तरह निर्धारण, पूर्ण रूप से विद्यार्थी द्वारा नियंत्रित होता है। यह निर्धारण एवं अधिगम के बीच विद्यार्थी की एक महत्वपूर्ण जुड़ाव के रूप में भूमिका पर जोर देता है।

अधिगम के रूप में निर्धारण केवल तब शुरू होता है जब विद्यार्थी शिक्षण क उद्देश्यों तथा निष्पादन के नियमों से अवगत हो जाते हैं तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयासरत हो जाते हैं इस प्रक्रिया में वे उद्देश्य के निर्धारण, अपनी प्रगति की जांच तथा परिणामों पर पुनर्विचार की प्रक्रिया में सम्मिलित होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि विद्यार्थी निर्धारण की सारी जिम्मेदारी, अधिगम में लगे हुए ले लेते हैं। वे विद्यार्थी जो कि अपने सोचने की प्रक्रिया का विश्लेषण करने के योग्य हैं (जैसे कि अपने जानने की प्रक्रिया या समझ से परे की प्रक्रिया को जानना) वे निर्धारण को अधिगम के लिए प्रभावशाली ढंग से प्रयोग कर सकते हैं जो कि अधिगम की पूरी प्रक्रिया के दौरान चलता रहता है। लोरना एम. अर्ल (2006) के अनुसार अधिगम के रूप में निर्धारण को इस विश्वास पर आधारित है कि विद्यार्थी अपने अधिगम एवं निर्णय लेने में अनुकूलन, लचक एवं स्वतंत्रता के योग्य हैं।

अधिगम की तरह निर्धारण विद्यार्थी के लिए अपने अधिगम पर विचार करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करता है, मैटा कोगनिशन की प्रक्रिया द्वारा। इसे ब्रेन सटोर्मिंग, समूह चर्चा, इकट्ठे सीखने की परिस्थितियों तथा सहपाठियों एवं स्वयं मूल्यांकन द्वारा बढ़ावा दिया जा सकता है। एक शिक्षक होने के नाते आप बेहतरीन चीज यह कर सकते हैं कि अपने विद्यार्थियों को स्वयं तथा सहपाठियों द्वारा निर्धारण के लिए प्रेरित करें जो कि बदले में उन्हें अधिगम के रूप में निर्धारण के लिए सहायता करेगा। स्वयं निर्धारण विद्यार्थियों को सहायता करता है।

→ अपने अधिगम पर विचार करने में।

→ अपनी शक्तियों को पहचानने में तथा उन्हें जहां सुधार की आवश्यकता है उन क्षेत्रों को पहचानने में उन स्पष्ट वर्गों का प्रयोग करके जो उनकी आशाओं तथा उपलब्धि के स्तर के अनुकूल हैं।

→ उद्देश्यों को निर्धारित करने तथा अधिगम के अगले चरणों को पहचानने में।

→ मैटा–कोग्निशन के कौशल विकसित करने में।

→ स्वतंत्र एवं स्वय–मार्ग दर्शित विद्यार्थी बनने में।

→ अपने पोर्टफोलियों के लिए कार्य का चयन करने के योग्य बनाने में ताकि समय के अनुसार अपनी प्रगति तथा बेहतरीन प्रयासों का प्रदर्शन कर सकें।

सहपाठियों द्वारा आकलन विद्यार्थियों की सहायता करता है :

→ सहपाठियों के साथ वार्तालाप एवं अंतःक्रियाएं करके अपने अधिगम को संघटित करने में

→ यह सीखने में कि सृजनात्मक सुस्पष्ट, स्पष्ट नियमों पर आधारित पुनर्निवेशन कैसे दिया तथा प्राप्त किया जाता है।

क्रियाओं एवं दत्त कार्यों द्वारा स्पष्ट बनाई तथा सिखाई गई अवधारणाओं तथा कौशलों का अभ्यास करना।

SE-6 निम्नलिखित में से किन परिस्थितियों में अधिगम के रूप में निर्धारण संभव है?

अ. इकाई परीक्षण

ब. समूह परीक्षण

स. समूह अधिगम

ड. सहयोगी अधिगम

SE-7 अधिगम हेतु निर्धारण तथा अधिगम के रूप में निर्धारण में कोई एक अंतर बताएं

9.4.4 आकलन हेतु योजना का प्रारूप बनाना (Planning for assessment)

यदि आपका उद्देश्य विद्यार्थियों के अधिगम की प्रगति का अच्छा निर्धारण है तो आपको अधिगम शैली, हर बच्चे की शक्तियों एवं आवश्यकताओं का ध्यान रखना होगा। आपको याद रखना होगा कि निध ार्रण अधिगम प्रक्रिया का एक अटूट अंग है और यह न तो शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में कुछ अतिरिक्ति जोड़ा गया है न ही यह शिक्षक–केंद्रित क्रिया है। यह लचीला है, वांछित अधिगम परिणामों द्वारा चालित है तथा अधिगम का न अलग हो पाने वाला हिस्सा है, यह अधिगम की तरह ही लगातार चलता रहता है। इसलिए, अधिगम हेतु योजना बनाना कक्षा हेतु शिक्षण–अधिगम क्रियाओं के लिए बनाई जा रही योजना का भाग ही होना चाहिए।

कक्षा में निर्धारण की योजना बनाते हुए, आपको निम्नलिखित बिंदुओं का ध्यान रखना होगा :

- **आकलन की पद्धतियों** : जबकि इस इकाई में चर्चा की गई तीनों पद्धतियों को अपनाने का सुझाव दिया जाता है, आपको यह निर्णय करना है कि उनका प्रयोग कैसे करना है तथा कौन सी पद्धति को आप प्राथमिकता देना चाहेंगे। अधिगम को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण से अधिगम की तरह निर्धारण एक सबसे बढ़िया पद्धति है लेकिन इसका प्रयोग हमारी कक्षाओं में जहां विद्यार्थियों में बहुत विभिन्न योग्यताएं हैं, आसान नहीं है। लेकिन कक्षा की दिन प्रतिदिन की

क्रियाओं में अधिगम हेतु निर्धारण का प्रयोग आवश्यक है जिसे कक्षा में अधिगम प्रक्रिया का आवश्यक अंग होना चाहिए।

- **आकलन का उद्देश्य** : आप जिस प्रकार के निर्धारण का आयोजन कर रहे हैं उनके उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट होना आवश्यक है। यह आपको और आपके विद्यार्थियों को उस वांछित दिशा में क्रिया करने में सहायता करेगा जो निर्धारण के प्रकार जिसका कि प्रयोग होने जा रहा है, के उपयुक्त होगा। निर्धारण के प्रकार को भी स्पष्ट करना आपको विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार यंत्र एवं विधियों के चयन में सहायता करेगा।

- **अधिगम के परिणामों में स्पष्टता** : निर्धारण का उद्देश्य तथा पद्धति का निर्णय इकाई/प्रकरण जो पढ़ाया गया है के वांछित अधिगम परिणामों द्वारा किया जाता है। यदि केवल लिखित परीक्षण ही पर्याप्त होगा, यदि उद्देश्य अधिक समझ, क्रिया, विश्लेषण, संगठन या रचनात्मक के विकास की ओर है तो निर्धारण का उद्देश्य विद्यार्थी के अधिगम की बढ़त का लगातार जाँच होगा। इसके लिए कई विधियों का मिश्रण कर विद्यार्थी के अधिगम की लगातार जांच कर पूर्ण विवरण देना होगा तथा अधिगम हेतु निर्धारण तथा/या निर्धारण जैसे अधिगम पद्धतियों को प्राथमिकता दी जाएगी।

- **प्रभावशाली आकलन का दर्शन** : किसी निर्धारण कार्यक्रम की योजना बनाते हुए, आपको इस बात का स्पष्ट दर्शन होना चाहिए कि जब कार्यक्रम चल रहा होगा तो क्या हो रहा होगा। यदि आपका विचार अधिगम के निर्धारण का है तो आपको यह विचार करना होगा कि कक्षा या परीक्षा हॉल में बैठने की व्यवस्था, कमरे की सफाई, विद्यार्थियों में अनुशासन, भली–भांति तैयार प्रश्न पत्र इत्यादि जैसी आदर्श तथा अनुकूल प्रबंध की स्थितियां है। लिखने की सामग्री की उपलब्धता, कमरे में कोई पुस्तक या अन्य सहायक सामग्रियां इत्यादि न हो। इसी प्रकार से आपको उस कक्षा की परिस्थितियों के बारे में पहले से विचार करना होगा जहां शिक्षण हेतु निर्धारण या अधिगम की तरह निर्धारण को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस प्रकार का पूर्व चिंतन आपको प्रभावशाली निर्धारण कार्यक्रम की योजना बनाने में सहायता करेगा।

- **समय का प्रदान (Porvision)** : अधिगम के निर्धारण का आयोजन करने के लिए आपको प्रकरण/इकाई, टर्म या सत्र के अंत में विशिष्ट समय की आवश्यकता है क्योंकि आपको व्यापक तैयारियां करनी हैं जैसे कि प्रश्न पत्र तैयार करना, बैठने की व्यवस्था, उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच, परिणामों को रिकॉर्ड करके बाँटना, आपको इस प्रकार के निर्धारण की योजना काफी पहले से बनानी पड़ती है। हां, इकाई परीक्षण (इकाई या प्रकरण के अंत में) के लिए कम समय की आवश्यकता होगी। आप कह सकते हैं कि किसी भी कार्य दिवस में कक्षा का एक कलांश। आपको यह ध्यान में रखना है कि निर्धारण के लिए लिया गया समय विद्यालय में अधिगम हेतु उपलब्ध समय में से ही लिया जाता है। यदि आप इस प्रकार के अधिगम के लिए अधिक समय लगाते हैं तो विद्यालय में अधिगम का समय काफी हद तक कम हो जाएगा। लेकिन, क्योंकि अधिगम के अटूट भाग हैं इन्हें आयोजित करने के लिए आपको विशिष्ट समय नहीं चाहिए। आवश्कता है तो इस बात कि, आपको अपनी पाठ योजना में यह चर्चा करनी होगी कि आप शिक्षण के उस काल के दौरान कौन–कौन सी क्रियाएं निर्धारण के लिए करेंगे।

- **विद्यार्थियों को सम्मिलित करना** : जबकि अधिगम हेतु निर्धारण में विद्यार्थियों की भूमिका केवल परीक्षण में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने तक ही सीमित रह जाती है, अधिगम के लिए निर्धारण में वे सक्रिय रूप से अधिगम की सभी क्रियाओं में सम्मिलित होते हैं, शिक्षक तथा सहपाठियों के प्रश्नों के उत्तर देते हैं, दुविधा में स्पष्टिकरण हेतु प्रश्न करते हैं, सहपाठियों की सहायता तथा अन्य कई ऐसी क्रियाएं करते हैं। अधिगम के रूप में निर्धारण तो पूर्ण रूप से

विद्यार्थियों द्वारा चालित होता है। आप इसके लिए केवल प्रेरणा देने वाली परिस्थितियां प्रदान कर सकते हैं।

- **कक्षा का पर्यावरण** : अधिगम के निर्धारण के समय हम अक्सर यही सुनिश्चित करते हैं कि कक्षा में या उसके आस–पास कोई भी ऐसी वस्तु न हो जिससे प्रश्नों के उत्तर देने के लिए संकेत मिल सकें। लेकिन अन्य दोनों प्रकार के निर्धारण में कक्षा अधिगम सामग्री से भरपूर होनी चाहिए। कक्षा की दीवारें, फर्श तथा हर जगह विद्यार्थियों के प्रति मैत्रीपूर्ण पर्यावरण प्रदान करें जिसमें वे सोच पाएं, चिंतन कर पाएं, तथा उन विचारों की रचना कर पाएं जिनकी आवश्यकता अधिगम हेतु निर्धारण तथा अधिगम की तरह निर्धारण के लिए है।

- **पुनर्निवेशन प्रदान करना** : हम पहले ही निर्धारण कार्यक्रम में पुनर्निवेशन की महत्व पर चर्चा कर चुके हैं अधिगम के निर्धारण में पुनर्निवेशन भली भांति तैयार की हुई रिपोर्ट में अंकों या अक्षर ग्रेडों द्वारा दी जाती है जो कि विद्यार्थी के निष्पादन के स्तर का संकेत देते हैं। इसके अलावा रिपोर्ट को अभिभावकों तथा अन्य लोगों के साथ बांटा जाता है जो कि विद्यार्थी के अधिगम से कोई संबंध रखते हैं। लेकिन अधिगम हेतु निर्धारण में, पुनर्निवेशन तुरंत दिया जाता है तथा सामान्यतः मौखिक होता है तथा/या विद्यार्थी के व्यवहार या क्रियाओं का वर्णन होता है जिसके लिए किसी भी व्यापक योजना की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन फिर भी, इन वर्णनों को विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया पुस्तिकाओं में नोट किया जा सकता है या दैनिक डायरी में जिन्हें अभिभावकों के साथ बांटा जा सकता है। अधिगम जैसे निर्धारण में विद्यार्थी को पुनर्निवेशन अपने ही पुनर्विचारों चिंतन तथा/या अपने सहपाठियों से मिलता है जिसके लिए आपको कुछ भी प्रदान की आवश्यकता नहीं है।

- **परिवर्तन को सम्मिलित करना** : निर्धारण का पूरा अभ्यास विद्यार्थियों के अधिगम में अतिरिक्त सुधार लाने के लिए है। निर्धारण के परिणामों पर आधारित आप को हर विद्यार्थी के साथ सलाह कर क्रिया बिंदु बनाने हैं गलतियों के सुधार के लिए, अधिगम में सुधार एवं समृद्धि के लिए। निर्धारण का चक्र, अधिगम की शक्तियों एवं कमियों का निदान, सुधार एवं समृद्धि हेतु उपयुक्त कार्य करना लगातार चक्रीय (Spiral) तरीके से चलता रहता है विद्यार्थियों के ग्रेड ऊँचे होते जाते हैं जैसे–जैसे विद्यार्थी विद्यालय के अगले स्तर पर जाते हैं।

- **लगातार जाँच का तंत्र** : विद्यालयों में निर्धारण की सत्त एवं गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए शिक्षकों के एक समूह को यह दायित्व दिया जा सकता है कि वे इसकी योजना, आयोजन, रिकॉर्डिंग, परिणामों को बांटने तथा समय पर उपयुक्त कार्य अपनाने की जांच करते रहें। यह जांच का सारा कार्य वांछित अधिगम परिणाम के अनुसार किया जाना चाहिए।

9.5 सारांश (Summary)

- कक्षा के हर विद्यार्थी के अधिगम का आकलन वांछित अधिगम परिणामों के संदर्भ में किया जाता है। आकलन को अधिगम के क्रम में उद्देश्य एवं समय के संबंध में वर्गित किया जा सकता है।

- अधिगम के आकलन से अभिप्राय इन आकलनों से है जैसे मौखिक, निष्पादन एवं लिखित तथा इन विधियों में से दो या अधिक का मिश्रण, जिसे किसी शैक्षिक इकाई या टर्म के अंत में आयोजित किया जाता है। अधिगम के निर्धारण के परिणामों को अंकों या ग्रेडों का प्रयोग कर रिकॉर्ड किया जाता है तथा इनका प्रयोग आगे आने वाली इकाइयों में विद्यार्थियों के निष्पादन में सुधार के लिए किया जाता है।

- अधिगम हेतु आकलन मुख्य रूप से विद्यार्थियों के अधिगम को बढ़ाने के लिए तथा शिक्षण को मार्ग–दर्शन देने हेतु किया जाता है इसके लिए शिक्षक तथा सहपाठियों से लगातार पुनर्निवेशन

प्राप्त किया जाता है। अभ्यास कार्य, कक्षा की क्रियाओं का अवलोकन, परियोजनाओं में भागीदारी तथा पोर्टफोलियों का विकास उन परिस्थितियों के उदाहरण हैं जिनमें अधिगम हेतु निर्धारण प्रभावशाली तरीके से किया जा सकता है।

- आकलन अधिगम की तरह का मुख्य उद्देश्य बच्चों को अपने अधिगम पर चिंतन करने का अवसर प्रदान करने के लिए है। स्वयं–निर्धारण, सहपाठियों द्वारा निर्धारण तथा उद्देश्य निर्धारित करने की क्रियाएं निर्धारण अधिगम की तरह के उदाहरण हैं।
- आकलन के एक कार्यक्रम की योजना बनाते समय आपको कई बातें ध्यान में रखनी होगी। जैसे कि वांछित अधिगम परिणाम क्या हैं, प्रभावशाली निर्धारण का स्पष्ट दर्शन, समय की सुविधा, विद्यार्थियों की भागीदारी, प्रेरणा देने वाला कक्षा का पर्यावरण, पुनर्निवेशन प्रदान करना, निर्धारण का जांच तंत्र इत्यादि।

9.6 अभ्यास के प्रश्न

1. विद्यार्थियों के अधिगम की प्रभावशाली बढ़ोतरी हेतु सृजनात्मक एवं संकल्पनात्मक आकलनों की भूमिकाओं का वर्णन करें।
2. एक शिक्षक होने के नाते आप अपने विद्यालय में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन किस प्रकार लागू करवाना पसंद करेंगे?
3. अधिगम के आकलन तथा अधिगम के लिए आकलन में अंतर स्पष्ट करें।
4. अधिगम के लिए आकलन में पुनर्निवेशन की भूमिका स्पष्ट करें।

इकाई – 10

रविन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द, महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द

(Ravindranath Tagore, Maharishi Arivindo, Mahatma Gandhi, Swami Vivekanand)

10.0 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति की शुरूआत मूलतः अंग्रेजों के द्वारा आरोपित शिक्षा व्यवस्था की शुरूआत से ही भारतीय चिंतकों में इसे लेकर एक तरह का असंतोष बना हुआ था। ऐसा नहीं था कि भारतीय चिंतक अपने शिक्षा संबंधी विचारों की इस शिक्षा व्यवस्था की प्रतिक्रिया स्वरूप ही व्यक्त कर रहे हों, बल्कि अपनी देश, काल परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इन सभी के मन में आदर्श शिक्षा व्यवस्था को कोई न कोई परिकल्पना पहले से मौजूद थी।

अंग्रेजों ने 1835 में मैकाले के शिक्षा के प्रस्ताव को भारत में स्वीकार कर लिया था। इस प्रस्ताव में साफ तौर पर इस बात का उल्लेख था कि ''हम भारत में ऐसे व्यक्तियों के वर्ग का निर्माण करना चाहते हैं जो रंग और रक्त में भले भारतीय हों, पर खान–पान, रहन–सहन, आचार–विचार तथा बुद्धि में पूरे अंग्रेज हों।'' मैकाले का वक्तव्य इस बात का प्रमाण है कि व्यवस्था किस तरह शिक्षा को अपने हितों को साधने के लिए उपकरण की तरह इस्तेमाल करती है। लेकिन भारतीय चिंतक इसके पहले से भारत में शिक्षा व्यवस्था कैसी होनी चाहिए इस पर विचार भी कर रहे थे और कई तरह के प्रयोग भी शिक्षा के क्षेत्र में जारी थे। मैकाले के प्रस्तावों के प्रति एक तरह का अस्वीकार भी ज्यादातर भारतीय शिक्षा चिंतकों के विचारों में दिखने को मिलता है। भारतीय शिक्षा चिंतकों के सामने व्यक्ति और समाज की अपनी अवधारणाएं थी और वे भारतीय समाज की जिस रूप में परिकल्पना करते थे, इसकी झलक उनके शैक्षिक प्रयोगों में देखी जा सकती है। यहां हम स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर और महर्षि अरविन्द के शिक्षा संबंधी विचारों को जानने समझने की कोशिश करेंगे। हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि वे कौन सी परिस्थितियां थी जिनमें इन चिंतको के विचार आकार ले रहे थे? उनके शैक्षिक चिंतन के पीछे उनकी व्यक्ति और समाज के बारे में क्या अवधारणाएं थी? वे शिक्षा की भूमिका और उद्देश्यों को किस तरह देखते और समझते थे? शिक्षक, शिक्षण सामग्री और शैक्षणिक प्रक्रियाओं को उन्होंने किस रूप में समझा? भाषा और औद्योगिकरण जैसे मसलों पर इन चिंतकों के विचारों की भी हम पड़ताल करेंगे।

उद्देश्य (Objectives)

1. भारतीय शिक्षा चिंतको (रवीन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द, महात्मा गाँधी और स्वामी विवेकानंद) के शैक्षिक विचारधाराओं से परिचित होंगे।
2. भारतीय संदर्भ में शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता पर समझ बना सकेंगे।
3. व्यक्ति और समाज की शिक्षा के बारे में अवधारणा की समझ बना पायेंगे।

10.1 रवीन्द्रनाथ टैगोर का शैक्षिक दर्शन (Educational philosophy of Rabindranath Tagore)

10.1 रवीन्द्रनाथ टैगोर : 'प्रकृति और सामाजिक संदर्भ से दूर न हो शिक्षा'

(Rabindranath Tagore : Education should not move away form nature and social context)

विश्वविख्यात कवि, साहित्यकार और दार्शनिक रवीद्रनाथ टैगोर शिक्षा को 'जीवन के अपूर्व अनुभव के स्थाई हिस्से' के बतौर देखते थे। उनका कहना था, ''शिक्षा छात्रों की संज्ञानात्मक अनभिज्ञता के रोग का

उपचार करने वाले तकलीफदेह अस्पताल की तरह नहीं है, बल्कि यह उनके स्वास्थ्य की एक क्रिया है, उनके मस्तिष्क के चेतना की एक सहज अभिव्यक्ति है।''

उन्होंने पाया कि अधिकतर वयस्क बच्चों को इशारों पर नाचने वाली कठपुतलियाँ समझते हैं। ऐसी प्रक्रिया से उन्होंने बच्चों को बचपन से महरूम कर दिया है। बच्चों को अपने पाठों के लिए केवल स्कूल की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उनको एक ऐसी दुनिया चाहिए जिसकी मार्गदर्शक चेतना व्यक्तिगत प्रेम हो।

10.1.1 टैगोर का शिक्षा दर्शन (Education philosophy of Tagore)

उनका मानना था कि 'प्रेम और कर्म' के माध्यम से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

1. स्वतंत्रता
2. सृजनात्मक स्व–अभिव्यक्ति
3. प्रकृति और इंसानों के साथ सक्रिय सहभागिता

उनका कहना था कि स्वतंत्रता की मौजूदगी में ही शिक्षा को अर्थ और औचित्य मिलता है। उन्होंने तात्कालीन स्कूलों को 'शिक्षा की फैक्ट्री, बनावटी, रंगहीन , दुनिया के संदर्भ से कटा हुआ और सफेद दीवालों के बीच से झांकती मृतक के आँखों की पुतली' कहा था।

वे मानते थे कि हमारी शिक्षा ने हमें प्रकृति और सामाजिक संदर्भ दोनों से दूर कर दिया था। यह निर्जीव और मूल्यविहीन हो गई है। उन्होंने पाया कि शिक्षा को बच्चों के लिए और ज्यादा अर्थपूर्ण बनाने के लिए पहला कदम बच्चे को प्रकृति के संपर्क में लाना होगा।

यह शिक्षा को मात्रा और गुणवत्ता में नैसर्गिक बनाकर हासिल किया जा सकता है। प्रकृति के साथ संपर्क से बच्चा विशाल दुनिया की वास्तविकता, निरंतरता और खुशी से परिचित होगा।

हालांकि टैगोर खास अर्थ में शिक्षाविद् नहीं है क्योंकि उन्होंने शिक्षा के बारे में नहीं लिखा, लेकिन शिक्षा के प्रति उनके दृष्टिकोण की झलक उनकी कविताओं, गद्य और निबंधों में मिलती है।

10.1.2 किताबों की गुलामी (Slavery of book)

बच्चों के संदर्भ में वह स्वतंत्र, मुक्त गतिविधि और उनके स्वास्थ्य व शारीरिक विकास के लिए खेल के हिमायती थे। उन्होंने पाया '' अगर बच्चे कुछ नहीं सीखते हैं तो उनको खेलने का पर्याप्त समय मिलना चाहिए। पेड़ों पर चढ़ना, तालाब में तैरना, फूल तोड़ना और छिलना, प्रकृति के साथ हजार शरारतें जारी रखने से उनके शरीर को पोषण, मन को खुशी और बचपन की नैसर्गिक प्रेरणाओं को संतुष्टि मिलेगी।'' टैगोर ने इस सच्चाई पर अफसोस जताया था कि तात्कालिक शिक्षा व्यवस्था किताबों की गुलामी को प्रोत्साहन देती थी। भारत और दुनिया के तमाम देशों में यह स्थिति आज भी बरकरार है।

उन्होंने कहा, ''हमारी शिक्षा स्वार्थ पर आधारित, परीक्षा पास करने के संकीर्ण मक़सद से प्रेरित, यथाशीघ्र नौकरी पाने का जरिया बनकर रह गई है जो एक कठिन और विदेशी भाषा में साझा की जा रही है। इसके कारण हमें नियमों, परिभाषाओं, तथ्यों और विचारों को बचपन से रटना की दिशा में धकेल दिया है। यह न तो हमें वक्त देती है और न ही प्रेरित करती है ताकि हम ठहरकर सोच सकें और सीखे हुए को आत्मसात कर सकें।

10.1.3 शिक्षा का उद्देश्य (Objective of education)

उन्होंने लिखा कि 'सोचने की शक्ति और कल्पनाशक्ति निःसंदेह वयस्क जीवन के लिए दो महत्वपूर्ण क्षमताएं है।'' इसलिए उन्होंने महसूस किया कि इनके विकास को बचपन से प्रारंभ होना चाहिए। उनके मुताबिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों को वास्तविक जीवन की सच्चाइयों, परिस्थितियों और परिवेश

के साथ परिचय और समायोजन था। उन्होंने जोर देते हुए कहा था कि अवास्तविक शिक्षा ही हमारे लोगों में बौद्धिक, बेईमानी, नैतिक पाखंड और मातृभूमि के प्रति अज्ञानता के लिए जिम्मेदार है। इसलिए उन्होनें तर्क देते हुए कहा कि शिक्षा और हमारी ज़िंदगी के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास होना चाहिए।

इस तरह से टैगोर ने शिक्षा की उपयोगिता के बारे में अपने विचार को सामने रखा, वे मानते थे कि शैक्षिक संस्थाओं का आर्थिक जीवन के साथ गहरा जुड़ाव होना चाहिए।

टैगोर आत्म–अनुशासन और अनावश्यक पदार्थों से मुक्त सहज तरीके से जीवन जीने के आदर्श में विश्वास करते थे। उन्होंने कहा, ''हमें इस विचार को मूर्त रूप देना चाहिए। उन्होंने हमारे स्कूलों के संदर्भ में अनावश्यक चीजों को कम करने का विचार रखा। उन्होंने पाया कि सहजता और स्वाभाविकता वास्तविक सभ्यता में शामिल होती हैं। इसलिए हमारे बच्चों को इसके लिए बहुत प्रारंभ से इसके लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। वे मानते थे कि वस्तुओं की विलासिता से मुक्त होकर बच्चा अपने हाथों और पैरों के वृहत्तर उपयोग करने के साथ–साथ ज़मीन और धरती से परिचित हो सकेगा।

10.1.4 शिक्षण विधि के संदर्भ में सुझाव (Suggestion in the context of teaching method)

शिक्षण विधि के संदर्भ में उनका सुझाव था कि ''प्रकृति के तथ्यों का अध्ययन प्रकृति की वास्तविक परिघटनाओं और प्रकृति में वन्य जीवन के माध्यम से होना चाहिए।'' उन्होंने कहा कि इतिहास, भूगोल और अन्य सामाजिक विज्ञान के तथ्यों का अध्ययन जहाँ तक संभव हो प्रत्यक्ष स्रोतों के माध्यम से होना चाहिए। विद्यार्थियों के अपने सामने मौजूद वास्तविक वस्तुओं के संपर्क में आने से उनके अवलोकन की क्षमता और तार्किक शक्ति का विकास होगा।''

10.1.5 समाधान केंद्रित विमर्श की जरूरत (Need of solution centered discussion)

इसके आगे उन्होंने लिखा, '' छात्रों को सोचने के लिए प्रेरित करना चाहिए। किताबों में उन्होंने जो कुछ पढ़ा है उसके ऊपर कई तरह के सवाल और जवाब होना चाहिए। अगर वे किताबों की सामग्री की आलोचना करते हैं तो हमें वास्तव में मानना चाहिए कि उनको सच्ची शिक्षा मिली है। रोज़मर्रा के जीवन की विभिन्न समस्याओं को उनके सामने पेश किया जाना चाहिए और उनके समाधान पर केंद्रित विमर्श होना चाहिए। शिक्षा, कक्षा में पढ़ाने की तुलना में बड़ी चीज़ हैं।

10.1.6 गतिविधि का सिद्धांत (Principle of Activity)

टैगोर की शैक्षणिक विधियों का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत गतिविधि का सिद्धांत था। यह उनके इस दर्शन पर आधारित था कि शरीर और मन को विभाजित नहीं किया जा सकता। उन्होंने जोर देकर कहा कि शारीरिक गतिविधि से केवल शरीर को स्फूर्ति नहीं मिलती, इससे मन भी ऊर्जावान होता है। इसी सिद्धांत के आधार पर उन्होंने चलते–फिरते स्कूलों को आदर्श स्कूल की संज्ञा दी।

उन्होंने कहा कि चलते–चलते पढ़ाना शिक्षा का सबसे अच्छा तरीका है। ऐसा मात्र इस कारण से नहीं है क्योंकि चलना प्रत्यक्ष अवलोकन के माध्यम से बहुत सारी चीजों को सीखनें में मदद करता है।

ऐसा इसलिए भी क्योंकि चलते समय हमारा मानसिक संकाय ज्यादा जाग्रत और चीजों को ग्रहण करने वाली स्थिति में होता है ।

10.1.7 सक्रिय रूप से सीखने की उपयोगिता (Utility of active learning)

इस तरह सक्रिय रूप से सीखना हम जीवित इंसानों के लिए हर तरह से उपयोगी है। दूसरी तरह क्लॉसरूम में होने वाली स्थिर शिक्षा जो पढ़ाया जा रहा है उससे और छात्रों की अपनी पहल के बीच एक अलगाव का कारण बनती है। इस सिद्धांत को 'शांति निकेतन' में अपनाया गया है। यहाँ तक कि क्लॉसरूम में टैगोर ने गति के इस सिद्धांत को लागू किया।

उन्होंने लिखा, 'मैं कक्षा के दौरान सभी लड़के–लड़कियों को कूदने, यहाँ तक कि पेड़ पर चढ़ने, किसी कुत्ते या बिल्ली के पीछे भागने या किसी पेड़ की डाली से कोई फल तोड़ने की अनुमति दूँगा.... मैंने अपने दिमाग में यह बात ध्यान रखने का प्रयास किया कि बच्चा शब्दों को सीखने और एक पूरे वाक्य को सीखने के लिए अपने शरीर का इत्तेमाल करे। हमारे अधिकांश अध्यापक नाराज हो जाते जब वे मेरी कक्षा के बच्चों को हँसते, शोर मचाते और हाथों से ताली बजाते हुए सुनते थे।

10.1.8 बच्चों की किताबें कैसी हों? (How should be the books of children)

जहाँ तक बच्चों के किताबों की बात है उनका मानना था कि किताबे आसान और आकर्षक होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि शुरूआत में पाठों को आसान रखना चाहिए और बाद में बच्चों के भीतर स्वतः इसके लिए लगाव पैदा हो जाएगा। वह यह भी मानते थे कि विदेशी भाषा शुरू करने की बजाय सारी शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए।

टैगोर के विचारों में प्रकृतिवाद और मानवतावाद के प्रति काफी विश्वास दिखाई देता है। बचपन के बारे में उनके विचारों और उसका महत्व 'बाल–केंद्रित शिक्षण' की बुनियाद रखते हैं जिसका उपयोग हाल के दिनों में फिर से बढ़ा है। टैगोर सृजनात्मक स्व–अभिव्यक्ति के पैरोकार थे जिसे आधुनिक शिक्षा में काफी महत्व दिया जाता है।

(दिल्ली विश्वविद्यालय के एज्यूकेशन डिपार्टमेंट में प्रोफेसर नमिता रंगनाथ की किताब 'द प्राइमरी स्कूल चाइल्ड' का हिन्दी अनुवाद।)

10.2 महर्षि अरविंद का शैक्षिक दर्शन (Educational philosophy of Maharshi Aurobindo)

10.2.1 महर्षि अरविन्द का शिक्षा दर्शन (Education philosophy of Maharshi Aurobindo)

श्री अरविन्द ने भारतीय शिक्षा चिन्तन में महत्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने सर्वप्रथम घोषणा की कि मानव सांसारिक जीवन में भी दैवी शक्ति प्राप्त कर सकता है। वे मानते थे कि मानव भौतिक जीवन व्यतीत करते हुए तथा अन्य मानवों की सेवा करते हुए अपने मानस को 'अति मानस' (supermind) तथा स्वयं को 'अति मानव' (superman) में परिवर्तित कर सकता है। शिक्षा द्वारा यह संभव है।

आज की परिस्थितियों में जब हम अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति एवं परम्परा को भूल कर भौतिकवादी सभ्यता का अंधानुकरण कर रहे हैं, अरविन्द का शिक्षा दर्शन हमें सही दिशा का निर्देश करता है। आज धार्मिक एवं अध्यात्मिक जागृति की नितान्त आवश्यकता है। श्री वी आर तनेजा के शब्दों में –

> ''श्री अरविन्द का शिक्षा–दर्शन लक्ष्य की दृष्टि से आदर्शवादी, उपागम की दृष्टि से यथार्थवादी, क्रिया की दृष्टि से प्रयोजनवादी तथा महत्वाकांक्षा की दृष्टि से मानवतावादी है। हमें इस दृष्टिकोण को शिक्षा में अपनाना चाहिए।''

10.2.2 शैक्षिक प्रयोग (Educational experiments)

राष्ट्रीय आन्दोलन में लगे हुए विद्यार्थियों को शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने हेतु कलकत्ता में एक राष्ट्रीय महाविद्यालय स्थापित किया गया। श्री अरविन्द को 150 रू. प्रति माह के वेतन पर इस कॉलेज का प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्री अरविन्द ने 'राष्ट्रीय शिक्षा' की संकल्पना का विकास किया तथा अपने शिक्षा–दर्शन की आधारशिला रखी। यही कॉलेज आगे चलकर जादवपुर विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ। प्रधानाचार्य का कार्य करते हुए श्री अरविन्द अपने लेखन तथा भाषणों द्वारा देशवासियों को प्रेरणा देते हुए राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेते रहे।

1908 ई में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण श्री अरविन्द गिरफ्तार हुए व जेल में रहे। उन पर मुकदमा चलाया गया तथा अदालत में दैवयोग से उनके मुकदमे की सुनवाई सैशन जज सी.पी.बीचक्राफ्ट

ने की जो अरविन्द के ICS के सहपाठी रह चुके थे तथा अरविन्द की कुशाग्र बुद्धि से प्रभावित थे। अरविन्द के वकील चितरंजन दास ने जज बीचक्राफ्ट से कहा–''जब आप अरविन्द की बुद्धि से प्रभावित है तो यह कैसे संभव है कि अरविन्द किसी षडयन्त्र में भाग ले सकते हैं?'' बीच क्राफ्ट ने अरविन्द को जेल से मुक्त कर दिया।

10.2.3 योग एवं दर्शन की अभिरूचि (Aptitude of yoga and philosophy)

जेल की अवधि में श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक साधना की तथा उन्हे ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके पूर्व वे 1907 ई में जब बड़ौदा में थे तो एक प्रसिद्ध योगी विष्णु भास्कर लेले के संपर्क में आये और योग–साधना में प्रवृत्त हुए। जेल से मुक्त होकर वे 4 अप्रैल 1910 को पंडिचेरी चले गये और उन्होंने अपना जीवन अनन्त सत्य की खोज में लगा दिया। सतत् साधना द्वारा उन्होंने अपनी आध्यात्मिक दार्शनिक विचारधारा का विकास किया।

10.2.4 अरविन्द की दार्शनिक विचारधारा (Philosophical thought Aurobindo)

श्री अरविन्द के दर्शन का लक्ष्य ''उदात्त सत्य का ज्ञान'' (Realization of the sublime Truth) है जो ''समग्र जीवन–दृष्टि'' (Integral view of life) द्वारा प्राप्त होता है। समग्र जीवन–दृष्टि मानव के ब्रम्ह में लीन या एकाकार होने पर विकसित होती है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण द्वारा मानव 'अति मानव (superman) बन जाता है अर्थात् वह सत, रज व तम की प्रवृत्ति से ऊपर उठकर ज्ञानी बन जाता है। अतिमानव की स्थिति में व्यक्ति सभी प्राणियों को अपना ही रूप समझता है। जब व्यक्ति शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से एकाकार हो जाता है तो उसमें दैवी शक्ति (Devine Power) का प्रादुर्भाव होता है।

समग्र जीवन–दृष्टि हेतु अरविन्द ने योगाभ्यास पर अधिक बल दिया है। योग द्वारा मानसिक शांति एवं संतोष प्राप्त होता है। अरविन्द की दृष्टि में योग का अर्थ जीवन को त्यागना नहीं है बल्कि दैवी शक्ति पर विश्वास रखते हुए जीवन की समस्याओं एवं चुनौतियों का साहस से सामना करना है। अरविन्द की दृष्टि में योग कठिन आसन व प्राणायाम का अभ्यास करना भी नहीं है बल्कि ईश्वर के प्रति निष्काम भाव से आत्म समर्पण करना तथा मानसिक शिक्षा द्वारा स्वयं को दैवी स्वरूप में परिणित करना है।

अरविन्द ने मस्तिष्क की धारणा स्पष्ट करते हुए कहा है कि मस्तिष्क के विचार–स्तर चित्त, मनस, बुद्धि तथा अर्न्तज्ञान होते हैं जिनका क्रमशः विकास होता है। अर्न्तज्ञान में व्यक्ति को विशेष महत्व दिया है। अर्न्तज्ञान द्वारा ही मानवता प्रगति की वर्तमान दशा को पहुँची है। अतः दमन नहीं करना चाहिए। वर्तमान शिक्षा पद्धति से अरविन्द का असंतोष इसी कारण था कि उनमें विद्ययार्थियों की प्रतिभा के विकास का अवसर नहीं दिया जाता। शिक्षक को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास हेतु उनके प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

अरविन्द की मस्तिष्क की धारणा की परिणति 'अतिमानस' (Supermind) की कल्पना व उसके अस्तित्व में है। अतिमानस चेतना का उच्च स्तर है तथा दैवी आत्म शक्ति का रूप है। अतिमानस की स्थिति तक शनैः शनैः पहुँचना ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। अरविन्द के अनुसार भारतीय प्रतिभा की तीन विशेषताएँ हैं – आत्मज्ञान, सर्जनात्मकता तथा बुद्धिमत्ता (Spirituality, Creativity and intellectuality)। अरविन्द ने देशवासियों में इन्ही प्राचीन आध्यात्मिक शक्तियों के विकास करने का संदेश देकर भारतीय पुनर्जागरण करना चाहा है। अरविन्द के शब्दों में –

> ''भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान जैसी उत्कृष्ट उपलब्धि बगैर उच्च कोटि के अनुशासन के अभाव में संभव नहीं हो सकती जिसमें कि आत्मा व मस्तिष्क की पूर्ण शिक्षा निहित है।''

इस प्रकार श्री अरविन्द के दर्शन की चरम परिणति उनके शैक्षिक दर्शन में होती है।

10.2.5 वर्तमान शिक्षा–पद्धति से असन्तोष (Dis-satisfaction from current education system)

प्रत्येक दार्शनिक अंततः एक शिक्षाविद् होता है क्योंकि शिक्षा, दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है। जैसा कि अभी हम देख चुके हैं – अरविन्द के दर्शन की चरम परिणति उनके शिक्षा–दर्शन में हुई है। वे वर्तमान शिक्षा पद्धति से असन्तुष्ट थे। उनका कहना था–

''सूचनात्मक ज्ञान कुशाग्र बुद्धि का आधार नहीं हो सकता''(Information can not be the foundation of intelligencel)।

यह ज्ञान तो नवीन अनुसंधान तथा भावी क्रियाकलापों का आरम्भ मात्र होता है। वे आज की शिक्षा–पद्धति में भारतीय प्रतिभा की तीन विशेषताओं–आध्यात्मिकता, सर्जनात्मकता तथा बुद्धिमत्ता–का ह्रास एवं पतन देखते थे। इस पतन का कारण वे रूग्ण आध्यात्मिकता (Diseased Spirituality) मानते थे।

अरविन्द की शिक्षा पद्धति की संकल्पना – अरविन्द इस प्रकार की शिक्षा पद्धति चाहते थे जो विद्यार्थी के ज्ञान–क्षेत्र का विस्तार करे, जो विद्यार्थियों की स्मृति, निर्णय शक्ति एवं सर्जनात्मक क्षमता का विकास करे तथा जिसका माध्यम मातृभाषा हो। श्री अरविन्द राष्ट्रीय विचारों के थे, अतः वे शिक्षा पद्धति को भारतीय परम्परानुसार ढालना चाहते थे। उन्होंने शिक्षा द्वारा पुनर्जागरण का संदेश दिया था। यह पुनर्जाजगरण तीन दिशाओं की ओर उन्मुख होना चाहिए –

(1) प्राचीन आध्यात्मिक–ज्ञान की पुर्नस्थापना

(2) इस आध्यात्म–ज्ञान की दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान व विवेचनात्मक ज्ञान में प्रयोग, तथा

(3) वर्तमान समस्याओं का भारतीय आत्म–ज्ञान की दृष्टि से समाधान की खोज तथा आध्यात्म प्रधान समाज की स्थापना।

10.2.6 शिक्षा के लक्ष्य (Aims of education)

श्री अरविन्द के अनुसार '' शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य विकासशील आत्मा के सर्वांगीण विकास में सहायक होना तथा उसे उच्च आदर्शों के लिए प्रयोग हेतु सक्षम बनाना है।'' अरविन्द के विचार महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के लक्ष्यों के समान हैं। अरविन्द की धारणा थी कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में यह विश्वास जागृत करना है कि मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से पूर्ण सक्षम है तथा वह शनैः शनैः अतिमानव (superman) की स्थिति में आ रहा है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति की अन्तर्निहित बौद्धिक एवं नैतिक क्षमताओं का सर्वोच्च विकास होना चाहिए। अरविंद का विश्वास था कि मानव दैवी शक्ति से समन्वित है और शिक्षा का लक्ष्य इस चेतना शक्ति का विकास करना है। इसीलिए वे मस्तिष्क को 'छठी ज्ञानेन्द्रिय' मानते थे। शिक्षा का प्रयोजन इन छः ज्ञानेन्द्रियों का सदुपयोग करना सिखाना होना चाहिए। उन्होंने कहा था कि – ''मस्तिष्क का उच्चतम सीमा तक पूर्ण प्रशिक्षण होना चाहिए अन्यथा बालक अपूर्ण तथा एकांगी रह जायेगा। अतः शिक्षा का लक्ष्य मानव–व्यक्तित्व के समेकित विकास हेतु अतिमानस (Supermind) का उपयोग करना है।''

10.2.7 पाठ्यक्रम (Syllabus)

शिक्षा के पाठ्यक्रम के विषय में अरविंद चाहते थे कि अनेक विषयों का सतही ज्ञान कराने की अपेक्षा विद्यार्थियों को कुछ चयनित विषयों का ही गहन अध्ययन कराया जाये। वे भारतीय इतिहास एवं संस्कृति को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग मानते थे क्योंकि उनका विचार था कि प्रत्येक बालक में इतिहास बोध होता है जो परीकथाओं, खेल व खिलौनों के माध्यम से प्रकट होता है। अतः बालकों को अभिरूचि अपने देश के साहित्य एवं इतिहास के प्रति विकसित करनी चाहिए।

अरविन्द के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में जिज्ञासा, खोज, विश्लेषण व संश्लेषण करने की प्रवृत्ति होती है। अतः वे विज्ञान को पाठ्यक्रम में स्थान देते थे। विज्ञान द्वारा मानव प्राकृतिक वातावरण को समझता है तथा उसमें वस्तुनिष्ट बुद्धि के विकास हेतु अनुशासन आता है। मस्तिष्क को प्रधानता देने के कारण अरविन्द पाठ्यक्रम में मनोविज्ञान विषय को भी सम्मिलित करना चाहते थे जिससे कि 'समग्र जीवन–दृष्टि' विकसित हो सके। इसी उद्देश्य से वे पाठ्यक्रम में दर्शन एवं तर्कशास्त्र को भी स्थान देते थे।

10.2.8 नैतिक शिक्षा (Moral Education)

अरविंद बालक के बौद्धिक विकास के साथ उसका नैतिक एवं धार्मिक विकास भी करना चाहते थे। उनकी धारणा थी – ''मानव की मानसिक प्रवृत्ति नैतिक प्रवृत्ति पर आधारित है। बौद्धिक शिक्षा, जो नैतिक व भावनात्मक प्रगति से रहित हो, मानव के लिए हानिकारक है। ''नैतिक शिक्षा हेतु अरविन्द गुरू की प्राचीन भारतीय परंपरा के पक्षधर थे जिसमें गुरू, शिष्य का मित्र, पथ प्रदर्शक तथा सहायक हो सकता था। अनुशासन द्वारा ही विद्यार्थियों में अच्छी आदतों का निर्माण हो सकता है। नैतिक ''संसूचन विधि'' (Method of suggestion) द्वारा दी जानी चाहिए जिसमें गुरू व्यक्तिगत आदर्श जीवन एवं प्राचीन महापुरूषों के उदाहरण द्वारा विद्यार्थियों को नैतिक विकास हेतु उत्प्रेरित करें।

10.2.9 शिक्षण–विधि तथा शिक्षक (Teaching method and teacher)

अरविन्द के अनुसार शिक्षण एक विज्ञान है जिसके द्वारा विद्यार्थियों के वयवहार में परिवर्तन आना अनिवार्य है। उनके शब्दों में – ''वास्तविक शिक्षण का प्रथम सिद्धान्त है कि कुछ भी पढ़ाना संभव नहीं अर्थात् बाहर से शिक्षार्थी के मस्तिष्क पर कोई चीज न थोपी जाये। शिक्षण प्रक्रिया द्वारा शिक्षार्थी के मस्तिष्क की क्रिया को ठीक दिशा देनी चाहिए।'' प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत अभिवृत्ति एवं योग्यता के अनुकूल शिक्षादेनी चाहिए। विद्यार्थी को अपनी प्रवृत्ति अर्थात् ''स्वधर्म'' के अनुसार विकास के अवसर मिलने चाहिए। अरविन्द 'मानस' अर्थात् मस्तिष्क को छठी ज्ञानेन्द्रिय मानते थे जिसके विकास पर वे अधिक बल देते थे। विकसित मानस से 'सूक्ष्य दृष्टि' उत्पन्न होती है जिससे निष्पक्ष दृष्टिकोण विकसित होता है। योग द्वारा ''चित्त शुद्धि'' शिक्षण का लक्ष्य होना चाहिए। अरविन्द की दृष्टि में वही शिक्षक प्रभावी शिक्षण कर सकता है जो उपरोक्त विधि से विद्यार्थी का विकास करें। शिक्षित विद्यार्थियों को ज्ञानेन्द्रियों तथा मस्तिष्क के सही उपयोग द्वारा उनकी पर्यवेक्षण (Observation) , अवधान (Attention), निर्णय तथा स्मरण शक्ति का विकास करने में सहायता करे। शिक्षण बालकों की तर्क शक्ति के विकास द्वारा उनमें अंतःदृष्टि (Intution) उत्पन्न करे। अरविन्द शिक्षक का महत्व प्रकट करते हुए कहते थे कि –

''शिक्षक प्रशिक्षक नहीं है, वह तो सहायक एवं पथप्रदर्शक है। वह केवल ज्ञान ही नहीं देता बल्कि वह ज्ञान प्राप्त करने की दिशा भी दिखलाता है। शिक्षण–पद्धति की उत्कृष्टता उपयुक्त शिक्षक पर ही निर्भर होती है।''

10.3 मोहनदास करमचंद गाँधी (02 अक्टूबर 1869– 30 जनवरी 1948)

मोहनदास करमचंद गाँधी यानि महात्मा गाँधी के नाम से हम सभी परिचित हैं। अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों पर चलते हुए उन्होंने अंग्रेजों की औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती दी और भारत के स्वाधीनता संग्राम में अहम् भूमिका निभाई। गाँधी के राजनीतिक चिंतन और योगदान को लेकर बहुत कुछ लिखा जाता रहा है, लेकिन गाँधी का चिंतन राजनीति तक सीमित नहीं था। गाँधी के विचारों में जीवन का समग्र दर्शन तलाशा जा सकता है। शिक्षा राजनीति में नैतिक मूल्यों के प्रबल पक्षधर गाँधी के प्रमुख सरोकारों में शामिल रही है, लेकिन उनके यहां शिक्षा उनकी नीति आधारित राजनीतिक कार्ययोजना का अभिन्न अंग ही रही है।

गाँधी के सामने देश की आजादी जैसे बड़े राजनीतिक प्रश्न और संघर्ष थे, ऐसे में बच्चों की शिक्षा जैसे मुद्दों पर काम करने की जरूरत उन्होंने क्यों महसूस की? क्या शिक्षा और राजनीति के बीच वे कोई संबंध देख रहे थे? क्या इसका कोई संबंध उनकी स्वराज की अवधारणा के साथ भी था? उनकी नजर में शिक्षा के क्या उद्देश्य थे और वे किस तरह के समाज की कल्पना करते थे? क्या इन प्रश्नों के जवाब गाँधी के शिक्षा के क्षेत्र में किए गए प्रयोगों में तलाशे जा सकते हैं? यहां हम इन्हीं प्रश्नों के जवाब तलाशने का प्रयास करेंगे।

इन प्रश्नों के जवाब तलाशने की ओर जाने से पहले हम संक्षेप में गाँधी के जीवन और शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा किए गए प्रयोगों की चर्चा कर लेते हैं, क्योंकि यही प्रयोग हमें अपने प्रश्नों के उत्तर तलाशने में मदद करने वाले हैं।

10.3.1 जीवन (Life)

मोहन दास करम चंद गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को पोरबंदर, गुजरात में हुआ। इंग्लैंड से वकालत की पढ़ाई करने के बाद जून 1891 में वे स्वदेश लौटे और उन्होंने यहां वकालत शुरू करने की कोशिश की। यहां उन्हें ज्यादा सफलता नहीं मिल पाई और 1893 में एक फर्म के वकील के रूप में दक्षिण अफ्रीका चले गए। दक्षिण अफ्रीका भी उस समय अंग्रेजों के आधीन था। यहां उन्होंने नस्लवादी भेदभाव को देखा और वहीं ठहर कर इस अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने का निर्णय किया। इसी दौरान उन्होंने बाइबिल और कुरान जैसी धार्मिक किताबों के अलावा रूसी लेखक लेव तोलस्तोय की किताब ''द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू'' पढ़ी। इन किताबों ने गाँधी के विचारों पर गहरा असर डाला। उन्होंने नटाल कांग्रेस का गठन किया और नटाल के सर्वोच्च न्यायालय में नामांकित होने वाले पहले भारतीय वकील बने। गाँधी ने शुरू से ही किसी भी अन्याय के प्रतिकार के लिए अहिंसा और सत्याग्रह की ही रणनीति को अपनाया। सत्ता को चुनौती देने के साथ ही साथ वे जिस वर्ग के हितों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, उसकी जीवन स्थितियों को बेहतर बनाने पर भी लगातार काम करते थे। गाँधी ने पहले सिद्धांत गढ़ कर उन पर चलने के रास्ते को कभी नहीं अपनाया। उन्होंने जीवन को जैसे जिया उसी से उनके दर्शन का भी निर्माण हुआ।

दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों के व्यापारिक, राजनीतिक और नागरिक हितों की रक्षा के लिए गाँधी संघर्ष करते रहे। इस संघर्ष को उन्होंनें भारतीय स्वाधीनता संग्राम के साथ भी जोड़ा। वे भारत में उस समय के प्रमुख नेता गोपाल कृष्ण गोखले के निकट संपर्क में रहे। उन्हें दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति से अवगत कराते रहते। गाँधी स्वयं दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को समर्थन करते। वे इस बात की भी कोशिश करते कि लोग स्वयं जागरूक हों और अपनी जीवन स्थितियों को बेहतर बनाने की दिशा में स्वयं प्रयत्नशील हों। सत्य और अहिंसा के अलावा आत्मनिर्भरता, हाथ का काम, साफ–सफाई, शिक्षा, और भाषा को उन्होंने स्वाधीनता के संघर्ष प्रमुख औजारों के रूप में काम में लिया। वर्ष 1904 में उन्होंने फिनिक्स आश्रम की स्थापना की, जहां उनके इन्हीं विचारों को क्रियान्वित होते देखा जा सकता है।

10.3.2 शिक्षा में गाँधी के प्रयोग (Educational experiments of Gandhi)

10.3.2.1 फिनिक्स आश्रम (Phynix Ashram)

दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान 1904 में एक यात्रा करते हुए गाँधी ने जॉन रस्किन की किताब **अन टू दि लास्ट** पढ़ी, जिसने उन्हें गहरे तक प्रभावित किया। गाँधी ने इस किताब का अनुवाद भी किया जो बाद में 'सर्वोदय' के नाम से छपा। इस किताब से उन्होंने तीन बातों को मुख्यतः ग्रहण किया। 1. व्यक्ति का भला सबके भले में निहित है। 2. वकील का काम उतना ही प्रतिष्ठित है जितना हज्जाम का क्योंकि सबको रोटी–रोजी कमाने का समान अधिकार है। और 3. मेहनत का जीवन, अर्थात खेती करने वाले और कारीगर का जीवन ही वास्तव में जीने योग्य होता है।

अपनी आत्मकथा में इस किताब का जिक्र करते हुए गाँधी लिखते हैं ''पहली चीज मैं जानता था। दूसरी की मैं झलक पा रहा था। तीसरी को मैंने सोचा ही नहीं था। पहली में पिछली दोनों बातें समाई हुई हैं। यह मुझे 'सर्वोदय' ने दीपक की भांति स्पष्ट कर दिया। सवेरा हुआ और मैं उस पर अमल करने में लग गया।''

इस किताब को पढ़ने के कुछ ही दिन बाद उन्होंने डरबन से चौदह मील दूर फिनिक्स रेल्वे स्टेशन के पास जमीन का टुकड़ा खरीद कर फिनिक्स आश्रम की स्थापना की। गाँधी उस समय 'इंडियन ओपीनियन' नामक अखबार निकालना शुरू कर चुके थे। इस अखबार के कर्मचारी इस आश्रम के सदस्य बने। आश्रम में पहुंचने के पहले ही दिन छपाई मशीन खराब हो गई और नहीं चली तो सदस्यों ने रात भर हाथ पहीए से छपाई कर अखबार को समय पर निकाला। हाथ के काम को गाँधी ने हमेशा बहुत महत्व दिया और फिनिक्स

आश्रम में इसी के चलते बाद के दिनों में नियमित रूप हाथ–पहिए से अखबार की छपाई होती रही। भूखंड को छोटे–छोटे टुकड़ों में बांट बस्ती के निवासी उस पर अपने अपने हिस्से में खेती करते, प्रत्येक व्यक्ति ने टाइप सेटिंग का काम सीखा इस तरह फिनिक्स आश्रम एक आत्मनिर्भर समुदाय की तरह रहता था। स्त्री, पुरुष बच्चे सभी आश्रम के जीवन में समान रूप से भागीदारी करते। बच्चे रोजमर्रा के कामों में हाथ बंटाते और दिन भर में बहुत थोड़ा सा समय उन्हें लिखने पढ़ने से संबंधित काम दिया जाता था।

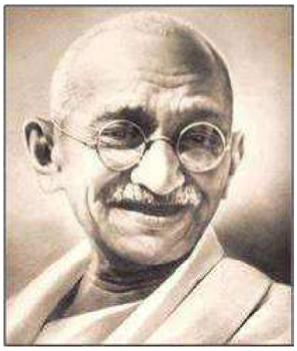

10.3.2.2 टाल्सटाय फार्म (Tolstoy form)

रूसी लेखक लियो टाल्सटाय की किताब 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' का भी गाँधी पर गहरा असर पड़ा। हालांकि टाल्सटाय के साथ व्यक्तिगत संवाद 1909 में एक पत्र के द्वारा हुआ। वर्ष 1910 में फिनिक्स आश्रम की ही तर्ज पर जोहांसबर्ग में आश्रम स्थापित किया तो गाँधी ने उसका नाम टाल्सटाय फार्म रखा। टाल्सटाय फार्म गांधी के शैक्षणिक प्रयोगों की आदर्श प्रयोगशाला के रूप में देखा जाता है। गाँधी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि ''टाल्सटाय आश्रम एक कुटुम्ब है और मैं उसमें पितारूप हूं, इसलिए मुझे यथाशक्ति इन नवयुवकों के निर्माण की जिम्मेदारी उठानी चाहिए।'' आश्रम में बच्चों की जिम्मेदारी अपनी पढ़ाई के अलावा आश्रम की देखभाल में हाथ बंटाने की थी। फीनिक्स आश्रम में जहां बच्चों को श्रम से जुड़े कामों के बारे में प्रतिदिन निर्देश दिए जाते थे, वहीं यहां उससे एक कदम आगे बढ़ते हुए उपयोगी काम धंधों के प्रशिक्षण को ''बच्चों के सर्वागीण विकास के लिए अनिवार्य मानते हुए शामिल कर लिया गया था।'' हालांकि इस वक्त तक बच्चों को किसी खास धंधे का प्रशिक्षण देने का प्रयास नहीं किया गया था, लेकिन प्रत्येक बच्चे को अपनी पढ़ाई के साथ ही साथ किसी न किसी काम में संलग्न किया जाता था। आश्रम पर मौजूद छह से सोलह वर्ष के सभी बच्चों को प्रतिदिन लगभग आठ घंटे शारीरिक श्रम के साथ ही दो घंटे पढ़ाई–लिखाई के लिए बिताने होते थे।

इस आश्रम में सहशिक्षा पर भी जोर दिया गया और लड़के और लड़कियों को सभी कामों को मिल कर करने के लिए प्रेरित किया जाता। टाल्सटाय आश्रम में लड़के और लड़कियां जिन कामों में योगदान करते उनमें सामान्य श्रम, खाना पकाना, शौचालयों की सफाई, जूते बनाना, बढ़ईगिरी और संदेश वाहकों के काम शामिल थे।

10.3.2.3 सत्याग्रह आश्रम और चम्पारन के स्कूल (Satyagrah Ashram & School of Champaran)

गाँधी 1915 में स्वदेश लौट आए। यहां आने के बाद उन्होंने इसी वर्ष अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया, जिसे बाद में साबरमती आश्रम के नाम से जाना गया। यहां रहते हुए ही गाँधी ने चरखे का इस्तेमाल कर हाथ से कपड़ा बनाना शुरू किया। कालांतर में उन्होंने कांग्रेस की व्यापक सदस्यता अभियान चलाया और तिलक स्वराज कोष के तहत धन इकट्ठा कर 20 लाख चरखे स्थापित किए और भारत निर्माण अभियान में उनका इस्तेमाल किया, विदेशी के बहिष्कार का नारा दिया और मिल निर्मित कपड़ों की होली जलाई। गाँधी ने चरखे को आत्मनिर्भरता के प्रतीक के रूप में स्थापित किया। इसी दौरान बिहार में नील की खेती में लगे किसानों की स्थिति का जायजा लेने गाँधी 1917 में चंपारन गए। यहां उन्होंने यह महसूस किया कि ''चंपारन में सच्चा काम करना है तो यहां के गांवों में शिक्षा का प्रवेश होना चाहिए। गांवों में बच्चे मारे–मारे फिरते थे या मां–बाप दो–तीन पैसे की मजदूरी की खातिर उनसे सारे दिन नील के खेतों में मजदूरी करवाते।'' गाँधी ने साथियों से सलाह–मशविरा कर वहां छह पाठशालाएं खुलवाईं। यहां भी साक्षरता के साथ शारीरिक श्रम और सफाई को शिक्षा के अनिवार्य अंग के रूप में शामिल किया गया।

10.3.2.4 गुजराती विद्यापीठ (Gujarati Vidyapith)

नवंबर 1920 में गाँधी ने अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। अंग्रेजों के वित्तीय और प्रशासनिक नियंत्रण से मुक्त शैक्षणिक संस्थान बनाने के इरादे से इस राष्ट्रीय विद्यापीठ के नाम से इस

विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इसके माध्यम से भारतीय स्वाधीनता के आंदोलन में संलग्न नेताओं को सभी भारतीयों के लिए अपना शैक्षणिक कार्यक्रम लागू करने में मदद मिली। गाँधी के सत्याग्रह के आंदोलन में विद्यापीठ की स्थापना को एक महत्वपूर्ण कड़ी माना जाता है। देश भर में स्वाधीनता के आंदोलन में शामिल नेताओं ने बनारस, मुम्बई, कलकत्ता, नागपुर और मद्रास में इस विद्यापीठ की शाखाएं स्थापित कीं। अंग्रेजी शैक्षणिक संस्थाओं के बहिष्कार के गाँधी के आह्वान के जवाब में हजारों विद्यार्थियों और अध्यापकों ने विद्यापीठ में प्रवेश लिया। प्रमुख नेता जीवत राम कृपलानी जैसे लोगों ने इस विद्यापीठ में पढ़ाने का निर्णय किया। विद्यापीठ गाँधी के उद्देश्यों में सिद्धांतों में गाँधी को शामिल किया गया है। ये सिद्धांत हैं

1. सत्य और अहिंसा,
2. श्रम की गरिमा को महत्व देते हुए शारीरिक श्रम में योगदान
3. सभी धर्मों की समानता
4. पाठ्यचर्या में ग्रामीणों की जरूरतों को प्राथमिकता और
5. सिखाने के माध्यम के रूप में मातृभाषा का प्रयोग

गाँधी अपने विद्यार्थियों या समर्थकों की गलतियों पर उन्हें सजा देने की बजाय स्वयं उपवास पर चले जाते थे। 1925 में अपने आश्रम के निवासियों की गलतियों पर सप्ताह भर तक उपवास किया और इसी दौरान उन्होंने अपनी आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' भी लिखी।

10.3.2.5 सेवाग्राम (Sewagram)

अस्पृश्यता के मुद्दे पर गाँधी पहले भी काम कर रहे थे। नवम्बर 1933 में वे हरिजन उद्धार यात्रा पर निकल पड़े। सितम्बर 1934 में उन्होंने सक्रिय राजनीति से सन्यास लेने और अपना जीवन ग्रामोद्योग के विकास, हरिजनों के उद्धार और दस्तकारी के माध्यम से शिक्षा के प्रसार को समर्पित करने की घोषणा की। इसी वर्ष उन्होंने अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना की। अप्रेल 1936 में गाँधी वर्धा के पास ही स्थित गांव सेवाग्राम में जा कर बस गए, और यहीं अपना मुख्यालय बना लिया। अक्टूबर 1937 में वर्धा में 'अखिल भारतीय शिक्षा परिषद' की बैठक में गाँधी ने नई तालीम का प्रस्ताव रखा, जिस पर खुली चर्चा हुई। इस बैठक में सब बच्चों को सात साल तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षा, उत्पादक दस्तकारी की शिक्षा आदि के विचार बहस के लिए प्रस्तावित किए गए। बहस के बाद इस प्रस्ताव पर पाठ्यक्रम के विकास के लिए डा. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। आमतौर पर बुनियादी शिक्षा या नई तालीम को दस्तकारी की शिक्षा तक सीमित मान लिया जाता है, लेकिन इस समिति की रिपोर्ट में यह बात खुल कर सामने आई कि यह प्रस्ताव शिक्षा के लिए इससे कहीं ज्यादा व्यापक आधार उपलब्ध कराता है।

10.3.3 गाँधी का शिक्षा दर्शन (Education philosophy of Gandhi)

इस तरह हम देखते हैं कि गाँधी ने अपने राजनीतिक आंदोलनों के समानांतर लगातार शिक्षा के क्षेत्र में विचार और नवाचार को जारी रखा। दक्षिण अफ्रीका में नस्लवादी भेदभाव और भारत में आजादी की लड़ाई के बीच भी गाँधी के शिक्षा को लेकर प्रयोग जारी रहे। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि व्यापक राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर संघर्ष के बीच आखिर ऐसी क्या वजहें या कारण रहे होंगे जिन्होंने गाँधी को बच्चों की शिक्षा पर काम करने की जरूरत का अहसास कराया? आखिर उन्होंने बच्चों की शिक्षा और राजनीतिक–सामाजिक मुद्दों के बीच क्या अंतःसंबंध देखा होगा? क्या उनकी शिक्षा की अवधारणा का कोई संबंध उनकी स्वराज की अवधारणा से भी था? उनकी राय में शिक्षा के क्या उद्देश्य होंगे?

गाँधी को समझना जितना आसान है उतना ही मुश्किल भी है। उनके राजनीतिक चिंतन और योगदान को लेकर बहुत कुछ लिखा जाता रहा है, लेकिन गाँधी का चिंतन राजनीति तक सीमित नहीं था। गाँधी ने स्वयं भी अपने विचारों और जीवन के बारे में बहुत लिखा और गाँधी के बाद भी गाँधी को तरह–तरह से समझने की कोशिश की जाती रही है। शिक्षा गाँधी के प्रमुख सरोकारों में रही है, लेकिन उनके शिक्षा

संबंधी विचार अलग–अलग जगहों पर बिखरे हुए मिलते हैं। शिक्षा पर व्यवस्थित रूप से उनका लिखा ज्यादा कुछ पढने को नहीं मिलते, लेकिन उनके शिक्षा से जुड़े प्रयोगों और उनके द्वारा जहां–तहां व्यक्त किए गए शिक्षा संबंधी विचारों में एक तरह की निरंतरता देखने को मिलती है।

शिक्षा और राजनीति में जैसा संतुलन गाँधी ने बनाया वैसा उनसे पहले किसी भी भारतीय शिक्षाशास्त्री अथवा राजनेता के लिए संभव नहीं हुआ। वे एकमात्र ऐसे भारतीय नेता थे, जिन्होंने आजादी के बाद भारत की सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र में बनती जा रही मानसिक गुलामी के खतरे को भांप लिया था। आधुनिकता के सिद्धांत पर आधारित विकास की तार्किक परिणति को वे उस समय में भी देख पा रहे थे और उन्होंने उसमें मौजूद शोषणकारी स्थितियों का पूर्वानुमान कर पा रहे थे।

गाँधी जिस समय में शिक्षा पर विचार कर रहे थे, उस समय ज्यादातर भारतीय विचारक, समाज सुधारक और शिक्षाविद औपनिवेशिक अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के प्रति नकार के साथ अपना शिक्षा दर्शन गढ़ रहे थे। गाँधी के शैक्षिक चिंतन में यह नकार ज्यादा मुखर नजर आता है। गाँधीजी के अनुसार औपनिवेशिक व्यवस्था सत्य और अहिंसा का नकार करती हैं। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि गाँधी का शिक्षा दर्शन अंग्रेजों की प्रतिक्रिया स्वरूप या सिर्फ नकारात्मक सोच से पैदा हुआ हो। गाँधी के लेखन में कई जगह पूर्व और पश्चिम के बीच का द्वंद देखने को मिलता है, लेकिन उनके शिक्षा संबंधी लेखन और विचार उस द्वंद की उपज नहीं हैं, बल्कि उनके शैक्षिक विचारों को बहुत सहजता के साथ पेस्टालोजी, ओवेन, टाल्सराय और डीवी की परम्परा में रख कर देखा जा सकता है।

गाँधी का शिक्षा दर्शन मूलतः प्रगति की पश्चिम की अवधारणा से अलग हटकर भारत के पुनर्निर्माण के स्वप्न से संचालित था। औपनिवेशिक शिक्षा की आलोचना गाँधी की पश्चिमी सभ्यता की समग्र आलोचना का हिस्सा थी। औपनिवेशिकरण, इसके शिक्षा के एजेण्डा सहित, गाँधी की दृष्टि में सत्य और अहिंसा का निषेध करता था– जिन्हें वे दो सर्वोच्च मूल्य मानते थे। पश्चिमवासियों ने अपनी 'सारी ऊर्जा, उद्योग और उद्यम अन्य नस्लों को लूटने और विनाश करने में लगाए हैं' यह तथ्य गाँधी के लिए पश्चिमी सभ्यता की 'दुर्दशा' का पर्याप्त प्रमाण था। इसलिए उनकी राय में यह 'प्रगति' का प्रतीक नहीं हो सकती और इसलिए इसे भारत के लिए अनुकरणीय या यहां स्थापित किए जाने योग्य व्यवस्था नहीं कहा जा सकता।

इस तरह गाँधी का शिक्षा दर्शन पश्चिम के देशों में चलाई जा रही व्यवस्था की नकल की बजाय उसका विकल्प प्रस्तुत करता है। शिक्षा उनकी समग्र राजनीतिक कार्ययोजना का हिस्सा थी। गाँधी के लिए स्वराज राजनीतिक आजादी तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका अर्थ 'जनता का स्वशासन' था। उनका मानना था कि जनता के इस स्वशासन की प्राप्ति के लिए जन शिक्षा की एक राष्ट्रीय कार्ययोजना होनी चाहिए।

गाँधी एक ऐसे समाज की कल्पना करते थे जिसमें सत्ता का किसी भी रूप में केंद्रीकरण न हो। उनका मानना था कि केंद्रीकरण अनिवार्यतः हिंसा की मनोवृत्ति को बढ़ाता है। उनकी समाज व्यवस्था की आदर्श इकाई आत्मनिर्भर गांव रहा। उनका मानना था कि हिंसा की जरूरत तभी पड़ती है जब हम किसी अन्य पर अनिवार्यतया आश्रित हों। आत्मनिर्भर और अहिंसक समाज के लिए अहिंसक आचरण वाले आत्मनिर्भर या स्वावलंबी व्यक्ति की जरूरत होती है। गाँधी के शिक्षा दर्शन का भी केन्द्रीय विचार एक अहिंसक समाज के लिए अहिंसक स्वावलम्बी व्यक्ति का निर्माण है। गाँधी ने अपने सभी शैक्षणिक प्रयोगों में व्यक्ति की इसी आत्मनिर्भरता पर सर्वाधिक जोर दिया।

10.3.3.1 व्यक्ति और शिक्षा (People and education)

गाँधी के शिक्षा दर्शन पर विचार करने से पहले थोड़ा सा विचार इस बात पर भी कर लें कि गाँधी की व्यक्ति की अवधारणा क्या थी और वे शिक्षा को किन अर्थों में समझते थे।

गाँधी यह मानते थे कि व्यक्ति महज मन,शरीर या आत्मा नहीं है बल्कि इन तीनों का एक संतुलित संयोजन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। शिक्षा का काम व्यक्ति के बच्चे के मन, शरीर और आत्मा के श्रेष्ठतम

गुणों को उभारने का होना चाहिए। उनका मानना था साक्षरता शिक्षा का अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकती। यह सिर्फ एक माध्यम भर है जिसके द्वारा व्यक्ति के बच्चे–बच्चियां शिक्षा को अर्जित करते हैं। साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं है। बच्चे की शिक्षा की शुरुआत उसे हाथ से किए जाने वाले उपयोगी कामों को सिखाने से होनी चाहिए और उसे सीखना शुरू करने के साथ ही उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करने में समर्थ बनाने की दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि इस तरह की शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति के मन, शरीर और आत्मा का विकास हो सकता है। उनका यह भी मानना था कि हाथ से किए जाने वाले कार्य या दस्तकारी का प्रशिक्षण महज तकनीकि स्तर तक ही सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि इसे वैज्ञानिक ढंग से सिखाया जाना चाहिए यानि बच्चे को यह जानना चाहिए कि वह जिस वस्तु को बनाना सीख रहा है उसके प्रत्येक चरण के बारे में उसे यह मालूम होना चाहिए कि वह यह क्यों कर रहा है और उसका उपयोग क्या है। अच्छी तरह से अंजाम दिया गया उपयोगी शारीरिक श्रम व्यक्ति के बौद्धिक विकास में सर्वाधिक योगदान करता है। ऐसे शारीरिक श्रम के माध्यम से विकसित बौद्धिक व्यक्ति को आसानी से पथ भ्रमित नहीं किया जा सकता और वह समाज के लिए बेहतर योगदान दे सकता है। गाँधी के आश्रमों में सभी जगह बालकों की शिक्षा पर खास ध्यान दिया जाता था। गाँधी के यहां बच्चों को पढ़ाना जीवन के दूसरे कामों से अलग कोई उपक्रम नहीं था, बल्कि उनके यहां आश्रम के जीवन में बच्चों को जिम्मेदार, अनुशासित सहभागी के रूप भागीदारी के अवसर दिए जाते थे। इस तरह बच्चे तमाम कामों में हाथ बंटाते हुए शिक्षित होते थे।

10.3.3.2 स्वावलंबी व्यक्ति का निर्माण (Creation of self reliant people)

गाँधी का स्वावलंबी व्यक्ति से आशय क्या है? क्या स्वयं अपनी आजीविका कमाने में आत्मनिर्भर व्यक्ति को ही उन्होंने स्वावलंबी माना है या उनकी स्वावलंबन की अवधारणा को किन्हीं व्यापक संदर्भों में देखा जा सकता है? इस स्वावलंबी व्यक्ति के निर्माण के लिए गाँधी क्या रास्ता सुझाते हैं? उनके यह मानने के क्या आधार हैं कि आत्मनिर्भर और अहिंसक समाज के लिए अहिंसक आचरण वाले आत्मनिर्भर या स्वावलंबी व्यक्ति की जरूरत होती है? यह स्वावलंबी व्यक्ति कैसे समाज को अहिंसक और आत्मनिर्भर बनाने में योगदान कर सकता है?

गाँधी के शिक्षा दर्शन को नई तालीम या बुनियादी शिक्षा के नाम से जाना जाता है। सामान्यतः गाँधी द्वारा प्रस्तावित बुनियादी शिक्षा को करके सीखने या दस्तकारी की शिक्षा के सीमित अर्थों में लिया जाता है। मूलतः बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव एक ऐसे आदर्श समाज की परिकल्पना करता है जो छोटे–छोटे आत्मनिर्भर समुदायों को मिलाकर बना है। गाँधी के अनुसार भारतीय गांवों में इस तरह के आत्मनिर्भर सुमदाय बनने की प्रचुर संभावना है। बल्कि ऐतिहासिक रूप से भारतीय गांव ऐसे ही आत्मनिर्भर समाज हुआ करते थे और जरूरत गांवों को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के साथ ही उनकी स्वायत्तता और राजनीतिक गरिमा को फिर बहाल करने की है। औपनिवेशिक शासन ने गांवों के आर्थिक ढांचे को तहस–नहस कर दिया और उसे शहरियों के द्वारा शोषण के लिए छोड़ दिया। औपनिवेशिक शासन से मुक्ति से ही गांवों का सशक्तिकरण होगा और वे आत्मनिर्भर समुदायों के रूप में विकसित हो सकेंगे। बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव गांवों को इस तरह विकसित करने के लिए बच्चों को इस तरह के प्रशिक्षण की तरफदारी करता है जिसमें बच्चों को उत्पादक कार्य करना सिखाया जाए और परस्पर सहभागिता पर आधारित समाज में जीने के तौर–तरीके सिखाए जाएं।

वे एक ऐसी व्यवस्था की सिफारिश करते थे, जिसमें आधुनिकता के परिणामस्वरूप गांवों में रहने वाली जनता को अपने हितों की रक्षा करने में तकलीफ न उठानी पड़े। ग्राम स्वराज का उनका प्रस्ताव ग्रामीणों के उत्पादों को मशीनीकरण के साथ प्रतिस्पर्द्धा से बचाने का प्रयास करता है तो बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव ऐसे समाज में बच्चों की उत्पादकता को बढ़ाने में योगदान करता है। इस तरह गाँधी के यूटोपिया में एक छोटे समुदाय में रहने वाले उद्यमी, स्वाभिमानी और स्वावलम्बी व्यक्ति की परिकल्पना की गई थी।

गाँधी के अनुसार आजीविका–कौशल निश्चय की बुनियादी शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा है – लेकिन उसका वास्तविक उद्देश्य एक ऐसे स्वावलम्बी व्यक्ति का निर्माण करना है, जिसका अपने सम्पूर्ण परिवेश के

साथ – प्राकृतिक और मानवीय दोनों तरह के परिवेश के साथ – अहिंसात्मक और सृजनात्मक रिश्ता हो। गाँधी की स्वावलंबी व्यक्ति की अपनी अवधारणा को उपरोक्त कथन से समझा जा सकता है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य ऐसे ही व्यक्ति का विकास है। इस स्वावलम्बी व्यक्ति के निर्माण के लिए यह भी जरूरी है कि वह अपने सीखने की प्रक्रिया में भी आत्मनिर्भर हो अर्थात शिक्षार्थी हाथ के हुनर को न सिर्फ सीखे बल्कि इतनी कुशलता के साथ सीखे की उसके माध्यम से अपनी शिक्षा का खर्च भी वह स्वयं उठा सके। साधन और साध्य यदि एक हैं तो आत्मनिर्भर व्यक्ति और समाज का साध्य निशचित करने वाली शिक्षा को अपनी प्रक्रिया में भी अहिंसक और आत्मनिर्भर होना होगा।

बोध प्रश्न

1. गाँधी जी के बुनियादी शिक्षा के विचारों में स्वावलंबी व्यक्ति की अवधारणा निहित है। उनकी स्वावलंबी व्यक्ति की अवधारणा को अपने शब्दों में लिखें।
2. आपके अनुसार वर्तमान समाज में गाँधी जी की स्वावलंबी व्यक्ति की अवधारणा कितनी प्रासंगिक है?

10.3.3.3 साक्षरता और शिक्षा (Literacy and education)

जाहिर है गाँधी के विचारों में दस्तकारी, हाथ के काम और समाज के लिए उपयोगी श्रम का बहुत अहम् स्थान है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि गाँधी शिक्षा में अक्षर ज्ञान या पढ़ने और लिखने के महत्व को किस तरह देखते थे? क्या वे उसकी आवश्यकता और अनिवार्यता को स्वीकरतें थे? हिंद स्वराज में शिक्षा के बारे में विचार करते हुए गाँधी पूछते हैं शिक्षा का अर्थ क्या है? फिर वे स्वयं ही इसके जवाब में कहते हैं ''अगर शिक्षा का अर्थ केवल अक्षर ज्ञान है तब तो वह एक औजार हुआ जिसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। जिस औजार से नश्तर लगाकर रोगी का रोग दूर किया जाता है उसी से किसी की जान भी ली जा सकती है। यही बात अक्षर की है। हम देखते हैं कि इसका दुरुपयोग अधिक लोग करते हैं, सदुपयोग थोड़े ही करते हैं। यह बात सही है तो इससे यह साबित होता है कि अक्षर ज्ञान से दुनिया को फायदे की बनिस्बत नुकसान ही अधिक हुआ है।

शिक्षा का साधारण अर्थ अक्षरज्ञान ही होता है। लड़कों को पढ़ना–लिखना और हिसाब लगाना सिखा देना प्रारंभिक शिक्षा कहलाता है। एक किसान ईमानदारी से खेती–किसानी करके अपनी रोटी कमाता है। उसे दुनिया का सामान्य ज्ञान है। अपने मां–बाप, स्त्री, अपने बच्चों के साथ वह किस तरह व्यावहार करे, जो लोग उसके गांव में बसते हैं उनके साथ कैसी राह–रस्म रखे, इस सबका उसे पूरा ज्ञान है। सदाचार के नियमों को वह समझता है, पर उसे दस्तखत करना नहीं आता। ऐसे आदमी को आप अक्षरज्ञान करा के क्या करना चाहते हैं? इससे उसके सुख में कौनसी वृद्धि करेंगे? आप उसके हृदय में अपने झोंपड़े और अपनी दशा के प्रति असंतोष पैदा करना चाहते हैं? यह करना हो तो उसे अक्षर ज्ञान कराने की जरूरत नहीं है। पश्चिमी विचारों के प्रवाह में पड़ कर हमने इतना तो याद कर लिया कि सबको पढ़ना–लिखना सिखा देना चाहिए, पर उसके हानि–लाभ का विचार नहीं करते।

अब ऊंची शिक्षा को ही लीजिए। मैंने भूगोल पढ़ा, खगोल पढ़ा, बीजगणित सीखा, भूमिति का ज्ञान प्राप्त किया, भूगर्भ विद्या के गर्भ में प्रवेश किया। पर इन सबसे मैंने अपनी या अपने आस–पास वालों की कौनसी भलाई की? मैंने यह सारा ज्ञान किसलिए प्राप्त किया? अंग्रेज विद्वान प्रोफेसर हक्सले ने शिक्षा के विषय में कहा है– ''सच्ची शिक्षा उस आदमी को मिली है जिसका शरीर ऐसा सधा हुआ है कि उसके अंकुश में रहता है और सौंपे हुए काम को आसानी से और प्रसन्नतापूर्वक करता है; जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है, जिसका मन प्रकृति के नियमों और ज्ञान से भरपूर है, जिसकी इंद्रियां उसके वश में हैं, जिसकी अंतर्वृत्ति विशुद्ध है, जिसे बुरे कामों से नफरत है और जो दूसरों को भी अपने ही जैसा समझता है। ऐसे ही आदमी को सच्ची शिक्षा मिली हुई कह सकते हैं, क्योंकि वह प्रकृति के नियमों के अनुसार चलता है। वह प्रकृति का अधिकतम उपयोग करेगा और प्रकृति उसका।'' अगर सच्ची शिक्षा यही है तो मुझे शपथपूर्वक

कहना चाहिए कि जिन शास्त्रों के मैंने ऊपर नाम गिनाए हैं उनसे अपने शरीर या इंद्रियों को बस में करने में मैं कोई मदद नहीं ले सकता। अतः प्रारंभिक शिक्षा हो या उच्च शिक्षा, उनमें हमें उस कार्य में सहायता नहीं मिलती जो हमारा असल काम है। उनसे हम मनुष्य नहीं बनते, अपना फर्ज नहीं पहचान पाते।

गाँधी ने अक्षर ज्ञान को हर स्थिति में निंदनीय नहीं माना है। वे कहते हैं 'मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि हमें उस ज्ञान का अंधभक्त नहीं हो जाना चाहिए, वह कुछ हमारी कामधेनु नहीं है। वह तो अपनी जगह पर ही शोभा दे सकता है। यह वह जगह सही है जब हम अपनी इंद्रियों को वश में कर लें, अपनी नीति की नींव दृढ़ कर लें, तब हमें अक्षरज्ञान की इच्छा हो तो उसे प्राप्त कर हम उसका दुरुपयोग अवश्य कर सकते हैं। आभूषण के रूप में वह हमें सजा सकती है। पर अक्षरज्ञान का यही उपयोग हो तो ऐसी शिक्षा को हमारे लिए अनिवार्य कर देने की आवश्यकता नहीं रहती। इसके लिए तो हमारी पुरानी पाठशालांए ही काफी हैं। नीति की शिक्षा को उनमें पहला स्थान दिया गया है। वही प्रारंभिक शिक्षा है। उस नींव पर जो इमारत खड़ी हो जाएगी, वह टिकाऊ होगी।'

10.3.3.4 ग्राम स्वराज (Gram Swaraj)

गाँधी एक ऐसे आदर्श समाज की परिकल्पना करते थे जो छोटे–छोटे आत्मनिर्भर समूहों से मिल कर बना हो। उनके अनुसार भारतीय गांवों में ऐसे समुदाय बनने की संभावना मौजूद है। इतना ही नहीं भारतीय गांव ऐसे ही आत्मनिर्भर समुदाय हुआ करते थे और आज जरूरत उनके उस स्वरूप को फिर से हासिल करने या उनके संरक्षण की है, जिसमें वे आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ ही राजनीतिक गरिमा भी प्राप्त कर सकें। उनका यह मानना था कि औपनिवेशिक सत्ता ने अपने हितों को साधने के लिए गांवों का शोषण किया और उनकी आत्मनिर्भरता को छिन्न–भिन्न कर दिया और उन्हें शहरों का मोहताज बना दिया। आजादी गांवों को फिर आत्मनिर्भर बनाएगी और बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रम का उद्देश्य गांवों को स्वावलंबी बनाना और उनका सशक्तिकरण करना होगा। इसके लिए वे बच्चों को ऐसी शिक्षा देने की हिमायत करते हैं जो उन्हें ऐसे सहभागितापूर्ण समुदाय में रहने के लिए तैयार कर सके।

उन्होंने बुनियादी शिक्षा के अपने प्रस्ताव में दस्तकारी को स्कूल की पाठ्यचर्या में अनिवार्य रूप से शामिल किए जाने पर जोर दिया। उनके यहां दस्तकारी एक गैर शैक्षणिक गतिविधि के रूप में नहीं बल्कि स्कूल के शैक्षणिक कार्यक्रम की धुरी के रूप में प्रस्तावित की गई। गाँधी के शिक्षा दर्शन पर विचार करते हुए कृष्ण कुमार कहते हैं, ''इसके निहितार्थ सिर्फ स्कूली व्यवस्थाओं में बदलाव तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि इन्हें अपनाने का मतलब भारत के सामाजिक ढांचे में भी बदलाव की सिफारिश करना था। भारत में अब तक दस्तकारी से जुड़े पेशों को जातिय व्यवस्था में निम्नतर दर्जों पर रखा गया था। जैसे रुई की धुनाई, कपड़े की बुनाई, चमड़े के काम, मिट्टी के बरतन बनाने का काम, ठठेरों का काम, डलिया बनाने जैसे पेशों को जातिगत दृष्टि से कमतर मानी गई जातियों के जिम्मे थे। यहां तक कि इनमें से कुछ जातियों को अस्पृश्य तक माना गया था। भारतीय परम्परा में पढ़ने–लिखने को उच्च जातियों का विशेषाधिकार माना गया था और अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के केंद्र में भी साक्षरता को ही स्वीकारा गया था। गाँधी के बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव में इस जातीय व्यवस्था में निचले पायदान से आने वाले बच्चे को केंद्र में रखा गया और इस तरह सामाजिक ढांचे को सिरे से पुनर्गठित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया।''

बोध प्रश्न

1. गाँधी जी के ग्राम स्वराज का संक्षिप्त वर्णन करें। उनकी ग्राम स्वराज की अवधारणा एवं बुनियादी शिक्षा के विचार में क्या संबंध है?

10.3.3.5 मशीन और औद्योगिकरण बनाम हाथ का काम

गाँधी औद्योगीकरण के दौर में इस कार्यक्रम को प्रस्तावित कर रहे थे। मशीनों के प्रति गाँधी के नकार को सभी जानते हैं, लेकिन यह नकार उनके शिक्षा संबंधी विचारों पर क्या असर डालते हैं? गाँधी द्वारा प्रस्ताविक शिक्षा व्यवस्था औद्योगिकरण से उपजी चुनौतियों से जूझने के लिए क्या रास्ता सुझाती हैं? क्या शिक्षा के यह प्रस्ताव किसी खास मकसद को सामने रख कर विकसित किए गए थे?

गाँधी ने पूरब और पश्चिम के द्वंद से अलग हट कर भारतीय शिक्षा दर्शन की बात की और उन्होंने बहस के केंद्र में मानव और मशीन के बीच के द्वंद को रखा। उनका कहना था कि आधुनिक मशीनी सभ्यता का कोई नैतिक आधार नहीं है और अंततः वह सर्वनाश की ओर ले जाने वाली है। स्वयं गाँधी भी एक सीमा तक मशीन के उपयोग से सहमत थे, जैसे कि वे मानते थे कि सिलाई मशीन की मदद से हाथ की तुलना में ज्यादा उत्पादन किया जा सकता है, लेकिन वे मशीन के अधीन हो जाने का विरोध करते थे। वे मानवीय श्रम और प्राकृतिक संपदा पर मशीन के हावी हो जाने के खिलाफ थे। मशीन के उपभोक्तावादी और शोषणकारी चरित्र के साथ उनका विरोध था।

गाँधी औद्योगीकरण को मनुष्य जीवन के लिए एक चुनौती के रूप में देखते थे। तकनीक के बारे में गाँधी के विचारों पर काफी बहस होती रही है। गाँधी के शिक्षा दर्शन पर विचार करते हुए शिक्षाविद कृष्ण कुमार कहते हैं कि ''इस बारे में स्पष्ट तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता कि गाँधी मूलतः विज्ञान और प्रोद्यौगिकी के ही खिलाफ थे या फिर वे उस पश्चिमी आधुनिकता के खिलाफ थे जो विज्ञान और प्रोद्यौगिकी को गैर युरोपीय समाजों के शोषण की छूट देती है। उनके लेखन विविध संदर्भों में व्यक्त विचारों को एक साथ रख कर देखने पर ऐसा लगता है कि वे कुछ हद तक दोनों की ही खिलाफत करते हैं। संभवतः गाँधी से इस बार में कोई एक पक्ष लेने की उम्मीद करना ही गलत है।'' वे भारत को पहले राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर देखना चाहते थे, ताकि वह पश्चिम से आने वाली औद्योगिक और पूंजीवादी ताकतों का मुकाबला करने में स्वयं समर्थ हो सके।

गाँधी पहले एक ऐसी आत्मनिर्भर राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे, जिसके मूल में आत्मनिर्भर गांव का विचार और मशीनी उत्पादन उनकी वरीयता सूची में नीचे के पायदानों पर आता था। वे एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था का सपना देखते थे, जिसमें आधुनिकता की चुनौतियों के आगे जन सामान्य को अपने हितों की रक्षा करने की ताकत मिल सके। उनकी शैक्षणिक योजनाएं उनके इस सपने को पूरा करने के पैमानों पर खरा उतरती हैं। यदि औद्योगीकरण कर रफ्तार को कम कर दिया जाए और सामाजिक और राजनीतिक विकास को ध्यान में रखते हुए दिशा दी जाए, तो बुनियादी शिक्षा इस लक्ष्य को पाने में निश्चय ही महत्वपर्णू भूमिका निभा सकती है। यदि औद्योगीकरण को इस तरह दिशा दी जाए कि वह ग्रामीण उत्पादकों के सामने चुनौती खड़ी न करे तो बुनियादी शिक्षा ग्रामीण बच्चों को ऐसी व्यवस्था में अपनी जगह बनाने में सक्षम बनाती है।

10.3.3.6 शारीरिक श्रम (Physical Labour)

गाँधी ने शिक्षा को श्रमशील लोगों के नजरिए से देखा। वे यह मानते थे कि श्रमिक परिवारों के बच्चे बहुत उत्साह के साथ काम–काज में अपने माता–पिता का हाथ बंटाते हैं। वे जानते हैं कि काम के बिना रोटी नहीं मिल सकती। गाँधी के अनुसार 'शारीरिक श्रम का तात्पर्य स्कूल के संग्रहालय के लिए वस्तुएं अथवा खिलौने तैयार करना नहीं है जिनका वास्तविक कोई मूल्य न हो। बच्चे बाजार में रखे जाने लायक वस्तुएं तैयार करें। बच्चों का यह काम इस तरह नहीं सीखना है जैसे किसी फैक्टरी में शुरुआत में मालिक के चाबुक के डर से वे सीखते हैं, बल्कि वे स्वयं इस तरह काम करने में आनंद का अनुभव करें तथा इससे उनका बौद्धिक विकास हो।' उनका मानना था कि इस तरह से तैयार बच्चा आत्मनिर्भर होगा और आत्मविश्वास से भरपूर होगा। इस तरह वह स्कूल और घर के बीच निरंतरता बनाए रख सकेगा।

गाँधी का मानना था कि मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में तीन बड़ी खामियां हैं– 1. यह विदेशी संस्कृति पर आधारित है, जिसमें अपनी संस्कृति को पूरी तरह दरकिनार किया गया है, 2. यह भावनाओं तथा हाथ के हुनर की उपेक्षा करती है, और सिर्फ दिमाग से जोड़ती है और 3. वास्तविक शिक्षा किसी भी विदेशी माध्यम से पाना असंभव है। गाँधी की शिक्षा प्रणाली में लड़कों को खेलने की बजाय खेतों में हल चलाना सिखाने की सिफारिश की गई थी। उनका कहना था कि ''यह धारणा भ्रांत है कि हमारे लड़के क्रिकेट या फुटबाल नहीं जानेंगे तो उनका जीवन नीरस या उबाऊ होगा।'' वे तो यहां तक मानते हैं कि ''कढ़ाई एवं बुनाई जैसे ग्रामीण हस्तशिल्प के माध्यम से शिक्षा देने की मेरी योजना का उद्देश्य बहुत दूर दृष्टि के साथ गुपचुप सामाजिक क्रांति की प्रक्रिया की शुरुआत करना है।''

बोध प्रश्न

1. गाँधी जी ने शारीरिक श्रम व व्यक्ति के बौद्धिक विकास के बीच संबंध की बात कही है। आपके विचार से इनके बीच क्या संबंध है? आप जो भी संबंध बता रहे हैं उसके अनुसार आप शाला शिक्षण की प्रक्रिया में क्या बदलाव करेंगे?

10.3.3.7 भाषा (Language)

भारत में अंग्रेजों द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था का एक उद्देश्य अंग्रेजी जानने वाले पढ़े–लिखे लोगों की एक ऐसी फौज तैयार करना था जो यहां अंग्रेजी राज को सुचारू ढंग से चलाने में मदद कर सके। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि गाँधी शिक्षा के माध्यम के रूप में किस भाषा के पक्षधर थे? अंग्रेजी भाषा में शिक्षण के वे समाज पर क्या असर देखते थे?

गाँधी अंग्रेजी शिक्षा को देश में गुलामी की नींव मानते थे। हिंद स्वराज में भाषा के मसले पर चर्चा करते हुए वे कहते हैं ''अंग्रेजी पढ़ कर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी पढ़े हिंदुस्तानियों ने आम लोगों को ठगने और उन्हें डराने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह क्या कम जुल्म है कि अपने देश में काम पाने के लिए भी हमें अंग्रेजी का सहारा लेना पड़े।'' गाँधी 14 साल तक के बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने नई तालीम में अंग्रेजी को कोई जगह नहीं दी है। वे अंग्रेजी को स्कूली शिक्षा के लिए माध्यम या अनिवार्य विषय, किसी भी रूप में शामिल करने के पूरी तरह खिलाफ थे। वे लिखते हैं कि भारत में प्रचलित तमाम अंधविश्वासों में इससे बड़ा कोई अंधविश्वास नहीं है कि जीवन में उदारता तथा विचारों में स्पष्टता लाने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अनिवार्य है।'' उनका कहना था कि अगर हम राष्ट्रीय स्तर पर आत्मसात करना नहीं चाहते हैं तो अंग्रेजी को हमें अपनी विचार प्रक्रिया का माध्यम बनाने से बचना होगा।

गाँधी मातृभाषा को शिक्षा की नींव मानते हैं। उनके अनुसार मातृभाषा एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा बच्चों को अपने देश के विचारों, भावनाओं और आकांक्षाओं की बहुत बड़ी विरासत हासिल होती है।

10.3.3.8 शिक्षक की स्वायत्तता और पाठ्य पुस्तक (Teacher's Autonomy and Text book)

शिक्षा से संबंधित किसी भी व्यवस्था की कल्पना को साकार करने में शिक्षक की अहम भूमिका होती है। यह शिक्षक ही है जो इस व्यवस्था को साकार करता है। गाँधी की शिक्षा व्यवस्था में जहां स्वावलंबी व्यक्ति के निर्माण पर बहुत जोर दिया गया है, शिक्षक की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसे में यह जानना महत्वपूर्ण है कि गाँधी के मन में शिक्षक की क्या अवधारणा कैसी थी? वे सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में उसकी भूमिका को किस तरह देखते थे?

गाँधी स्कूल में शिक्षक की जिस स्वायत्तता की बात करते हैं, वह भी टाल्सटाय के उदारवादी विचारों से मेल खाती है। गाँधी शिक्षक को नौकरशाही की गुलामी से मुक्त रखने की तरफदारी करते हैं। औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था ने शिक्षक की भूमिका को नौकरशाहों द्वारा तैयार पाठ्यपुस्तकों में ठूंसे हुए ज्ञान को बच्चों तक हस्तांतरित करने वाले तक सीमित कर दिया था। पाठ्यपुस्तकों के इस्तेमाल की अनिवार्यता

और शिक्षक की निरीह स्थिति से उत्पन्न स्थिति का खुलासा करते हुए गाँधी ने लिखा, ''यदि पाठ्यपुस्तकों को शिक्षा के वाहक के रूप में देखा जाता है तब शिक्षक की जीवंत उपस्थिति का महत्व बहुत कम हो जाता है। पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से पढ़ाने वाला शिक्षक बच्चों को अपनी मौलिकता हस्तांतरित नहीं कर सकता।'' गाँधी की बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव शिक्षक को पाठ्यपुस्तकों पर निर्भरता से मुक्त करने के साथ ही उन्हें ज्यादा स्वायत्तता देने और पाठ्यचर्या के निर्धारण में भी उनकी भागीदारी की तरफदारी करता है। इतना ही नहीं गाँधी जी का यह प्रस्ताव शिक्षक की कक्षा में भूमिका में राज्य के दखल को भी स्वीकारने से इनकार करता है। गाँधी जी के यह प्रस्ताव राजनीतिक और सामाजिक जीवन में राज्य सत्ता के दखल को कमतर करने पर जोर देते हैं।

गाँधी परीक्षा केंद्रित किताबी शिक्षा और रटने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हैं। वे पाठ्यक्रम में ज्यादा पुस्तकों को शामिल किए जाने का विरोध करते हैं। उनके अनुसार भारत जैसे गरीब देश में पुस्तकें बहुत सोच विचार कर लागू की जानी चाहिएं व उनकी संख्या कम होनी चाहिए, अन्यथा गरीब बच्चे शिक्षा अर्जित करने से वंचित रह जाएंगे। वे अपनी आत्मकथा में टाल्सटाय फार्म के अपने प्रयोग की चर्चा करते हुए लिखते हैं ''पाठ्यपुस्तकों के लिए समय–समय पर शोर सुनाई देता है, मुझे उनकी जरूरत कभी नहीं पड़ी। जो पुस्तकें थीं उनका भी बहुत उपयोग करने का मुझे स्मरण नहीं है। हर एक लड़के को ज्यादा किताबें देना मुझे जरूरी नहीं दिखाई दिया। मेरी समझ में विद्यार्थी की पाठ्यपुस्तक शिक्षक ही होता है। बालक आंख से जितना ग्रहण करता है उसकी अपेक्षा कान से सुना हुआ थोड़े परिश्रम से और बहुत ज्यादा ग्रहण कर सकता है।''

बोध प्रश्न

1. गाँधी जी के पाठ्यपुस्तक आधारित शिक्षण प्रक्रिया के बारे में क्या विचार है? वर्तमान विद्यालय में पाठ्यपुस्तकों के उपयोग के बारे में आलोचनात्मक विवेचना करें।
2. शिक्षकों की स्वायत्तता के सवाल को गाँधी जी ने क्यों महत्वपूर्ण माना है? आपके विचार से शिक्षण प्रक्रिया के लिए शिक्षकों की स्वायत्तता क्यों महत्वपूर्ण है?

10.4 स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन (Educational philosophy of Swami Vivekanand)

10.4.1 शिक्षा–दर्शन (Education philosophy)

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। मानव में शक्तियाँ जन्म से ही विद्यमान रहती है। शिक्षा उन्हीं शक्तियों या गुणों का विकास करती है। पूर्णता बाहर से नहीं आती वरन् मनुष्य के भीतर छिपी रहती है। सभी प्रकार का ज्ञान मनुष्य की आत्मा में निहित रहता है। गुरूत्वाकर्षण का सिद्धांत अपने प्रतिपादन के लिए न्यूटन की खोज की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था। वह न्यूटन के मस्तिष्क में पहले से ही विद्यमान था। जब समय आया तो न्यूटन ने केवल उसकी खोज की। विश्व का असीम ज्ञान–भंडार मानव मन में निहित है, बाहरी संसार केवल एक प्रेरक मात्र है, जो अपने ही मन का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है। पेड़ से सेव के गिरने से न्यूटन ने कुछ अनुभव किया और मानव का अध्ययन किया। उसने अपने मन में पूर्व से स्थित विचारों की कड़ियों को व्यवस्थित किया और उसमें एक नयी कड़ी को देखा, जिसे मनुष्य गुरूत्वाकर्षण का नियम कहते हैं।

अतएव सभी ज्ञान, चाहे वह सांसारिक हो अथवा परमार्थिक, मनुष्य के मन में निहित है। यह आवरण से ढ़का रहता है, और जब वह आवरण धीरे–धीरे हटता है, तो मनुष्य कहता है कि ''मुझे ज्ञान हो रहा है।'' ज्यों–ज्यों आवरण हटने की प्रक्रिया या आविष्कार की प्रक्रिया बढ़ती जाती है त्यों–त्यों मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि होती जाती है। जिस मनुष्य पर यह आवरण पूर्णतः पड़ा रहता है, वह मूढ़ या अज्ञानी है और जिस मनुष्य पर से यह आवरण बिल्कुल हट जाता है, वह सर्वज्ञानी मनुष्य हो जाता है। जिस प्रकार एक चकमक पत्थर

के टुकड़े में अग्नि निहित रहती है, उसी प्रकार मनुष्य के मन में ज्ञान निहित रहता है। उद्दीपक कारण ही वह घर्षण है, जो ज्ञानाग्नि को प्रकाशित कर देता है।

स्वामी विवेकानन्द सर्वहितकारी, सर्वव्यापी एवं मानव–निर्माण करने वाली शिक्षा पर जोर देते थे। वे मानव की स्वतंत्रता को मूल बिन्दु मानकर राजनीति से परे मानव निर्माण की योजना के सर्मथक थे। शिक्षा को धर्म से जुड़ा मानकर विवेकानन्द ने दोनों की मानव के अन्दर पाई जाने वाली प्रवृत्ति को उजागर करना ध्येय माना। मानव–कल्याण का मूल बीज शिक्षा को मानकर विवेकानन्द ने शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने की योजना बनाई। उन्होंने शिक्षा का एक उदार एवं संतुलित प्रारूप देश के सामने रखा ''आवश्यकता है विदेशी नियंत्रण हटाकर हमारे विविध शास्त्रों, विद्याओं का अध्ययन हो और साथ ही साथ अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान भी सीखा जाये। हमें उद्योग–धंधो की उन्नति के लिए यांत्रिक शिक्षा भी प्राप्त करनी होगी जिससे देश के युवक नौकरी ढूंढने के बजाय अपनी जीविका के लिए समुचित धनोपार्जन भी कर सके और दुर्दिन के लिए कुछ बचा भी सके।

शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए स्वामी विवेकानन्द ने ज्ञान दान को श्रेष्ठ दान बताया। उन्होंने चार प्रकार के दान बताये: धर्म (आध्यात्मिक ज्ञान का) दान, ज्ञान दान, प्राण दान और अन्न दान। इन सब में उन्होंने प्रथम दो दानों को श्रेष्ठ दान माना। वे ज्ञान–विस्तार को भारत की सीमाओं से बाहर भी ले जाना चाहते हैं। भारत ने संसार को अनेक बार आध्यात्मिक ज्ञान दिया। स्वामी जी ने धर्म प्रचार और लौकिक विद्या दोनों को ही मानव के लिए आवश्यक बताया पर उनका स्पष्ट मत था कि ''यदि लौकिक विद्या बिना धर्म के ग्रहण करना चाहो, तो मैं तुमसे साफ कह देता हूँ कि भारत में तुम्हारा ऐसा प्रयास व्यर्थ सिद्ध होगा – वह लोगों के ह्दयों में स्थान प्राप्त नहीं कर सकेगा।

वे कहते थे भारतीयों में आत्मविश्वास भरने के लिए उन्हें आत्मतत्व की जानकारी देनी चाहिए। वे कहते हैं– ''अब उनको (वंचितों को) आत्मतत्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमें से नीच से नीच में भी आत्मा विद्यमान है। वह आत्मा, जो कभी न मरती है, न जन्म लेती है, जिसे न तलवार काट सकती है, न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, जो अमर है अनादि और अनंत है, शुद्ध स्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। इस प्रकार विवेकानन्द ने शिक्षा के द्वारा आत्म–साक्षात्कार की संभावना पर अत्यधिक बल दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित रहस्य या तांत्रिक विद्या की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा इन्होंने मानव के विवेक को समाप्त कर दिया। वे आदर्श शिक्षा व्यवस्था की कल्पना करते हुए कहते है ''हमें ऐसी सर्वांग सम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमे मनुष्य बना सकें।'' वे केवल सूचनाओं के संग्रह को शिक्षा नहीं मानते थे। उनका कहना था '' शिक्षा उस जानकारी के समुच्चय का नाम नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दिया गया है, और वहाँ पड़े–पड़े तुम्हारी सारी जिन्दगी भर बिना पचाए सड़ रही है। हमें तो भावों या विचारों को इस प्रकार आत्मसात् करना चाहिए, जिससे जीवन निर्माण हो, मनुष्यत्व आवे और चरित्र गठन हो। यदि शिक्षा और जानकारी एक ही वस्तु होती, तो पुस्तकालय सबसे बड़े सन्त और विश्व–कोष ही ऋषि बन जाते।''

10.4.2 शिक्षा का उद्देश्य (Objectives of education)

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के उत्थान के लिए आवश्यक माना। उन्होंने हर समस्या का निदान शिक्षा को बताया। शिक्षा के उद्देश्यों का विवेचन करते हुए वे लिखते हैं ''जो शिक्षा प्रणाली जन–साधारण को जीवन–संघर्ष से जूझने की क्षमता प्रदान करने में सहायक नहीं होती, जो मनुष्य के नैतिक बल का, उसकी सेवा–वृत्ति का, उसमें सिंह के समान साहस का विकास नहीं करती, वह भी क्या शिक्षा के नाम के योग्य है?'' स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के निम्नलिखित महत्वपूर्ण उद्देश्य बतलाये :–

- अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति : विवेकानन्द ने शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य मानव में निहित पूर्णता का विकास को माना है। वेदान्त–दर्शन के अनुसार प्रत्येक बालक में अनन्त ज्ञान,

अन्नत बल एवं अनन्त व्यापकता की शक्तियाँ विद्यमान हैं, परन्तु उसे इन शक्तियों का पता नहीं। शिक्षा का उद्देश्य इन शक्तियों के बारे में छात्रों को जानकारी देना तथा प्रत्येक विद्यार्थी में अन्तर्निहित शक्तियों का उत्तरोत्तर विकास करना है।

- मानव–निर्माण करना : स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव का निर्माण करना बताया। वे कहते हैं '' शिक्षा द्वारा मनुष्य का निर्माण किया जाता है। समस्त अध्ययनों का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना है। जिस अध्ययन द्वारा मनुष्य की संकल्प–शक्ति का प्रवाह संयमित होकर प्रभावोत्पादक बन सके, उसी का नाम शिक्षा है।''

- शारीरिक पूर्णताः–विवेकानन्द के अनुसार मानव तभी पूर्णता प्राप्त कर सकता है जब उसका शरीर स्वस्थ हो। शारीरिक दुर्बलता पूर्णता के लक्ष्य प्राप्त करने में सबसे बड़ा बाधक तत्व है। वे युवकों को संबोधित करते हुए कहते है '' सबसे पहले हमारे युवकों को सबल बनाना चाहिए। धर्म तो बाद की चीज है। तुम गीता पढ़ने की बजाय फुटबाल खेलकर स्वर्ग के अधिक नजदीक पहुँच सकते हो। यदि तुम्हारा शरीर स्वस्थ्य है, अपने पैरों पर दृढ़ता पूर्वक खड़े हो सकते हो, तो तुम उपनिषदों और आत्मा की महत्ता को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हो।''

- चरित्र का निर्माणः स्वामी विवेकानन्द उसी शिक्षा को शिक्षा मानते थे जो चरित्रवान स्त्री–पुरूष को तैयार कर सके। उनके अनुसार सबल राष्ट्र के निर्माण हेतु नागरिक का चरित्रवान होना आवश्यक है। वे कहते हैं ''आज हमें जिसकी वास्तविक आवश्यकता है, वह है चरित्रवान स्त्री–पुरूष। किसी भी राष्ट्र का विकास और उसकी सुरक्षा उसके चरित्रवान नागरिकों का निर्भर है।'' अतः विद्यार्थियों में उच्च चरित्र का निर्माण शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

- जीवन–संघर्ष की तैयारीः शिक्षा विद्यार्थी को भावी जीवन के लिए तैयार करती है। विवेकानन्द की दृष्टि में जीवन–संघर्ष की तैयारी के लिए तकनीकी एवं विज्ञान की शिक्षा आवश्यक है। विवेकानन्द कहते हैं ''आज की यह उच्च शिक्षा रहे या बन्द हो जाए, इससे क्या बनता–बिगड़ता है? यह अधिक अच्छा होगा, यदि लोगों को थोड़ी तकनीकी शिक्षा मिल सके, जिससे वे नौकरी की खोज में इधर–उधर भटकने के बदले किसी काम में लग सकें और जीविकोपार्जन कर सके।''

- राष्ट्रीयता की भावना का विकास : विवेकानन्द भारत की दुर्दशा से अत्यन्त ही मर्माहत थे। वे एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का विकास करना चाहते थे जो भारतीय विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास कर सके। वे कहते हैं–'' ऐ वीर!साहस का अवलम्बन करो। गर्व से कहो, मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो कि मूर्ख भारतवासी, ब्राम्हण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सभी मेरे भाई हैं। भारत के दीन–दुखियों के साथ एक होकर गर्व से पुकार कर कहो – '' प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी–देवता मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है।''

इस प्रकार शिक्षा के माध्यम से विवेकानन्द भारतीयों के मध्य राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना का विकास करना चाहते थे।

10.4.3 पाठ्यक्रम (Syllabus)

स्वामी विवेकानन्द का यह मानना था कि हर राष्ट्र की कुछ विशेष गुणों के कारण अलग पहचान होती है। भारत राष्ट्र की विशिष्ट पहचान उसकी आध्यात्मिकता है। विवेकानन्द के अनुसार धर्म शिक्षा की आत्मा है। विवेकानन्द की धर्म की परिभाषा अत्यन्त व्यापक है। वे धर्म अन्तर्गत सम्प्रदाय विशेष को न मानकर नैतिक

जीवन पद्धति को मानते है। वे पाश्चात्य शिक्षा को अधर्म के विस्तार का कारण मानते हैं। हृदय का विकास जहाँ मानव को आध्यात्मिक बनाता है वहीं मात्र बौद्धिक विकास उसे स्वार्थी बनाता है।

विवेकानन्द शिक्षा में आध्यात्म के साथ विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा आवश्यक मानते हैं। स्वामी विवेकानन्द का यह स्पष्ट तौर पर मानना था कि भारतीय आध्यात्म एवं पश्चिमी विज्ञान का समन्वय ही मानव कल्याण का सर्वाधिक विश्वसनीय आधार बन सकता है। स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी तथा उद्योग की शिक्षा ने मानव के जीवन को आरामदायक बनाया है। पर अगर इसका विकास बिना नैतिक–आध्यात्मिक समन्वय के साथ हुआ तो यह मानव जाति के विनाश का कारण बन सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान स्वामी विवेकानंद की भविष्यवाणी सच हुई।

विवेकानन्द की शिक्षा व्यवस्था में कला को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वे मानते थे कि ''कला हमारे धर्म का ही एक अंग है।'' उन्होंने विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान चित्रांकित पात्रों, नयनाभिराम साड़ियों आदि से लेकर कृषक की झोपड़ियों तथा अनाज भरने के कोठरों तक खींचा। उन्हें जीवन का हर आयाम कलात्मक दिखता था और वे शिक्षा को कला की साधना का माध्यम बनाने पर जोर देते थे।

स्वामी विवेकानन्द भाषा की शिक्षा के संदर्भ में अत्यधिक उदार थे। वे संस्कृत भाषा की शिक्षा पर अत्यधिक जोर देते थे क्योंकि यही हमारे धर्म और संस्कृति की भाषा है। इसके साथ ही मातृभाषा की शिक्षा आवश्यक मानते थे। विज्ञान एवं तकनीक की उचित शिक्षा के लिए वे अंग्रेजी की भी शिक्षा महत्वपूर्ण मानते थे।

जनसामान्य में शिक्षा के प्रसार हेतु विवेकानन्द की शिक्षा–व्यवस्था में शारीरिक शिक्षा, खेलकूद और व्यायाम को उचित स्थान दिया गया है। वे नवयुवकों को गीता पढ़ने की बजाए फुटबाल खेलने का सुझाव देते थे। उनका मानना था कि अगर शरीर स्वस्थ होगा तो गीता भी बेहतर ढंग से समझ में आयेगी। उन्होंने नवयुवकों को शक्ति का महत्व बताते हुए कहा–''शक्ति ही जीवन और कमजोरी मृत्यु है। शक्ति परम सुख है और अजर अमर जीवन है, कमजोरी कभी न हटने वाला बोध और यन्त्रणा है, कमजोरी ही मृत्यु है।''

इस प्रकार शिक्षा के पाठ्यक्रम में स्वामी विवेकानन्द ने प्राच्य धर्म, दर्शन और भाषा तथा पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान, तकनीक एवं औद्योगिक प्रशिक्षण को स्थान दिया। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह महसूस किया था कि पाश्चात्य जगत के भौतिक ज्ञान से हम अपना भौतिक विकास कर सकते है और अपने देश के आध्यात्मिक ज्ञान से पश्चिमी जगत का कल्याण कर सकते है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम के संबंध में स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण समन्वयवादी, आधुनिक और व्यापक था।

10.4.4 शिक्षण विधि (Teaching method)

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ज्ञान प्राप्ति करने की सर्वोत्तम विधि एकाग्रता है। वे कहा करते थे कि जितनी अधिक एकाग्रता होगी उतना ही अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उनका कहना था कि एकाग्रता के बल पर जूता पॉलिश करने वाला भी बेहतर ढ़ंग से जूता पॉलिश कर सकेगा एवं रसोइया भी अधिक अच्छा भोजन बना सकेगा।

एकाग्रता तभी आ सकती है जब मनुष्य में अनासक्ति हो। स्वामी विवेकानन्द कहते है कि तथ्यों का संग्रह शिक्षा नहीं है। सच्ची शिक्षा है तन को अनासक्ति द्वारा एकाग्र करने की क्षमता विकसित करना। इससे सभी तरह के तथ्यों का संग्रह किया जा सकता है, समस्याओं को समझा जा सकता है और उनके निराकरण का मार्ग ढूंढा जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान के लिए योग विधि को अपनाने पर बल देते थे। भौतिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए जहाँ अल्प योग (अल्पकाल की एकाग्रता) पर्याप्त है वहीं आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पूर्ण योग (दीर्घकालीन एकाग्रता) आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्द शिक्षा को प्रत्येक बालक–बालिका का जन्म सिद्ध अधिकार मानते थे। खोये हुए सांस्कृतिक एवं भौतिक वैभव को फिर से प्राप्त करने के लिए जनसाधारण की शिक्षा को वे आवश्यक बताते थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा–''मेरे विचार में जनसाधारण की अवहेलना राष्ट्रीय पाप है और हमारे पतन का कारण है। जब तक भारत की सामान्य जनता को एक बार फिर से शिक्षा, अच्छा भोजन और अच्छी सुरक्षा प्रदान नहीं की जायेगी, तब तक सर्वोत्तम राजनीतिक कार्य भी व्यर्थ होंगे।'' वे शिक्षा की सुविधा सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध कराना चाहते थे।

स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं शिक्षा संबंधी विचार आज की परिस्थितियों में भी उतनी ही उपयोगी है जितनी उनके समय में थी। आज वेदान्त और विज्ञान के समन्वय की आवश्यकता और अधिक है। स्वामी विवेकानन्द का दर्शन मानव मात्र का कल्याण के लिए है। उन्होंने स्वयं कहा था– ''हम मानव–निर्माण का धर्म चाहते हैं। हम मनुष्य का निर्माण करने वाले सिद्धांत चाहते हैं और हम मानव निर्माणकी सर्वांगीण शिक्षा चाहते हैं।''

10.4.5 शिक्षक का दायित्व (Responsibility of teacher)

विवेकानन्द ने कहा कि शिक्षक का कार्य मार्ग से रूकावटें हटाना है। अर्थात् व्यक्ति के अन्तर्गत ब्रह्मत्व की शक्ति पहले से ही विद्यमान है, शिक्षा का कार्य उसे उजागर करना है।

सर्वजनीन और सर्वसुलभ शिक्षा प्रसार के लिए स्वामी जी ने शिक्षा देने हेतु ऐसे अध्यापकों की अपेक्षा की जो सदाचारी हो, त्यागी हों और उच्च भाव से ओत–प्रोत हों। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि भारत में शिक्षा 'ज्ञानदान' या 'विद्यादान' अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है और यह दानी पुरूषों द्वारा होता है। अतः ज्ञान प्रसार का कार्य निस्वार्थ त्यागी पुरूषों के कन्धों पर ही होना चाहिए। शिक्षकों को निस्वार्थ भाव से शिक्षा देनी चाहिए न कि धन, नाम या यश संबंधी स्वार्थ की पूर्ति के लिए। शिक्षकों को मानव–जाति के प्रति विशुद्ध प्रेम से प्रेरित होना चाहिए क्योंकि स्वार्थ पूर्ण भाव, जैसे लाभ अथवा यथ की इच्छा, इसके अभीष्ट उद्देश्य को नष्ट कर देगा।

शिक्षा के लिए विवेकानन्द गुरूगृह प्रणाली के पोषक थे। उनका मत था कि विद्यालयों का पर्यावरण एवं वातावरण गुरूगृह की ही तरह शुद्ध होना चाहिए, जहाँ व्यायाम, खेल–कूद, अध्ययन–अध्यापन के साथ भजन–कीर्तन और ध्यान की भी व्यवस्था हो। वे कहते है–''मेरे विचार के अनुसार शिक्षा का अर्थ है गुरूकुल–वास। शिक्षक के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा हो ही नहीं सकती। जिनका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समान हो, ऐसे व्यक्ति के सहवास में शिष्य को बाल्यावस्था के आरम्भ से ही रहना चाहिए, जिससे कि उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे।''

10.4.6 विद्यार्थी के कर्तव्य (Role of student)

शिक्षार्थी के लिए स्वामी जी कठोर नियमों का पालन एवं इन्द्रिय निग्रह पर जोर देते थे, जिससे छात्र शिक्षक में श्रद्धा रखकर सत्य को जानने का प्रयास करे। उन्होंने कहा–'' शिक्षक के प्रति श्रद्धा, विनम्रता, समर्पण तथा सम्मान की भावना के बिना हमारे जीवन में कोई विकास नहीं हो सकता। उन देशों में जहाँ शिक्षक–शिक्षार्थी संबंधों में उपेक्षा बरती गई है, वहाँ शिक्षक एक व्याख्याता मात्र रह गया है। वहाँ शिक्षक अपने लिये पाँच डालर की आशा रखने वाले और छात्र, शिक्षक के व्याख्यान को अपने मस्तिष्क में भरने वाले रह जाते हैं। इतना कार्य सम्पन्न होने पर दोनों अपनी–अपनी राह पर चल देते हैं। इससे अधिक उनमें कोई संबंध ा नहीं रह गया है।''

विवेकानन्द विद्यार्थी–जीवन में ब्रम्हचर्य पालन पर जोर देते हैं। उनके अनुसार इस काल में विद्यार्थी को मन, वचन और कर्म से ब्रम्हचर्य–पालन करना चाहिए। इससे संकल्प–शक्ति दृढ़ होती है तथा आध्यात्मिक शक्ति तथा वाग्मिता का विकास होता है।

10.4.7 नारी शिक्षा (Women education)

स्वामी विवेकानन्द स्त्री–पुरूष समानता के समर्थक थे। इसलिए महिलाओं की शिक्षा भी उनकी शिक्षा संबंधी योजना में महत्वपूर्ण विषय है। उनका मानना था कि देश की उन्नति के लिए महिलाओं की शिक्षा उत्यन्त आवश्यक है। महिलाओं की शिक्षा के लिए उन्होंने तपस्वी, ब्रम्हचारिणी तथा त्यागी महिलाओं को प्रशिक्षण देना आवश्यक माना ताकि ऐसी महिलायें दूसरी महिलाओं को सम्यक शिक्षा प्रदान कर सकें।

महिलाओं की समुचित शिक्षा के लिए विवेकानन्द ने पुरूषों की भाँति महिलाओं के लिए अलग संघ स्थापित करने पर जोर दिया। उनका विचार था कि मठों की स्थापना के माध्यम से वहाँ प्रशिक्षित ब्रम्हचारी स्त्रियाँ और सुशिक्षित बन कर नारी जाति को शिक्षा देने का प्रयास करेंगी। शिक्षित स्त्रियाँ भले–बुरे का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगी और स्वतंत्र तथा स्वाभाविक रूप से प्रगतिपथ पर अग्रसर हो सकेंगी। पुरूषों की तरह स्त्रियों को भी भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विषयों तथा लौकिक विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे दूसरों तक सम्यक रूप से प्रसारित कर सकें।

वे कहते हैं कि '' जिस तरह माता–पिता अपने पुत्रों को शिक्षा देते है उसी तरह उन्हें पुत्रियों को भी शिक्षा देते हैं।'' विवेकानन्द की दृष्टि में शिक्षा ऐसी मिलनी चाहिए कि वे दूसरों पर निर्भर रहने की बजाय स्वयं अपनी समस्याओं का निराकरण कर सकें। वे लड़कियों की शिक्षा के केन्द्र में धर्म को रखने का सुझाव देते हैं। इसके अतिरिक्त इतिहास एवं पुराण, गृह–व्यवस्था, कला एवं शिल्प, बच्चों की उचित देखभाल, पाक कला आदि की शिक्षा देने का सुझाव देते हैं। वे कन्याओं से 'सीता' के उज्ज्वल चरित्र से शिक्षा लेने को कहते हैं।

10.5 सारांश (Summary)

- बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये केवल विद्यालय ही नहीं बल्कि उनको एक ऐसी दुनिया चाहिए जिसका मार्गदर्शक चेतरा तथा व्यक्तिगत प्रेम हो।
- शिक्षा बंद कमरे में दी जाने वाले व्यवस्था नहीं है।
- स्व–अभिव्यक्ति के साथ सृजनात्मकता का विकास हो।
- भारतीय प्रतिभा की तीन विशेषताए आत्मज्ञान, सृजनात्मकता एवं बुद्धिकता।
- व्यक्ति, मन, शरीर या आत्मका नहीं है बल्कि इस तीनों का एक संतुलित संयोजन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है।
- ऐसी शिक्षा जिससे व्यक्ति आत्मनिर्भर बन सके एवं आजीविका चला सके।
- मशीनी उत्पादन के स्थान पर शारीरिक श्रम से उत्पादन को प्राथमिकता।
- शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानव में निहित पूर्णता का विकास है।
- अध्यात्म के साथ विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा भी आवश्यक है।
- ज्ञान प्राप्त करने की समेन्तिन विधि मन की एकाग्रता है।
- देश की उन्नति के लिये नारी शिक्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है।
- शिक्षक के सम्मान के बिना हमारे जीवन में कोई विकास नहीं हो सकता।

10.6 अभ्यास के प्रश्न (Unit end exercise)

1 टैगोर के शिक्षा का वर्णन कीजिए ?

2 महर्षि अरविन्द का शैक्षिक दर्शन क्या है?

3 शिक्षा में नैतिक शिक्षा से सामाजिक परिवर्तन पर आपके विचार क्या है वर्णन कीजिए ?

4 मोहनदास करमचन्द गाँधी के शिक्षा दर्शन का भारतीय शिक्षा जगत में कितना योगदान है अपना विचार दीजिए ?

5 स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन में शिक्षा का उद्देश्य क्या है। नारी शिक्षा पर उनका दृष्टिकोण क्या था ?

6 महर्षि अरविन्द की दार्शनिक विचार धार का सविस्तार वर्णन करते हुए वर्तमान शिक्षा पद्धति में इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए ?

संदर्भ सूची (List of reference book) :–

1. बिहार डी.एल.एड. पाठ्यक्रम।
2. NIOS की डी.एल.एड. पाठ्यक्रम।
3. सामाजिक, सांस्क तिक परिप्रेक्ष्य में संज्ञान एवं अधिगम लेखक – डॉ. सविता शर्मा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगर–2।
4. S.C.E.R.T. RAIPUR D.Ed. पुराना पाठ्यक्रम।
5. S.C.E.R.T. RAIPUR D.Ed. प्रथम वर्ष नवीन पाठ्यक्रम।
6. I.G.N.O.U. D.El.Ed. पाठ्यक्रम नई दिल्ली
7. Modern Science teaching By R.C. Sharma.
8. Teaching of Science-M.S. Yadav Anmol Publications, New Delhi.
9. Teaching of Mathematics-Chitranguda Singh, R.P. Rohtagi Dominant Publishers and Distributors, New Delhi.
10. In-Service teacher education Package Vol 1 for Primary School teachers, NCERT.
11. Mayer, R (1983). Thinking, Problem Solving, Cognition New York, Kl.H.Freeman and Company.
12. Gooper, JamesM (2010). Classroom Teaching skills (9^{th} Edn.). Boston : Houghten Mifflin.
13. Jonson, Kathleen Freeny (2002). The new clementary teacher's handbook (2^{nd} Edn.) California : Corwin Press.
14. Tuelinson, Caral Ann Imbearu, Marcia B. (2010) Living and manging a differentiated class room Virginia USA : ASCD.
15. What is the importance of the local specific contexts for effective classroom learning\
16. What are the difficulties faced by a CWSN is a normal classroom? How can you take care of such children in the classroom for facilitating their learning?
17. Suppose you are teaching in a tribal dominated school. You do not know the mother tongue of those children. How can you organize activities that children will learn better?
18. You are to teach about 'Health" in class III. Design acivities for the topic based on children's local language.
19. Black. P & William, D (1999). Assessment for learning : Beyond the black box. London: Kings College London.
20. Butler. R (1988). Enhancing and undermining intrinsic motivation: effects of task-involving and ego-involving evaluvationon interest and performance. British Journal of Educational Psychology. 56 (51-63).
21. Cooper, Damian (2007). Talking about assessment, strategies, and tools to improve learning. Toronto, Ontario: Thomson Nelson.
22. Eart, Loma M (2006). Assessment as learning: Using classroom asseesment to maximize student learning. Thousand Oaks, California: Corwin press.

●●●

दूधाधारी मठ, रायपुर

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर